पालि-सौरभ

(पालि साहित्य के विभिन्न पक्षों का गवेषणात्मक परिचय)



विजयकुमार जैन

पालि-सौरभ

(पालि साहित्य के विभिन्न पक्षों का गवेषणात्मक परिचय)

लेखक

प्रोफेसर विजयकुमार जैन

अध्यक्ष : बौद्धदर्शन विभाग

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)

गोमती नगर, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

मैत्री प्रकाशन, लखनऊ

2011

पालि-सौरभ

(पालि साहित्य के विभिन्न पक्षों का गवेषणात्मक परिचय)

© लेखक - प्रो. विजयकुमार जैन

प्रकाशक - डॉ. राका जैन
मैत्री प्रकाशन
3/65, विकास खण्ड
गोमतीनगर, लखनऊ-226010

मूल्य - 300/-

ISBN - 978-93-5174-865-6

प्रथम-संस्करण - 2011

PALI-SAURABH

© Author - Prof. Vijay Kumar Jain

Publisher - Dr. Raka Jain,
Maitree Publication
3/65, Vikas Khand,
Gomti Nagar, Lucknow-226010

Price - Rs. 300/-

First Edition - 2011

ISBN - 978-93-5174-865-6

Printed by - Jain Offset Printers
252/67, Rakabganj Kadeem
Nehru Cross, Lucknow

पूज्य गुरुवर प्रो. एन. एच. साम्ताणी
जी को

सादर समर्पित

जो अट्ठासी वर्ष की आयु में भी पालि/प्राकृत
विद्या के विकास के लिए सक्रिय हैं

– विजयकुमार जैन

स्व-कथ्य

पालि एवं बौद्ध विद्या का छात्र होने के नाते विविध गोष्ठियों एवं सम्मेलनों में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। जिसमें कई लेख प्रकाशित भी हुए। साक्षात्कार के समय जब इन आलेखों को ले जाता था उस समय प्रो. महेश तिवारी जी (स्मृति शेष) प्रेरणा देते थे कि इनको एक पुस्तकाकार में छपवा लीजिए। बहुत उपयोगी रहेंगे। उनकी प्रेरणा-शिरोधार्य करते हुए एक निबन्ध संग्रह 'पालि एवं प्राकृत विद्या - एक तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक से तथा संस्कृत भाषा में लिखित निबन्धों का संगह 'अत्तदीपो भव' शीर्षक से २००६ में छपा था, जो उपयोगी सिद्ध हुआ। विभिन्न संगोष्ठियों में शोध निबन्ध पढ़ते समय परम पूज्य गुरुवर वरिष्ठ विद्वान प्रो. सुनीति कुमार पाठक, प्रो. दीपक कुमार बरुआ जी इन निबन्धों की, इस बात की बहुत सराहना करते रहे हैं कि मूल स्रोत के आधार पर निबन्ध लिखा गया है, जो मेरे लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है। शोधकार्य के प्रारम्भ करने से अब तक लगभग ३५ वर्षों के अन्तराल में लिखे गए ये निबन्ध हैं। इसलिए इनमें विभिन्नता भी है। पिछले वर्षों के निबन्धों को पुनः दुहरा करके सीमातीत आनन्द का अनुभव हो रहा है। इनके लेखन में मूल पालि एवं बौद्ध ग्रन्थों को आधार बनाया गया है।

पालि की इन शिक्षाओं में सार्वभौमिकता दिखाई देती है। सम्पूर्ण मानव जाति के लिए उपयोगी इन शिक्षाओं को बुद्ध का धर्म-शासन कहा गया है। अभिधर्मकोश में धर्म की परिभाषा ही 'धर्मप्रविचय' की गई है। विशाल पालि साहित्य में विभिन्न विषयों की सामग्री भरी पड़ी है। अभिलेखीय साहित्य की दृष्टि से पालि साहित्य भी प्राचीन भारतीय साहित्य है जिसमें धर्म दर्शन समाज एवं संस्कृति के तत्त्व प्राप्त होते हैं। धर्मकीर्ति के शब्दों में कहा जाय तो सामान्य जन की प्रवृत्ति इस 'प्रज्ञा' में नहीं होती, दूसरा ईर्ष्या, द्वेष भी रहता है, अतः ऐसे लोगों का इससे क्या उपकार होगा? लेकिन अपना स्वाध्याय तो बढ़ता ही है। अतः आचार्यों की भांति "बुद्धचनामृत" को दुहरा रहा हूँ।

पालि-भाषा में निबद्ध बुद्धवचन वस्तुतः अमृत की खान हैं। यहाँ पर उसकी आंशिक सौरभता उपस्थित की गई है, पालि साहित्य का परिचय देते हुए

उसके काव्यपक्ष को उजागर किया गया है। साथ ही विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों, जैसे– सम्यक्दृष्टि, अव्याकृत, पारमिता, अनात्मवाद, निर्माण आदि विषयों पर स्वतंत्र लेख हैं। वहीं आधुनिक विषय धार्मिक सहिष्णुता, मानवाधिकार, आतंकवाद, पर्यावरण, भौतिकता जैसे विषयों पर भी बौद्ध मन्तव्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पालि के साथ प्राकृतभाषा एवं वैदिक साहित्य के सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाली सामग्री भी है।

पालि-भाषा एवं साहित्य में प्रवेश दिलाने वाले मेरे परमपूज्य गुरुवर डॉ. कोमलचंन्द्र जी जैन (स्मृति शेष) का मैं आभारी हूँ कि उन्होने मुझे इस योग्य बनाया। इस समय इन निबन्धों के प्रकाशन का श्रेय या प्रमुख प्रेरणा स्रोत मेरी धर्मपत्नी डा. राका जैन हैं। विगत वर्षों से राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान में पालि एवं प्राकृत की परियोजना आ जाने से तथा पूज्य कुलपति प्रो. राधावल्लभ जी त्रिपाठी जी द्वारा पालि अध्ययन केन्द्र की जिम्मेदारी देने के कारण मैं अपनी पालि/प्राकृत विद्या को पुनर्नवा जैसे पाकर गौरव का अनुभव कर रहा हूँ। प्रो. त्रिपाठी जी ने राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के माध्यम से पालि एवं प्राकृत भाषा के कार्य को आगे बढ़ाया है।

पालि एवं बौद्ध विद्या के क्षेत्र में सक्रिय प्रो. एन. एच. साम्ताणी जी, प्रो. संघसेन सिंह जी, प्रो. प्रेमसुमन जैन, प्रो. भागचन्द्र जैन, प्रो. धर्मचन्द्र जैन, प्रो. उमाशंकर व्यास, प्रो. कमलेश कुमार जैन जैसे वरिष्ठ विद्वानों का प्रोत्साहन एवं सौहार्द सम्बल रहा है। पुनश्च सभी गुरुजनों, सहकर्मियों, मित्रों, स्वजनों एवं परिवार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। चि. मैत्रेय एवं बेटी मैत्री को भी बहुत-बहुत शुभकामनाएँ।

यदत्र सौष्ठवं किञ्चत्तद्गुरोरेव मे नहि।
यदत्रासौष्ठवं किञ्चित्तन्ममैव गुरोर्नहि।।

बुद्धपूर्णिमा, २०११ — विजयकुमार जैन

विषयानुक्रमणिका

पालि साहित्य की प्रमुख विशेषताएं

भगवान बुद्ध की वाणी मूलरूप से जनभाषा में सुरक्षित की गई थी, जिसे आज हम पालि कहते है। पहले इसे मागधी भाषा कहा जाता था। **सा मागधी मूलभाषा नरा ययादि कप्पिका।** बुद्ध वचनों को आज हम मूल रूप से 'त्रिपिटक में वर्णित पाते है। अट्ठकथा में बुद्धवचनों का विभाजन रस के अनुसार एक प्रकार से, धर्म और विनय के अनुसार दो प्रकार से, पठम-मज्झिम-पच्छिम तथा आदि, अन्त और मध्य के अनुसार तीन प्रकार से तथा धर्म स्कन्धों के अनुसार ८४००० प्रकार से किया जाता है।

प्रथम प्रकार के विभाजन में भगवान बुद्ध के अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व की प्राप्ति को लेकर निर्वाण तक के सभी उपदेशों एवं अनुशासनों में एक ही रस विमुक्ति है। द्वितीय प्रकार विनय एवं धर्म के आधार पर है। विनयपिटक को विनय एवं विनयपिटक के अतिरिक्त शेष वचनों को धर्म कहा गया है तृतीय प्रकार भगवान बुद्ध के प्रथम, मध्यम एवं अन्तिम वचनों के आधार पर तथा तीन पिटकों के आधार पर है। प्रथम वचन के रूप में '**अनेक जाति संसार**' वाली प्रसिद्ध तीन गाथाओं को अथवा कुछ ग्रन्थों में '**यदाहवे पातु भवन्ति धम्मा**' वाली गाथा का उल्लेख किया जाता है। परिनिर्वाण के पूर्व कहा गया अन्तिम वचन "**हन्त दानि भिक्खवे, आमन्तयामि वो, वय धम्मा संखारा अप्पमादेन सम्पादेथ**" है। इन दोनों के मध्य कहे वचन मध्यम है। तीन पिटक विनयपिटक, सुत्तपिटक एवं अभिधम्मपिटक है। चौथा विभाजन सुत्त, गेय्य, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुत धर्म और वेदल्ल इन नौ अंगों के आधार पर है। नौ अंगों का यह विभाजन सबसे प्राचीन माना जाता है।

'सुतन्तं अभिधम्मं च विनयाश्चापि केवलं, नवंग बुद्धवचनं, एसा धम्म सभा तव। यह विभाजन अपदान, मिलिन्दप्रश्न एवं बौद्ध धर्म के महायान संस्कृत साहित्य में भी पाया जाता है यथा -

नवांग प्रवचनानि - महायान सूत्र संग्रह

अथवा

नवांगमेतन्मम शासनं च - सद्धर्म पुण्डरीक सूत्र

महायान के संस्कृत साहित्य में १२ धर्म प्रवचनों का भी विभाजन पाया जाता है यथा-

सूत्रं गेयव्याकरणं गाथोदानावदानकम् ।
इतिवुत्तकं निदानं वैपुल्यं च सजातकम् ।
उपदेशाद् भूतौ धर्मो द्वादशांगमिदं वचः ।। - अभिसमयालंकार

चीन के ध्यान-सम्प्रदाय के छठे धर्मनायक हुई- नेंग ने भी बौद्ध शास्त्रों के १२ विभागों का उल्लेख किया है। आगमों का अंगो में विभाजन भारतीय धार्मिक परम्परा की विशेषता है। वेद अंगों में विभाजित है। जैन आगम भी अंगो में विभक्त है। बुद्धवचनों का अंगो में विभाजन विभिन्न शैलियों को ही सूचित करता है। धर्म स्कन्धों के ८४००० धर्मस्कन्ध हैं। यह गणना त्रिपिटक के वचनों की है। त्रिपिटक में तथागत द्वारा कहे गए, सुत्तों के अतिरिक्त उनके प्रधान शिष्यों द्वारा कहे गए, उनके सम्मुख कहे गए एवं उनके द्वारा अनुमोदित वचनों का समावेश है -

द्वासीतिं बुद्धतो गण्हिं, द्वे सहस्सानि भिक्खुतो ।

चतुरासीति सहस्सानि, ये मे धम्मा पवत्तिनो ।। - खुद्दकनिकाय

सद्धम्मसंगहो के अनुसार इक्कीस हजार धर्मस्कन्ध विनयपिटक में, इक्कीस हजार सुत्तपिटक में तथा ब्यालिस हजार अभिधर्म पिटक में हैं। यथा -

एकवीस सहस्सानि, खन्धा विनयपिटके।

एकवीस सहस्सानि, खन्धा सुत्तन्तपिटके।

द्वे चत्तालीस सहस्सानि, खन्धा अभिधम्मपिटकेति।

एवं परिदीपन-धम्मखन्ध वसेन चतुरासीति सहस्सपभेदति।

- सद्धम्मसंगहो

पिटकों का तीन प्रकार से विभाजन, देशना की भिन्नता से माना जाता है। सुत्तपिटक में व्यवहार देशना मानी जाती है यथा -

विनयपिटकं आणारहेन भगवतां आणा बाहुल्लतो देसिता आ देसना,

सुत्तपिटकं बोहारकुसलेन भगवता वोहार बाहुल्लतो देसिता देसना,

अभिधम्म पिटकं-परमत्थ कुसलेन भगवता परमत्थ बाहुल्लतो देसिता परमत्थदेसना।

- सुमंगलविलासिनी, भाग -१ पृ.२६

आचार्य बुद्धघोष मूल बुद्धवचन के रूप में तीन पिटकों को मानते है लेकिन प्रथम एवं द्वितीय संगीति के आधार पर अभिधर्मपिटक के संग्रह का उल्लेख नही मिलता है। 'कथावत्थु' नामक अभिधर्मपिटक के ग्रन्थ की रचना तृतीय संगीति के समय बुद्ध परिनिर्वाण के २३६ वर्ष बाद मानी जाती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'कथावत्थु' का उल्लेख 'खुद्दकनिकाय' के 'अपदान' ग्रन्थ में आया है । विद्वानों का यह विचार है कि धम्मसंगणि की रचना मातिकाओं के आधार पर हुई है। द्वितीय संगीति के समय तक मातिकाधरों का उल्लेख मिलता है एवं अभिधर्मपिटक ग्रन्थों के प्रारम्भ में विषय सूची के समान मातिकाएं दी गई हैं, इसलिए सम्पूर्ण अभिधर्मपिटक को ही मातिकाओं के आधार पर विकसित माना जाता है।

पिटक का अर्थ पेटारी, पिटारी या मंजूषा है। आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि 'पिटक' बुद्ध वचनों के भाजन स्वरूप है और उसकी परियत्ति या परम्परा को एक पीढी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाते हैं। मूलबुद्धवचन तीन पिटारियों में रखने की भांति विभक्त है, इसलिए प्रत्येक को पिटक कहा जाता है । मज्झिमनिकाय में पिटक शब्द का प्रयोग पिटारी के अर्थ में तथा सम्प्रदाय के अर्थ में हुआ है। पिटारी के अर्थ में पिटक शब्द के प्रयोग को मानने में कीथ ने आपत्ति की है, क्योंकि पिटारी लिखित ग्रन्थों के लिए ही प्रयुक्त हो सकती थी, जबकि बुद्धवचन ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पहले लिखित नहीं पाए जाते हैं। सारनाथ से प्राप्त कनिष्क कालीन अभिलेख में 'त्रेपिटकाय' अंकित है। डा. के. एन. न्यूमैन का विचार है कि पालि साहित्य में आगत 'पेटकी' से तात्पर्य एक पिटक के जानने वाले से है, जबकि पेटकी का सामान्य अर्थ सम्पूर्ण पिटकों का ज्ञाता माना जाता है। डा. न्यूमैन ने अपने मत की पुष्टि के लिए ' पेटकोपदेस' का उद्धरण देते हुए कहा है कि पेटकोपदेश का प्रयोग सम्पूर्ण पिटकों के लिए नहीं है। आज भगवान बुद्ध के वचनों को जानने का सबसे प्रामाणिक स्रोत त्रिपिटक है।

विनयपिटक, सुत्तपिटक, एवं अभिधर्म पिटक को त्रिपिटक कहा जाता है। भगवान ने संस्कृत भाषा में अपने वचनों को अनूदित करने के लिए स्पष्ट मना कर दिया था। भगवान बुद्ध के समय उनके वचनों को मूलभाषा में संग्रह किया जाता था। जिसे हम आज पालि भाषा के रूप में जानते है। सर्वास्तिवादियों द्वारा संग्रहीत त्रिपिटक संस्कृत भाषा में है, किन्तु पालि त्रिपिटक ही प्रामाणिक, ऐतिहासिक, प्रचलित एवं पूर्ण उपलब्ध है।

पालि भाषा को भगवान बुद्ध के समय की तत्कालीन प्रचलित बोली मानी जाती है एवं उसे मागधी संज्ञा अभिहित किया जाता है। पालि भाषा यह नाम नवीन है। भिक्षु काश्यप का स्पष्ट कथन है कि पालि का प्रयोग भाषा के लिए नहीं अपितु बुद्धवचनों के लिए हुआ तथा भाषा के लिए 'मागधि' शब्द प्रयुक्त हुआ। पालि शब्द का प्रयोग त्रिपिटक के ग्रन्थों के साथ आता है जैसे उदान पालि आदि। इस संबंध में भिक्षु जगदीश काश्यप का कहना है कि पालि शब्द का पंक्ति से व्युत्पन्न मानना ठीक नहीं हैं क्योंकि पक्तियों के लिए यह नाम दिया जाता तो इसका प्रयोग बहुवचन में होना चाहिए था। भिक्षु जगदीश काश्यप सभी मान्यताओं का खण्डन कर परियाय से पलिलाय-पालिलाय एवं पालिलाय का लघु रूप पालि मानते हैं जो बुद्धवचनों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश का अपनी अपनी भाषा में संग्रह करने को कहा था, लेकिन भगवान की चंक्रमण भूमि 'मगध' प्रदेश अधिक थी, इसलिए इसमें मागधि का बाहुल्य एवं अधिकार हो गया एवं किसी प्रकार के बन्धन न होने से कई और बोलियों

का सम्मिश्रण हो गया है । भगवान बुद्ध के समय उनके वचनों को भिक्षुगण मौखिक याद कर लिया करते थे, लिखित होने की अभी तक पुष्टि नहीं हो पाई है। इनका विकास संगीतियों के माध्यम से माना जाता है। संगीतियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

प्रथम संगीति - भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् धर्म एवं विनय के संग्रह के लिए प्रथम संगीति बुलाई गई। इस संगीति के बुलाने का कारण सुभद्र नामक भिक्षु था, बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् जब भिक्षुगण शोक से सन्तप्त थे। सुभद्र नामक भिक्षु ने कहा भिक्षुओं, दुखी मत होओ। अब हम महाश्रमण के कठोर अनुशासन से मुक्त हो गए। वह कहते रहते थे कि यह करना तुम्हें विहित है यह नहीं। अब हम स्वेच्छा से तो चाहेंगे करेंगे और जो नहीं चाहेंगे नहीं करेंगे। प्रमुख भिक्षुओं को इन शब्दों से धर्म-विनय की स्थिति की चिन्ता हुई। महाकाश्यप ने प्रामाणिक बुद्ध वचनों की सुरक्षा के लिए इस संगीति का आयोजन किया। यह राजगृह के वैभार पर्वत पर स्थित सप्तपर्णी गुफा के द्वार पर हुई। इसके लिए तत्कालीन मगधराज अजातशत्रु ने विशाल मण्डप का निर्माण कराया। इसकी अध्यक्षता 'महाकाश्यप 'ने की। विनय संबंधी वचनों को उपालि एवं धर्म संबंधी वचनों को आनन्द द्वारा पूछ कर संग्रह किया गया। बुद्धघोष की अट्ठकथा के अनुसार इस संगीति में धर्म एवं विनय के अतिरिक्त अभिधर्म पिटक का भी संगायन किया गया।

द्वितीय संगीति - प्रथम संगीति के सौ वर्ष पश्चात् द्वितीय संगीति वैशाली में बुलाई गई। इसकी अध्यक्षता रेवत स्थविर ने की थी। इसमें ७०० भिक्षु सम्मिलित हुए थे। इस संगीति का आयोजन विनय विरुद्ध आचरण के निर्णय के बाद किया गया था जिसमें वैशाली के भिक्षुओं द्वारा दस वस्तुओं के सेवन के औचित्य को ठुकराकर उन्हें धर्मविरुद्ध बतलाया गया था। इस सभा के समय तक भिक्षुओं के दो दल हो गए, प्रथम पाचीनक और द्वितीय पाठेय्यक। प्रथम वैशाली के भिक्षुओं के पक्ष में थे, जो विनय विपरीत आचरण करते थे तथा द्वितीय इस आचरण के विरोध करने वाले थे। दीपवंश में वर्णित है कि पाचीनक भिक्षुओं ने अपनी एक अलग महासंगीति की थी। इन्होंने बुद्धशासन को विपरीत कर डाला, मूलसंघ में भेद उत्पन्न कर नया संघ खडा कर दिया। मौलिक 'धम्म' को नष्ट कर नये सुत्तों का संग्रह किया। परिवार, अभिधम्म, पटिसम्पदा, निद्देस और जातक के कुछ अंशो को स्वीकार नहीं किया। विजित भिक्षुओं ने महास्थविर रेवत के सभापतित्व में प्रथम संगीति के अनुरूप ही बुद्ध वचनों का संगायन किया, जिनको तीन पिटकों, पाँच निकायों, नौ अंगों और धर्मस्कन्धों में बाँटा जाता है ।

तृतीय संगीति- तृतीय संगीति बुद्ध परिनिर्वाण के २३६ वर्ष बाद अशोक के समय मे हुई थी। इसका आयोजन पाटलिपुत्र के अशोकाराम में हुआ था। इस संगीति की अध्यक्षता 'मोग्गलिपुत्ततिस्स' ने की थी ।

इस संगीति के आयोजन का उद्देश्य सम्राट अशोक द्वारा यथार्थ बुद्ध-मन्तव्य को जानना था। क्योंकि अशोक के समय बौद्धधर्म को राज्याश्रय प्राप्त हो जाने से विभिन्न मतावलम्बी अपने को बौद्ध कहने लगे थे तथा अपने मत-मतान्तरों को भी बुद्ध सम्मत कहने लगे थे। द्वितीय संगीति के बाद बुद्ध-अनुयायी भी सम्प्रदायों में विभक्त होकर अपने-अपने को सच्चा कहने लगे थे।

इस संगीति में थेरवाद या विभज्यवाद को बुद्ध का वास्तविक धर्म बतलाया गया। मोग्गलिपुत्त तिस्स द्वारा कथावत्थु नामक अभिधर्म पिटक के ग्रन्थ की रचना इसी समय की गई जिसमें तत्कालीन, सम्प्रदायों के मतों का खण्डन किया गया है एवं थेरवाद की स्थापना की गई है। इस संगीति के निर्णय के अनुसार विभिन्न बौद्ध भिक्षु धर्म के प्रसार के लिए अनेक देशों में भेजे गये। सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा सिंघलद्वीप श्रीलंका गये और अपने साथ त्रिपिटक के रूप में बुद्ध वचन की परम्परा लेते गए जिससे सिंघलद्वीप में बौद्धधर्म की नींव पड़ी एवं त्रिपिटक सुरक्षित रह सका।

इस संगीति का वर्णन दीपवंश, महावंश और समन्तपासादिका में मिलता है। विनयपिटक के चुल्लवग्ग, तिब्बती और चीनी महायानी बौद्ध साहित्य के अभिलेखों में इसका उल्लेख नहीं है जिसके कारण मिनयेफ, कीथ, वेलेसर, बार्थ फ्रैंक और लैवी आदि कुछ विद्वानों ने तृतीय संगीति की ऐतिहासिकता में सन्देह व्यक्त किया है। गायगर विन्टरनिट्ज आदि इस सभा को ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक मानते हैं।

चतुर्थ संगीति- परम्परा मानती है कि महेन्द्र एवं संघमित्रा द्वारा पहुँचाए गए बुद्धवचन श्रीलंका में मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहे। लंकाद्वीप के शासक वट्टगामणी के समय ई. पू. २९ में इसे लिपिबद्ध किया गया जिसे चतुर्थ संगीति कहा जाता है। इसमें अट्ठकथाओं का संकलन भी बतलाया जाता है।

पंचम संगीति - १८९१ ई. में वर्मा में वहाँ के सम्राट मिण्डन के संरक्षण में सम्पूर्ण त्रिपिटक का संशोधन एवं संपादन किया गया और उनको संगमरमर की पट्टिकाओं पर उत्कीर्ण कर दिया गया। इसमें विनय पिटक की १११, सुत्त की ४१० एवं अभिधर्म की २०८ पट्टियां हैं। इसे स्थविरवादी पाँचवी संगीति कहते हैं।

षष्ठ संगीति- वर्मा में राजधानी रंगून के पास पाषाण गुहा में १४ मई १९५४ ई. को संगायन की बैठक प्रारम्भ हुई जिसे छट्ठ संगायन कहते हैं। १९५६ ई. को २५००वीं बुद्ध जयन्ती के दिन संगायन की बैठक पूरी हुई । संसार के विभिन्न देशों से आमंत्रित विद्वान, भिक्षुओं में संगायन ने किया। संगायन द्वारा स्वीकृत मूल त्रिपिटक का मुद्रण भी किया गया जो आज सर्वमान्य है।

पालिसाहित्य- पालिसाहित्य विशाल है। ई. पूर्व छठी शताब्दी से अभी तक साहित्य सृजन हो रहा हैं। प्रारम्भिक साहित्य बुद्ध वचन त्रिपिटक हैं। त्रिपिटक के तीन पिटक इस प्रकार

हैं– सुत्तपिटक, विनयपिटक एवं अभिधम्मपिटक। सुत्तपिटक के अन्तर्गत पाँच निकाय, विनयपिटक के अन्तर्गत पाँच ग्रन्थ एवं अभिधर्मपिटक के अन्तर्गत सात ग्रन्थ आते हैं।

त्रिपिटक

सुत्तपिटक	विनयपिटक	अभिधम्मपिटक
१. दीघनिकाय	१. महावग्ग	१. धम्मसंगणि
२. मज्झिमनिकाय	२. चुल्लवग्ग	२. विभंग
३. संयुत्तनिकाय	३. पाराजिक	३. धातुकथा
४. अंगुत्तरनिकाय	४. पाचित्तिय	४. पुग्गलपञ्ञत्ति
५. खुद्दकनिकाय	५. परिवार	५. यमक
		६. पट्ठान
		७. कथावत्थु

खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत १५ ग्रन्थ आते हैं– खुद्दकपाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, अपदान, बुद्धवंस एवं चरियापिटक।

पालिसाहित्य में त्रिपिटक के बाद अनुपिटक साहित्य हैं। अट्ठकथा साहित्य एवं अट्ठकथा पर सिंहली भिक्षुओं की टीकाएँ तथा वर्मी पालि साहित्य। वंशसाहित्य–दीपवंस, महावंस, बुद्धघोसुप्पति, सद्धम्मसंगह, महाबोधिवंस, थूपवंस, अत्तनुगलुविहारवंस, दाठावंस, छकेसधातुवंस, नलाटधातुवंस, संदेसकथा, गन्धवंस, सायकवंस एवं संगीतिवंस।

काव्यग्रन्थ–अनागतवंस, तेलकटाहगाथा, जिनालंकार, जिनचरित, पज्जमधु, सद्धम्मोपायन, पञ्चगतिदीपन, लोकप्पदीपसार, रसवाहिनी, बुद्धालंकार सहस्सवत्थुव्याकरण, राजाधिराज विलासिनी,

पालिव्याकरण	:	कच्चायन, मोग्गलान एवं सद्दनीति ।
पालिकोश	:	अभिधानप्पदीपिका, एकक्खरकोस
छंदशास्त्र	:	वुत्तोदय
काव्यशास्त्र	:	सुबोधालंकार एवं अभिलेख साहित्य

पालिभाषा ने हमारी आधुनिक भाषाओं को तो प्रभावित किया ही हैं। सिंहल, ब्रह्मदेश, श्याम, कम्बोडिया और लाओस की भाषाओं पर प्रभाव डाला हैं।

आधार-ग्रन्थ–

१. पालि साहित्य का इतिहास – भरतसिंह उपाध्याय

२. पालि साहित्य का इतिहास – भिक्षु धर्मरक्षित

• • • •

पालि साहित्य में मुक्तक तथा गेय काव्य एवं उसका वैशिष्ट्य

भगवान् बुद्ध के वचनों को संरक्षित करने वाला पालि साहित्य विशाल हैं। जिसतरह कहा जाता हैं कि 'राम तुम्हारा जीवन चरित स्वयं ही काव्य है। कोई भी कवि बन जाए यही संभाव्य हैं।' इसी तरह भगवान बुद्ध की वाणी में जो आनन्द हैं वह किसी भी काव्य से कम नही हैं। पालि साहित्य में धर्म दर्शन एवं इतिहास के तत्व तो भरे पड़े ही हैं, काव्य-तत्वों की भी भरमार हैं। भगवान बुद्ध को महाभिषक् कहा गया हैं। एक वैद्य की तरह भगवान ने लोकोपकारी अपने उपदेशों को कहानी, उपमा, रूपक एवं युक्तिपूर्वक समझाने का सफल प्रयास किया हैं।

यं बुद्धो भासती वाचं, खेमं निब्बाणपत्तिया ।
दुक्खस्सन्तकिरियाय सा वे वाचानमुत्तमा ति।।

स्थविरवादी बौद्ध परम्परा ने कल्पनात्मक प्रदर्शन को अपनी साधना का अंग नहीं बनाया, बल्कि उसे हेयता की दृष्टि से देखा। कविकृत रचनाओं (कविता) और सामान्य काव्य (कावेय्य) को यहाँ भिक्षुसंघ के लिए अमागत भय बताया गया है। विचित्र अक्षरों वाली (चित्तक्खरा) और विचित्र व्यजनों वाली (चित्तव्यंजना) रचनाओं के स्थान पर सार्थक सव्यंजना आदिकल्याण, मध्यकल्याण एवं अन्त कल्याण की देशना है। **'समणो-धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसान कल्याणं, सात्थं सव्यंजनं केवलपरिपुणं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेतीति।'** भगवान बुद्ध ने पंचशील के अन्तर्गत पाचवीं शिक्षा में नृत्यगान माला गन्ध विलेपन के त्याग की बात कही थी। जिनके आधार पर यह माना जाता है कि भगवान् बुद्ध की देशना में काव्य तत्व का कोई स्थान नहीं। वस्तुतः आज जैसे शास्त्रीय संगीत एवं पाश्चात्य संगीत डिस्को डांस आदि का भेद है उसी तरह दरवारी नृत्यगान उस समय राजाओं एवं बडे. अभिजात्य वर्ग के विलास के साधन थे यहाँ दरबारी संगीत को एक प्रकार से निषिद्ध किया गया है। भगवान बुद्ध जनता के दुःखों से द्रवित होकर प्रवज्जित हुए थे उनका लक्ष्य भी समस्त प्राणियों को दुःख से मुक्त करना था। इसलिए तत्कालीन राजदरबारों में प्रचलित नृत्यगान आदि में उनका मन क्यों लगता। धम्मपद की गाथा से भगवान् बुद्ध के मन्तव्य का पता चलता है-

को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं किं न गवेसथ।।

संस्कृत मुक्तक तथा गीति काव्य परम्परा

काव्य के अध्ययन से मानव धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष,यश,व्यवहार, कल्याण सदुपदेश एवं आनन्द प्राप्त कर सकता है। [१] साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने महाकाव्यों से भिन्न

लघु काव्यों के लिए खण्डकाव्य शब्द का प्रयोग करते हुए कहा है कि खण्डकाव्य में महाकाव्य के संपूर्ण लक्षण नही पाए जाते। यह महाकाव्य के एक अंश का अनुशरण करता हैं।[२] आधुनिक विद्वान इसे गीति काव्य कहना अधिक उचित समझते हैं। आंग्लभाषा में यह लिरिक पोयेट्री के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों की सम्मति में गीतिकाव्य में निम्न तत्व होते हैं। भावाद्रता, भावान्विति, संक्षिप्तता, सहज अन्तःप्रेरणा, स्वाभाविक अभिव्यक्ति तथा गेयता। सघन आत्मानुभूति भी गेय तत्व की दृष्टि से गीतिकाव्य का एक प्रकार हैं जिसे खण्डकाव्य कहते हैं जैसे मेघदूत, गीतगोविन्द आदि। द्वितीय प्रकार वह हैं जिसमें एक एक पद्य भाव की दृष्टि से स्वतंत्र अपने में पूर्ण तथा चमत्कार में समर्थ हैं।[३] पूर्वापर सम्बन्ध से मुक्त होने के कारण मुक्तक कहलाता हैं।[४] मुक्तक में प्रबन्ध काव्य की भांति रसपेशलता एवं भावतरलता हो सकती हैं।

बौद्ध काव्य परम्परा

नवांग बुद्धवचनों में से गाथा, उदान, इतिवुत्तक एवं जातक- स्पष्ट रूप से मुक्तक काव्य कहे जा सकते हैं। गेय के अन्तर्गत संयुत्तनिकाय के सगाथ वग्ग की गणना की गई है। बौद्ध संस्कृत कवियों में अश्वघोष, मातृचेट्, आर्यशूर, नागार्जुन, शान्तिदेव महान कवि है। यद्यपि बौद्ध कवियों का उद्देश्य पांडित्य प्रदर्शन अथवा काव्यचातुरी नहीं रहा। उनका उद्देश्य एकता भातृ भाव तथा प्रेम भाव का बीजवपन करना था। बोधिसत्व के आदर्श में वर्णित है कि उन्हें न राज्य की लालसा है न स्वर्ग की, दुःख सन्तप्त आर्त लोगों के कष्ट निवारण करना ही उद्देश्य है। अश्वघोष भी कहते हैं कि विद्वता व काव्य कौशल दिखाने के लिए नहीं मुनिश्रेष्ठ के प्रति सम्मान भाव से... शास्त्रानुसार मनुष्यों के हित व सुख के लिए काव्य रचा।

काव्य की शक्ति खड्ग से अधिक और तोप से भी अधिक सबल होती है। अतः बौद्धाचार्यों ने भी धर्म और संस्कृति के प्रचार के लिए काव्य का सहारा लिया। आचार्य कहते हैं कि औषधि मधु के साथ स्वस्थ कर और आनन्ददायी होती है। उसी प्रकार दर्शन एवं धर्म के गहन तत्वों का काव्य मधु के साथ पान कराया गया है। मोक्ष धर्म की व्याख्या से परिपूर्ण यह कृति शान्ति प्रदान करने के लिए है, न कि आनन्द के लिए। अनन्यमनस्क श्रोताओं को आकृष्ट करने के लिए काव्य की कमनीय शैली में रचना की गयी । **"रक्षमनसापि प्रसादः"** रूखे मनवाले पाठकों को भी आनन्दित करने के लिए।[७]

पालि काव्य परम्परा

पालि भाषा में लिखित साहित्य में एक तो आचार्यों द्वारा लिखित काव्य ग्रन्थ अनागत वंस आदि हैं, दूसरे स्वयं त्रिपिटक बुद्धवचन। भगवान बुद्ध की वाणी की तुलना

में काव्यों में भले ही कितना रस, छन्द एवं अलंकार से सजाया जाये, तुलना नहीं हो सकती। इसकी तुलना वेद एवं लौकिक संस्कृत साहित्य से की जा सकती है। जो स्थान वैदिक परम्परा में वेदों का है वह पालि एवं बौद्ध परम्परा में त्रिपिटक का है। वेद में कहा गया है कि **'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।'** यही बात पालि गाथाओं में कही गयी है।

यं बुद्धो भासती वाचं, खेमं निब्बाणपत्तिया ।
दुक्खस्सन्तकिरियाय, सा वे वाचानमुत्तमा।। (सुत्तनिपात)

भरतसिंह का विचार है कि जो पवित्र सौंदर्य हिमगिरि में नही है, जो निष्पापता ऊषा में नही है जो गहनता महासमुद्र में नही है, जो काव्यत्व विश्व में अन्यत्र कहीं नही है, वह ज्ञानी बुद्ध की चर्या में है। तथागत के ईर्या पथ में है, सम्यक् सम्बुद्ध के शब्दों में हैं। पालि ने ही तो इसे प्रस्फुटित किया है। पूज्य भरत सिंह का विचार उल्लेखनीय है कि जब यह कहा जाता है कि पालि काव्य संस्कृत की अपेक्षा कम उन्नत है तो हमारा तात्पर्य त्रिपिटक गत काव्य या काव्यत्व से नहीं होता बल्कि काव्य शिल्पियों की उन रचनाओं से होता है जो बौद्ध विषयों को आधार मानकर उत्तर काल में पालि भाषा की है। इस प्रकार की रचनाओं की प्रधानता श्रीलंका और वर्मा में दशवीं से पन्द्रहवी शताब्दी तक होती रहीं। विषय वस्तु त्रिपिटक से ली गयी है प्रमुख रूप से उसे छन्दोबद्ध किया गया है। आचार्यों द्वारा रचित पालि काव्य को दो प्रकार से बांटा जाता है। वर्णनात्मक एवं आख्यान परक। इन महत्वपूर्ण काव्यों के अधिकांश संस्करण रोमन में निकल चुके है। पज्जमधु का देवनागरी संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ डॉ कोमल चन्द्र जी जैन वाराणसी ने तारा पब्लिकेशन से प्रकाशित कराया है। अधिकांश काव्यों के देवनागरी एवं हिन्दी अनुवाद की प्रतीक्षा है।

आचार्यों द्वारा लिखित काव्य ग्रन्थों का विस्तृत परिचय इस प्रकार है-

अनागत वंस- मिनेयफ द्वारा जर्नल आव पालि टेक्स्ट सोसायटी, १६८६ में रोमन अक्षरों में सम्पादित- भविष्य में संघ पर आने वाले भयों का वर्णन करने वाले सूत्रों तथा दस भावी बुद्धों का वर्णन है। जिसमें दस अध्याय है- गद्य मय गाथाएं। भावी बुद्धों की जीवनी का वर्णन हैं। पद्य मय १४२ जिसमें गाथाएं हैं। जिसमें बुद्ध मैत्रेय का वर्णन है। बुद्धवंस में चौबीस पूर्व के एवं गौतम-बुद्धों का वर्णन है। अनागत वंस में २६वें बुद्ध मैत्रेय का वर्णन है अतः इसे बुद्धवंस की कथावस्तु को पूर्णता देने की दृष्टि से पूरक माना जाता है। दोनों की शैली में पर्याप्त समानता है। रायसडेविड ने इसे बुद्धघोष से भी प्राचीन माना है। गंधवंस में अनागत वंस के रचयिता का नाम कस्सप कहा है।

तेलकटाहगाथा- धर्मरक्षित ने इसका हिन्दी अनुवाद कर महाबोधिसभा सारनाथ से प्रकाशित किया है। इसमें सौ गाथाएं है। इसे परिष्कृत, प्रौढ़ और रमणीय

काव्य माना गया है। काश्यप भिक्षु के द्वारा रचित है। कल्याणी के (केलानिया, श्रीलंका) राजा तिष्य ने भिक्षु को रानी के साथ षडयन्त्र के संदेह में खौलते हुए तेल की कढ़ाई में डालने की आज्ञा दी। मृत्यु के पूर्व चिन्तन से सम्बन्धित ये गाथाएं हैं, जिसमें संसार की अनित्यता, जीवन की असारता और वैराग्य के महत्व पर गम्भीर चिन्तन हुआ है। महावंस एवं रस वाहिनी में भी इस कथा का उल्लेख मिलता है। सिंहली साहित्य में यह कथा बहुत प्रचलित है लेकिन स्वयं तेलकटाहगाथा में इस कथा का उल्लेख नहीं होने के कारण ऐसा विचार किया है कि महामोहमय इस संसार रूपी खौलती हुई कढ़ाई से व्यथित होकर ये गाथाएं लिखी- महाभारत में भी ऐसी चर्चा है-

अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता।।

यह शतक काव्य शैली पर लिखी नैतिक प्रधान रचना है। जो बुद्ध-धर्म के मूल सिद्धान्तों को एक भावनामय भिक्षु की पूरी तन्मयता और मार्मिकता के साथ उपस्थित करती है। ९८ गाथाएं ९ वर्गों या भागों में विभक्त हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं। १. रतनत्तय (तीन रत्न- बुद्ध, धर्म, संघ), २. मरणानुस्सति (मरण की अनुस्मृति), ३. अनिच्चलक्खण (अनित्यता का लक्षण), ४. दुक्खलक्खण, ५. अनत्तलक्खण (अनात्म का लक्षण), ६. असुभ लक्खण, ७. दुच्चरित-आदीनव दुराचार के दुष्परिणाम, ८. चतुरारक्रवा (चार आरक्षाएं), ९. पटिच्चसमुप्पाद (प्रतीत्य समुत्पाद)। इस ग्रन्थ में बुद्ध-धर्म के सभी महत्वपूर्ण विषय- इन गाथाओं में आ गए हैं। ग्रन्थकार की अपने विषय के साथ तल्लीनता है, जिसके दर्शन प्रत्येक गाथा में होते हैं। अनात्मसंज्ञा पर यह उक्ति देखिए-

पोसो यथा हि कदलीसु विनिब्भुजन्तो,
सारं तदप्पमपि नोपलभेय्य कामं।
खन्धेसु पञ्चसु छलायतनेसु तेसु,
सुञ्ञेसु किञ्चिदपि नोपलभेय्य सारं। तेलकटाहगाथा, ६०

अर्थात- जिस प्रकार केले के तने को उधेड़ते हुए मनुष्य उसमें कुछ भी सार न पाये, उसी प्रकार इन पंच स्कन्धों और छह आयतनों में भी कुछ सार नहीं है। प्रतिकूल-मनसिकार पर प्रस्तुति देखिए-

गंडूपमे विविधरोगनिवासभूते,
काये सदा रुधिरमुत्तकरी सपुण्णे।
यो एत्थ नन्दति नरो ससिगालभक्खे,
कामं हि सोचति परत्थ स बालबुद्धि।। - तेलकटाहगाथा, ६९

अर्थात्- जो मूर्ख आदमी फोड़े के समान विविध बीमारियों के घर, खून, पेशाब और पाखाना से भरे हुए, गीदड़ों के भक्ष्य, इस शरीर को देखकर आनन्दित होता है, वह अवश्य ही यहाँ से जाकर परलोक में दुःख पाता है। ये गाथाएं 'तेलकटाहगाथा' की काव्यगत सुन्दरता का परिचय देने में पर्याप्त हैं। प्रथम बार पढ़ने पर ही उनमें भर्तृहरि के वैराग्य-सम्बन्धी पदों का सनिर्वेद प्रकाशित होने लगता है। भाषा और शैली की दृष्टि से इस गाथा को देखिए-

सोपानामालममलं तिदसालयस्स संसारसागर समुत्तरणाय सेतुं।
सब्बागतीभय विवज्जितखेममग्गं धम्मं नमस्सथ सदा मुनिना पणीतं।।

अर्थात बुद्ध द्वारा प्रणीत उस धर्म की वन्दना करो, जो स्वर्ग की विमल सीढ़ी के समान है, जो संसार रूपी सागर को तरने के लिए पुल के समान है और जो सम्पूर्ण आपत्तियों और भयों से रहित एवं कल्याण का मार्ग है।

'सोपानमालममलं' एवं 'संसारसागरं समुत्तरणाय' जैसे पदों में अनुप्रास की छटा देखने को मिलती है।

जिनचरित- भगवान् बुद्ध की सम्बोधि प्राप्ति तक की जीवनी एवं ४५ वर्षीय वर्षावास का अच्छा वर्णन है। इसमें ४७२ गाथाएं हैं। इसकी विषयवस्तु की सदृशता जातक निदान कथा से है लेकिन यह छन्दोबद्ध है। चार्ल्स डुरोइपिल ने इस ग्रन्थ के सन्दर्भ में कहा है रस से ओत प्रोत इसकी तुलना संस्कृत में लिखित बुद्धचरित से की जा सकती है।

इस ग्रन्थ के स्रोत पर विचार करते हुए आपने कहा है कि काव्य शैली के लिए ये संस्कृत काव्यों के ऋणी नहीं कहे जा सकते। डा० लाहा का विचार हैं कि जातक साहित्य और सुत्तनिपात के नालक जैसे सुत्तों की गाथाएं नमूने हो सकते हैं। कालिदास एवं अश्वघोष को इन स्रोतों से काव्य शैली के निर्धारण में पर्याप्त प्रेरणा मिली होगी। इसके लेखक मेघंकर थे, जिनचरित के अंतिम पद्य में लेखक ने कहा है कि इस ग्रन्थ की रचना विजयबाहु द्वारा निर्मित परिवेण में की। पयोगसिद्धि के रचयिता बनरतन मेघंकर थे। यह डबलू. एच. डी. रायस द्वारा जनरल ऑफ पालि टेक्स सोसायटी १९०४-१९०५ में अंग्रेजी अनुवाद सहित रोमन लिपि में सम्पादित रंगून १९०६ में प्रकाशित हुआ।

पज्जमधु- १०४ गाथाओं में शतक ढंग की रचना है। बुद्ध-स्तुति इसका विषय है। प्रथम ६९ गाथाओं में बुद्ध की सुन्दरता का वर्णन है, शेष में उनके ज्ञान और संघ की प्रशंसा है। पज्जमधु' बुद्धप्पिय(बुद्धिप्रिय) नामक स्थविर की रचना है, जो स्थविर वैदेह (वेदेह थेर) के समकालीन भिक्षु थे। बुद्धप्पिय चोल देश के निवासी थे परन्तु शिक्षा उन्होंने लंका में सिंहली भिक्षु आनन्द वनरतन के शिष्यत्व में पायी थी। 'पज्जमधु' की

१०३ वी गाथा में कविभिक्षु ने अपना परिचय देते हुए अपने को आनन्द का शिष्य बताया है।

सद्धम्मोपायन- ६२८ गाथाओं में सधम्म की भेंट(उपायन) के रूप में बौद्ध-धर्म के नैतिकमार्ग के गुणों का वर्णन है। विषय नवीन न होते हुए भी शैली में पर्याप्त ओज और मौलिकता है। ग्रन्थ को दो मुख्य भागों में बॉटा जा सकता है। १. दुराचार के दुष्परिणाम, २. सदाचार की प्रशंसा या उसके सुपरिणाम। इसके साथ-साथ बौद्धधर्म के सभी मौलिक सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है। पाप-दुष्परिणाम, पुण्य फल, दान-प्रशंसा शील-प्रशंसा, अ-प्रमाद आदि के काव्यमय वर्णन काफी अच्छे हुए हैं। पद्यबद्ध होते हुए भी 'सद्धम्मोपायन' के विवेचन इस विषय सम्बन्धी गद्य-ग्रन्थों से अच्छी तरह मिलाये जा सकते हैं। उनको काव्यमय रूप देने में और साथ ही उनका विचारात्मक अंश अक्षुण्ण रखने में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। सद्धम्मोपायन के रचयिता सिंहली स्थविर आनन्द थे, जो 'अभयगिरी कवि चक्रवर्ती आनन्द' भी कहलाते थे। उन्होंने यह रचना अपने प्रिय सब्रह्मचारी बुद्धसोम (बुद्धसोमस्स प्रियसब्रह्मचारिनो) को भेंट करने के लिए और उन्हें भिक्षुपन न छोड़ने की सलाह देने के लिए लिखी थी। सद्धम्मोपायन पर 'सद्धम्मोपायन-विग्गह नाम की एक व्याख्या भी लिखी गई।

पंचगतिदीपन- ११४ गाथाओं में उन पांच गतियों या योनियों का वर्णन है। जिन्हें प्राणी अपने भले या बुरे, कायिक वाचिक और मानसिक कर्मों के कारण प्राप्त करते हैं। यथा नरक-योनि, पशु योनि, भूत-प्रेतादि की योनि, मनुष्ययोनि और देव-योनि। वर्णन अत्यन्त सरल स्वाभाविक एवं प्रसादगुणयुक्त हैं। प्रारंभ में ही कम से कम आठ प्रकार के नरकों का वर्णन किया गया है यथा संजीव, काल-सूत्र, (काल-सुत्त), संघात, रौरव (रोरूव) महारौरव तप, महातप और अवीचि। इनकी यातनाओं का वर्णन तो निश्चय ही रोमांचकारी है। अति महत्वपूर्ण भाग वह है जहॉ नाना प्रकार के पापकर्मों के परिणामस्वरूप वहॉ जाना दिखलाया गया है। तुलनात्मक पौराणिक तत्व के विद्यार्थी के लिए 'पंचगति-दीपन' में प्रभूत सामग्री मिल सकती है। इसके रचयिता या उसके काल के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है

लोकप्पदीपकसार- इसकी विषयवस्तु 'पंचगतिदीपन' के समान ही है। 'सासनवंस' के वर्णनानुसार यह चौदहवीं शताब्दी के वर्मी भिक्षु मेधंकर की रचना है। जिन्होंने अध्ययनार्थ सिंहल में प्रवास किया था और बाद में बर्मा में आकर रहे। पंचविध योनियों का वर्णन करने के अतिरिक्त यहाँ आख्यानों के द्वारा उनमें निहित नैतिक उपदेशों को समझाया भी गया है। महावंस से इस ग्रन्थ में काफी सामग्री ली गयी है।

पालिआख्यान-रसवाहिनी- पालि आख्यानों में 'रसवाहिनी' का नाम अधिक प्रसिद्ध है। मौलिक रूप में यह सिंहली भाषा की रचना थी। महाविहारवासी रट्ठपाल(राष्ट्रपाल)

नामक स्थविर ने इसका प्रथम पालि रूपान्तर किया। बाद में प्रसिद्ध सिंहली भिक्षु वैदेह स्थविर (वेदेह थेर) ने इसको शुद्ध कर इसे नवीन रूप प्रदान किया। वैदेह स्थविर ने भी स्वयं अपने को 'वनवासी' संप्रदाय का अनुयायी बतलाया है। इन्हीं की रचना समन्तकूटवण्णना नामक कविता भी है। इसे ग्रन्थ में ७६६ पालि वृत्त हैं किन्तु इनकी अधिक प्रसिद्ध रचना 'रसवाहिनी' हीं है। बुद्ध-पूजा का तत्व इस ग्रन्थ की कुछ कहानियों में ध्वनित होता है, जो महायानी प्रवृत्ति या भारतीय भक्तिवाद के प्रभाव का सूचक है। रसवाहिनी की एक 'रसवाहिनी-गण्ठिका' नामक पालि-टीका भी लिखी गई । सिंहली भाषा में इसका शब्दशः अनुवाद भी मिलता है। बर्मा में यह ग्रन्थ मधुरसवाहिनी के नाम से प्रसिद्ध है।

बुद्धालंकार- १५ वीं शती के वर्मा निवासी शीलवंस नामक भिक्षु की रचना है। यह पद्य बद्ध है। निदानकथा की सुमेध-कथा पर यह आधारित है।

सहस्सवत्थुप्पकरण- इसमें एक हजार कहानियां संगृहीत है। यह मौलिक रूप में लंका में लिखा गया था। इस ग्रन्थ की 'सहस्सवत्थट्ठकथा' नामक एक टीका भी थी, जिसका उल्लेख कई बार महावंस-टीका में किया गया है। मलालसेकर ने इसे ही 'रसवाहिनी' का स्रोत माना है।

राजाधिराजविलासिनी- १८वीं शती के बर्मी राजा बोदोपया(बुद्धप्रिय) की प्रार्थना पर लिखा गया एक पद्य-ग्रन्थ है। जिसमें उनकी प्रशंसा की गई है। इसका आधार जातक ही है। इसके अतिरिक्त १५वी शती में वर्मा के निवासी रट्ठसार ने कुछ जातको का पद्यबद्ध अनुवाद किया। भिक्षु तिपिटकालंकार ने १७वीं शती में वंस्सन्तर जातक का पद्य बद्ध अनुवाद किया। अट्ठारहवी शताब्दी में 'मालालंकारवत्थु' नामक बुद्ध जीवनी भी किसी भिक्षु ने लिखी।

वुत्तोदय- पालि में छन्दशास्त्र पर 'वुत्तोदय' (वृत्तोदय) नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह छह परिच्छेदों में है। और गद्य-पद्य मिश्रित रचना है। 'छन्दोविरचित' कविसारपकरण' और 'कविसार-टीका-निस्सय' नामक अल्पप्रसिद्ध के ग्रन्थ और भी छन्द शास्त्र पर पालि में है। वुत्तोदय' की रचना सिंहली भिक्षु सारिपुत्त के शिष्य, खुद्दकसिक्खा-टीका और कच्चायन व्याकरण पर 'सम्बन्ध चिन्ता' के लेखक स्थविर संघरक्खित ने की हैं, जिनका काल १२ वीं शताब्दी का उत्तरभाग है। चौदहवीं शताब्दी में पगान के प्रसिद्ध विद्वान भिक्षु सद्धम्मआर्ण ने वुत्तोदय पर अपनी टीका लिखी जो 'वुत्तोदय पंचिका' या 'छन्दोसारत्थ विकासिनी कहलाती है। सिंहली भिक्षु सारिपुत्त के शिष्य राचिस्सर की लिखी 'वुत्तोदय -विवरण' नाम की एक अन्य टीका भी 'वुत्तोदय' पर मिलती है। 'वुत्तोदय' पर वचनत्थजोतिका' नाम की एक अन्य टीका बरमा में ही पगान के वेपुल्ल या वेपुल्लबुद्धि के द्वारा और एक अन्य टीका पन्या(बरमा) के

नव-विमल बुद्धि या चुल्ल विमल-बुद्धि के द्वारा लिखी गई। उन्नीसवीं शताब्दी में बरमा में छन्दशास्त्र पर एक रचना पालि में लिखी गई, जिसका नाम है'-छन्दोमंजरी' । इसके लेखक विसुद्धाचार नामक बर्मी विद्वान थे। और इन्होंने यह रचना सन् १८६७ में लिखी। बर्मी भाषा में इस पर एक 'निस्सय' भी लिखा गया। पन्द्रहवीं शताब्दी में श्री लंका के परिवेण के निवासी थेर उपतस्सी के द्वारा लिखी गई 'दुत्तमाला' या बुत्तमाला सन्देस-सतक' भी उल्लेखनीय है। इसमें छन्दों की ध्वनियों का उच्चारण सिखाया गया है, इसका विषय राज-स्तुति आदि प्रवचन है।

काव्यशास्त्र-सुबोधालंकार-पालि काव्य-शास्त्र पर 'सुबोधालंकार'एक मात्र रचना है। इसके रचयिता स्थविर संघरक्खित ही हैं इस पर वाचिस्सर (सिंहली भिक्षुसारिपुत्त के शिष्य) ने टीका लिखी है। सुबोधालंकार पर 'अलंकार-निस्सय' नाम की एक व्याख्या सन् १८९० में बर्मा में लिखी गयी। 'छपच्च्वयदीपनी' नामक एक काव्य शास्त्रीय रचना बर्मी भिक्षु सद्धमीआण ने चौदहवी शताब्दी के आदि में लिखी । इस प्रकार छक्किन्दाभिसिरि नामक बर्मी लेखक ने सन् १८७२ में काव्य सारत्थसंग्रह नामक एक रचना लिखी।

त्रिपिटक में मुक्तक एवं गेय काव्यत्व

समन्तपासादिकापालि अट्ठकथा में संयुत्तनिकाय के सम्पूर्ण सगाथवग्ग को गेय माना है।

सब्बं पि सगाथकं सुत्तं गेय्यं ति वेदितब्बं ।
विसेसेन संयुत्तं सकलो पि सगाथवग्गो ।। (भाग १, पृ० २५)

गेय संस्कृत के 'गेय' के तुल्य है जिसका तात्पर्य छन्दोबद्ध रचना से होना चाहिए। आचार्य नरेन्द्र देव ने गेय्य और गाथा को किसी छन्द विशेष में न मानकर श्लोकों का संग्रह मात्रा माना है। संयुत्तनिकाय में वंगीस भिक्षु का परिचय कवि के रूप में मिलता है भिक्षु अवस्था के पूर्व वंगीस ने अपना जीवन कविताजीवी के रूप में बिताया था। ये घूमते हुए कविता पढ़ते रहते थे। वंगीस भिक्षु अपनी तुरन्त रचित गाथाओं से प्रमुख भिक्षुओं सहित भगवान की स्तुति करते हैं ।

'दिवाविहारा निक्खम्म, सत्थुदस्सन कम्यता।
सावको ते महावीर, पादे वन्दति वंगीसो'ति।।

भगवान इनकी कविता शक्ति पर आश्चर्य प्रगट करते हैं ।[६]

सुत्तनिपात के छन्दों में वैदिक ग्रन्थों की भाँति आठ अक्षरों वाले अनुष्टुप, ग्यारह अक्षर वाले त्रिष्टुप तथा बारह अक्षर वाले छन्द अधिक हैं। छन्द की गाथाओं में सात सात आठ आठ पद तक है। डॉ वापट ने इन्हीं कारणों को दिखलाकर लिखा है कि सुत्तनिपात अत्यंत प्राचीन है। क्योंकि वेद को छोड़कर पीछे छन्द की यह स्वतंत्रता

देखने को नहीं मिलती। कुछ गाथाएं अर्थसम और विषम छन्दों में है तथा कुछ पांच छः या सात पदों की है जिन्हें गाथा छन्द कहा जाता है।[10]

उदान में वर्णित है कि भगवान सोण नामक भिक्षु से पूछते हैं कि उसने धर्म को कैसे समझा तो सोण भिक्षु सोलह अष्टक वर्गों को सस्वर सुना देता है। इसका अनुमोदन करते हुए भगवान कहते हैं कि साधु, भिक्षु, सोलह अष्टक वर्गों को उसने अच्छी तरह से समझा है, याद किया है। धम्मपद में 'महाप्रज्ञ' के लिए भाषा और काव्य का जानकार आवश्यक बतलाया गया है। वह अक्षरों के पहले व पीछे रखने को जानता है।

'वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो
अक्खरानं सन्निपातं जञ्ञा पुब्बापरानि च ।
स व अन्तिमसरीरो महापञ्ञोति वुच्चति ।। धम्मपद २४/१६

धम्मपद में परवर्ती सन्तसाहित्य में प्रचलित उलटवासी के बीज मिलते हैं ।

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ।। २१/५
वेय्यग्घपंचमं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ।

यहॉं पर तृष्णा को माता, अंहकार को पिता, शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद को दो क्षत्रिय तथा रूप विज्ञान आदि उपादानों को अनुचर सहित राष्ट्र एवं ज्ञान के आवरण को ब्याघ्र बताकर इन्हे मारने की सलाह दी गयी है।

संयुत्तनिकाय में ऐसे बहुत संदर्भ प्राप्त होते है। जिसमें कोई देवपुत्र गाथा में प्रश्न पूछता है। यह प्रश्नोत्तरी काव्यात्मक आख्यान के अच्छे संदर्भ हैं।

अन्तो जटा बहि जटा, जटाय जटिता पजा।....
तं तं गौतम पुच्छामि को इमं विजटये जटं ।।
सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं ति।।

पश्चात इन्हीं गाथाओं के आधार पर आचार्य बुद्धघोष ने श्री लंका में अट्ठकथा का ज्ञान प्राप्त किया एवं विशुद्धिमग्ग की रचना की। कुछ यक्ष प्रश्न दिये गये है। यक्ष आकर पूछता है कि मैं तुमसे प्रश्न पूछूंगा यदि उत्तर न दे सके तो बदहवाश कर दूंगा, छाती चीर दूंगा, या पैर पकड़कर गंगा में फेंक दूंगा। भगवान कहते हैं ऐसा सम्भव नहीं फिर भी प्रश्न पूछो, यक्ष पूछता है कि कैसे प्रज्ञालाभ होता है धन कैसे कमाया जाता है। कीर्ति कैसे प्राप्त होती है, मित्रों को कैसे अपनाया जाता है। इस लोक से परलोक तक कैसे शोक नहीं करता। भगवान उत्तर देते हैं कि अप्रमत्त और विचक्षण पुरुष सेवा करके प्रज्ञा लाभ करता है। अनुकूल काम करने वाला परिश्रमी उत्साही, धन कमाता है।

सत्य से कीर्ति प्राप्त होती है। कुछ देकर मित्रों को प्राप्त करता है। जिस गृहस्थ के सत्य, दम, त्याग, और शान्ति- ये चार धर्म होते हैं वह कहीं भी शोक नहीं करता। यह दूसरे श्रमणों और ब्राह्मणों से भी पूछा जा सकता है।[११] पूर्व पक्ष के रूप में लोक जीवन की अच्छी झांकी मिलती है।

नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा,
गोमिको गोहि तथेव नन्दति।
उपधीहि नरस्स नन्दना,
न हि सो नन्दति यो निरूपधीति।
सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा,
गोमिको गोहि तथेव सोचति ।
उपधीहि नरस्स सोचना
न हि सो सोचति यो निरूपधीति।[१२]
मातरं कुटिकं ब्रूसि, भरियं ब्रूसि कुलावकं ।
पुत्ते सन्तानके ब्रूसि, तण्हं में ब्रूसि बन्धनं 'ति'।[१३]

प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन जगह जगह मिलता है एवं उसे ध्यान में उद्दीपक बताया गया है... वर्षा काल है। सुन्दर नीली ग्रीवा वाले, कलंगीधारी मोर अपने सुन्दर मुखों से बोल रहे हैं कितनी मधुर है उनकी कूजन। विस्तृत पृथ्वी चारों ओर हरियाली से भरी हुई है। सारी सृष्टि जल से व्याप्त है। आकाश में जल पूरित कृष्ण मेघ छाये हुये है। ध्यान के लिए यह उपयुक्त अवसर है। भिक्षु को प्रसन्नता है कि उसका ध्यान अत्यन्त सुचारु रूप से चल रहा है । बुद्धशासन के अभ्यास में वह अप्रमादी है। प्रकृति के उल्लास के साथ भिक्षु भी है।[१४]

संयुत्तनिकाय के सगाथ वग्ग में तत्कालीन समाज में प्रचलित मान्यताओं एवं बुद्ध विचारों का भेद स्पष्ट पता चलता है। देवता आकर कहता है-

"अरण्ये विहरन्तानं, सन्तानं ब्रह्मचारिनं।
एकभत्तं भुंजमानानं, केन वण्णो पसीदति।
अतीतं नानुसोचन्ति, नप्पजप्पन्ति नागतं
पच्चुप्पन्नेन यापेन्ति, तेन वण्णो पसीदति ।।[१५]
खत्तियो द्विपदं सेट्ठो, बलीबद्दो चतुप्पदं।
कोमारी सेट्ठा भरियानं, यो च पुत्तानं पुब्बजो'ति
सम्बुद्धो द्विपदं सेट्ठो आजानीयो चतुप्पदं।
सुस्सूसा सेट्ठा भरियानं, यो च पुत्तानमस्सवो।।"[१६]

थेरगाथा एवं थेरीगाथा में भिक्षु-भिक्षुणिओं का प्रकृति प्रेम परिलक्षित होता है।

भिक्षुओं के जीवन के अनुभव प्रकृति से जुड़े है। गिरी, गुहा, नदी, तट, वन, प्रस्थ, पुआल पुंज अथवा किसी छाई हुयी या बिना छायी हुयी कुटिया में ध्यान करते हुए भिक्षुओं को वर्षा गीत आदि ऋतुओं के परिवर्तन का और पृथ्वी और आकाश के अनेक रंगों और रूपों के परिवर्तन का साक्षात अनुभव होता था। प्रकृति के अनेक रूपों की प्रतिक्रिया उनके चित्त पर कैसी होती है, इसके चित्र थेरगाथा में देखे जा सकते है।

कृषि भारद्वाजसुत्त में रूपक के माध्यम से भगवान् की कृषि का प्रतिपादन किया गया है।

'सद्धा बीजं तपो वुट्ठि, पञ्ञं मे युगनंगलं।
हिरि ईसा मनो योत्तं, सति मे फाल पाचनं ।।
कायगुत्तो वचीगुत्तो, आहारे उदरे यतो।
सच्चं करोमि निद्दानं, सोरच्चं में पमोचनं।।
विरियं.....
एवमेसा कसी कट्ठा, सा होति अमतप्फला।
एतं कसिं कसित्वान, सब्बदुक्खं पमुच्चति।।'[१७]

समाज एवं व्यक्ति को जागृत करते हुए कहा है कि -

पंडुपलासो'व दानि'सि यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता।
उय्योमुखे च तिट्ठसि पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति।।

-धम्मपद १८/१

वनं छिन्दथ मा रूक्खं वनतो जायतो भयं।
छेत्वा वनं च वनथं च निब्बाना होथ भिक्खवो।। -धम्मपद १४.१८

विण्टरनित्स ने जातक को सात भागों में बांटा है उसमें एक महाकाव्य या खण्ड काव्य है। जैसे- वानरिन्द जातक (५७), विलाख जातक (१२८), सीहचम्म जातक (१८६), सुसुमार जातक (२०८), संधिभेद जातक (३४६)

जातको में प्रतिपादित व्यंग्य काव्यात्मक रूप लिये हैं। एक बन्दर कुछ दिनों के लिए मनुष्यों के बीच में आकर रहा। लौटने पर साथियों ने पूछा- मनुष्यों का बरताव कैसा है? बन्दर ने कहा... "हिरण्य मेरा, सोना मेरा- ऐसा रात दिन चिल्लाते रहते है। एक की पूँछ नहीं होती... उसके लम्बे केस होते है। बेणी होती है। कानों मे छेद होते है उसे बहुत से धन से खरीदा जाता है। यह सब जनों को कष्ट देता है। इतना सुनते ही बन्दरों ने आगे सुनने से इनकार कर दिया । मत कहें मत कहें"। इसी तरह कई जातक विनोद से भरे है। वानरेन्द्र जातक में मगरगच्छ अपनी स्त्री के कहने पर बानर का हृदय चाहता था। वानर अपनी चतुरता से बच निकला । रोहणी जातक में मक्खी

हटाने के लिए दासी ने माता को मूसल से मार दिया। संक्षिप्त नाटक के रूप में उम्मदंती जातक उल्लेखनीय है। मलालसेकर के अनुसार जातकों का संबंध भारतीय साहित्य की उस आख्यान विधा से है जिससे उत्तरकालीन महाकाव्यों का विकास हुआ।[१८]

इतिवुत्तक खुद्दकनिकाय का ग्रन्थ है। नामकरण का आधार है कि 'ऐसा बुद्ध ने कहा' ११२ एवं ४ निपातों में विभक्त संख्या के आधार पर विभाजित है। यह याद करने की सुविधा के लिए है। संस्कृत एवं जैन बौद्धों का प्राचीन साहित्य इसी शैली में है। यह गणनात्मक होते हुए भी इसकी स्वाभाविकता में कोई बाधा नहीं पहुँचती । अलंकार विहीन सौंदर्य नैसर्गिक रूप में मिलता है। यह गद्य पद्य मिश्रित है। यह उदान की तरह प्रामाणिक बुद्ध वचन है। उदान हर्षातिरेक से निकले बुद्धवचन है। जटिल सिद्धान्त भी उदान में अत्यन्त सहज भाव में प्रकट हुए हैं जैसे लोहे के घन की चोट पड़ने पर जो चिनगारियाँ उठतीं हैं, और तुरन्त ही बुझ जाती हैं। कहाँ पर गयीं कुछ पता नहीं चलता, इसी प्रकार काम बन्धन से मुक्त हो निर्वाण पाये हुए तथा अत्यन्त सुख पाये हुए जन की गति का कोई पता नहीं लगा सकता ।

विभिन्न प्रसंगों में शृंगार के विभाव को शांत रस से सामंजस्य का एक अनुपम उदाहरण देखा जा सकता है।

न ताव सुपितं होति रत्ति नक्खत्तमालिनी
पटि जग्गितुमेवेसा रत्ति होति विजानता ।[१९]

ध्यान सुख को संगीत के आनन्द से श्रेष्ठ बताया गया है।

पंचाङ्गिकेन तुरियेन न रत्ति होति तादिसी ।
यथा एकग्गचित्तस्स सम्मा धम्मं विपस्सतो।।

भरतसिंह उपाध्याय का विचार है कि बौद्ध संत महिलाओं की थेरी गाथा भारतीय गीत काव्य की, विशेषतया आध्यात्मिक गीत काव्य की अतुल सम्पत्ति है। जयदेव, चण्डीदास, मीरा या ऋग्वेद की गीतिपरक ऋचाओं से भी अपना विशेष मानवीय सौंदर्य और पीडा की गहनता और विविधता लिये हुये है। संयुत्तनिकाय के सगाथवग्ग को जिसे विशेष गेय्य की संज्ञा दी गई है। गाथाए संगीतात्मक रूप लिए हुए हैं। इन गाथाओं के माध्यम को सामाजिक सन्दर्भों को लेकर अच्छा संवाद है जिसे आज कव्वाली आदि में देखा जा सकता है। संयुत्तनिकाय के एक गाथात्मक संवाद का उदाहरण इस प्रकार है-

किं ददो बलदो होति, किं ददो होति वण्णदो।
किं ददो सुखदो होति, किं ददो होति चक्खदो।
को च सब्ब ददो होति, तं मे अक्खाहि पुच्छतो ति।

उत्तर– **अन्नदो बलदो होति, वत्थदो होति वण्णदो।**
यानदो सुखदो होति, दीपदो होति चक्खुदो।।
सो च सब्बददो होति, यो ददाति उपस्सयं।
अमतं ददो च सो होति, यो धम्ममनुसासती।।

पालि साहित्य को किसी धार्मिक सम्प्रदाय मात्र का साहित्य नहीं कहा जा सकता। वह जाति, धर्म रहित विश्व मानव का साहित्य है। संकुचित राष्ट्रीय आदर्शों की अभिव्यक्ति इसमें नहीं है।

विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से भरतसिंह ने माना है कि अर्थगौरव और प्रभावमयी ओजस्वनी भाषा शैली किसी भी साहित्य से टक्कर ले सकती है । संस्कृत काव्य से तुलना करते हुए कहा गया है कि भारतीय साहित्य के इतिहास में पालि का स्थान संस्कृत से व्यतिरिक्त नहीं, संस्कृत साहित्य रूपी महासमुद्र में पालि महासागर का एक आवर्त है। भारत के बाहर देशों में पालि संस्कृत से कहीं अधिक प्रभावशीलता में बढ़ गयी है। तथागत की संदेशवाहिका होने के कारण पालि जैसी प्रादेशिक भाषा को विश्वस्तरीय सौभाग्य मिला।

पालि भाषा का एशिया में विकास अन्य भाषाओं की तरह साम्राज्य वाद के कारण नहीं बल्कि 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के चलते हुआ। अशोक पुत्र महेन्द्र का जयघोष उल्लेखनीय है जब वे श्री लंका में जाकर कहते हैं कि तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करने के लिए जम्बूदीप से आये हैं।

त्वेव अनुकम्पाय जम्बूदीपा इधगता। [२०]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यदि काव्य का अर्थ है मानव के जीवन के व्यापक गहन के मार्मिक अनुभवों की शब्द और अर्थ की निर्व्याज सुन्दरता के साथ **'सात्थं सव्यञ्जनं बहुजन हिताय'** अभिव्यक्ति है तो सम्पूर्ण त्रिपिटक बुद्धवचन ही सर्वोत्तम काव्य है। भगवान् बुद्ध वीणा की उपमा से अपने मध्यम मार्ग को समझाते हैं जैसे वीणा के तार अधिक कसे होने पर टूट जाते हैं एवं ढीले होने पर आवाज नहीं निकलती, उसी तरह अत्यधिक कामसुख का सेवन तथा अत्यधिक कठोर तपस्या को दो अन्त बतलाते हुए मध्यममार्ग की सलाह दी गई है। इस संसार को पार करने की तुलना बाढ़ से की गई है जैसे तैरते समय कोई अधिक छटपटाता है या स्थिर रहता है तो डूब जाता है। भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का इतना प्रभाव पड़ता था कि सामने वाला नतमस्तक होकर कहने लगता है कि **अभिक्कन्तं भो गोतम! अभिकन्तं भो गोतम ! सेय्यथापि भो गोतम! निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य परिच्छन्नं वा विवेरय्य, मूल्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्तीति। एवमंतं भो गोतमेन अनेकपारियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भगवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि, धम्मं च**

भिक्खुसघं च। उपासकं मं भगवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेंतं सरणं गतं ति। कुछ उपासक प्रसन्न होकर भगवान से भिक्षा की याचना करते थे लेकिन भगवान उसे स्वीकार नही करते थे, गाथाभिगीतं में अभोजनेय्यगाथाएं गीत के रूप में गेय थी, लेकिन उनके बदले में भिक्षा को निषिद्ध किया गया है।

उक्त सन्दर्भों से स्पष्ट होता है कि भगवान बुद्ध की वाणी में संगीत एवं प्राकृतिक काव्यत्व विद्यमान है ।

सन्दर्भ-विवरण

१. धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीतिं च साधुकाव्य निबन्धनम् ।।
काव्यं यशसे अथग्कृते व्यवहारविदे शिवेतर रक्षतये ।
सद्यः परिनिवृत्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे ।।
-... बौद्ध संस्कृत काव्य समीक्षा, पृष्ठ ५१

२. खण्डकाव्यं काव्यं भक्ते काव्यस्यैकदेशानुसारं च ... साहित्य दर्पण ६/२३६

३. मुक्तकं श्लोकेश्चमत्कारक्षमः सताम्। -अग्निपुराण, अ० ३६

४. तेन मुक्तेन मुक्तकम्। - साहित्यदर्पण, ६/३१४

५. मुक्तकेषु बन्धस्वित् रसबंधाभि निवेशनं काव्यं दृश्यते। - ध्वन्यालोक, उद्योत ३

६. संस्कृत साहित्य का इतिहास, चतुष्टयी पृ. १४८, सम्पा.- राधावल्लभ त्रिपाठी,
प्रका.-मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १६७४

७. •प्रारम्भिक बौद्धधर्म दर्शन - डा. विजय कुमार जैन
•पालि साहित्य का इतिहास - भरतसिंह उपाध्याय

८. •बौद्ध संस्कृत काव्य समीक्षा - डा० रामायण प्रसाद द्विवेदी, प्रका. काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी
•पालि साहित्य का इतिहास - भरत सिंह उपाध्याय

६. वंगीससंयुत्त, संयुत्तनिकायपालि, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, पृ० १६३

१० सुत्तनिपात, सम्पादक, भिक्षु धर्मरक्षित, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठभूमि

११. संयुत्तनिकाय १०/१२

१२. वही

१३. वही

१४. वही

१५. वही पृष्ठ ६

१६. वही

१७. वही

१८. पालि साहित्य का इतिहास -भरतसिंह उपाध्याय, पृ० ३२०

१६. थेरीगाथा

२०. पालि साहित्य का इतिहास -भरतसिंह उपाध्याय, पृ० ६६२

• • • •

पालिभाषा में गुम्फित थेरवाद

भगवान् बुद्ध ने अपने को किसी भी वाद से मुक्त रखा था, फिर भी उनको विभज्यवादी कहा जाने लगा था क्योंकि वे विभक्त करके अपने उपदेश देते थे।

भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद बुद्धवचनों को संग्रह करने के लिए संगीति बुलाई गई जिसमें धम्म एवं विनय का संग्रह किया गया। १०० वर्ष बाद द्वितीय संगीति बुलाई गई जिसमें १० वस्तुओं के सेवन को लेकर विवाद हुआ तथा संघ भेद हुआ। इसी में महासांघिक एवं थेरवादियों (स्थविर भिक्षुओं के कारण) के दो संघ हो गए। पुनः अशोक के समय तक ये दो संघ १८ सम्प्रदायों में विभक्त हो गए। तृतीय संगीति के परिणाम स्वरूप थेरवादियों को सच्चा बुद्ध का अनुयायी माना गया। इनके द्वारा संग्रहीत त्रिपिटक श्रीलंका आदि देशों में प्रचारार्थ भेजा गया। 'कथावत्थु' नामक ग्रन्थ में तत्कालीन १८ सम्प्रदायों का परस्पर में संवाद है। जिसमें सबको मिथ्या घोषित किया गया। मात्र 'थेरवाद' को सच्चा 'बौद्धधर्म' कहा गया। तीसरी संगीति के बाद पालि परम्परा का विकास श्रीलंका आदि देशों में हुआ। भारत में इसके विस्तार के प्रमाण प्राप्त नहीं होते। बल्कि कनिष्क के समय चौथी संगीति वस्तुतः महायानियों की थी या सर्वास्तिवादी सौत्रान्तिक वैभाषिकों का विकास होता रहा। इनको हीनयान एवं महायान दो सम्प्रदाय नाम दिए गए।

थेरवादियों की विशेषता रही कि उन्होंने प्रारम्भ से ही जनभाषा में बुद्धवचनों का संग्रह किया जिसे प्रारंभ में 'सकायनिरुत्तिया' कहा गया। संग्रह करने के बाद इनके व्याकरणों में मागधी तथा अट्ठकथाओं में भी त्रिपिटक को 'मागधी' कहा गया। पश्चात् समग्र त्रिपिटक एवं उसके परवर्ती अनुसरण करने वाले अनुपिटक, अट्ठकथाओं वंससाहित्य, काव्यों को पालि संज्ञा प्रयुक्त हुई।

पालि वस्तुतः बुद्धवचनों के रक्षा करने के कारण यह नाम पड़ा। इसकी व्युत्पत्ति-पक्ति, पाठ, पालयति, तन्त्रि आदि से की जाती है। इसके अनुयानियों को 'थेरवादी' कहा जाता है। "वस्तुतः 'हीनयान' सौत्रान्तिक एवं वैभाषिकों को कहा गया है। भारतवर्ष में जब हीनयान एवं महायान का वर्गीकरण तथा चार सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है। उसमें पालि त्रिपिटक के सिद्धान्तों की सुगन्ध नहीं है। धम्मपद में थेर की परिभाषा दी गई है-

यम्हि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो। स वे वन्तमलो धीरो थेरो इति पवुच्चति।।

थेरवाद एवं पालि दोनों ने एक दूसरे को अभी तक नहीं छोड़ा है। बीसवीं शताब्दी की डॉ. भरतसिंह उपाध्याय की रचना 'महाबुद्धवत्थु' महत्त्वपूर्ण है। इसमें थेरवाद

के अतिरिक्त अन्य परम्पराओं में मान्य मान्यताओं को भी स्थान दिया गया है। आज बौद्धों का विशाल साहित्य उपलब्ध है। लेकिन प्रामाणिक बहुवचनों को जानने के लिए पालि त्रिपिटक ही सर्वाधिक मान्य है। महायान वज्रयान के अनुयायी भी त्रिपिटक का सम्मान करते हैं। सर्वप्रथम इसका प्रकाशन श्रीलंका में हुआ। आज पालि टेक्ट्स सोसाइटी, नवनालन्दा महाविहार एवं इगतपुरी विपश्यना शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित विशाल पालि साहित्य या थेरवादी साहित्य उपलब्ध है।

१. अनित्य दुःख अनात्म[१]

भगवान् बुद्ध के दर्शन का सारांश अनित्य दुःख अनात्म में समाहित है। यह सिद्धान्त उपनिषद् के वाक्य सच्चिदानन्द-सत्, चित और आनन्द का ठीक उल्टा है। भगवान् ने सभी उपादान स्कन्धों एवं आयतनों को नष्टवान् होने से अनित्य बतलाया तथा अनित्यता के स्वभाव के कारण उन्हें दुःख एवं दुःख के कारण अनात्म कहा है।

लोक की अनित्यता का प्रतिपादन करते हुए भगवान् ने लोक संज्ञा का अर्थ 'लुज्जित' होने से बतलाया था। चक्षु, रूप, चक्षुविज्ञान, चक्षु, संस्पर्श, चक्षु वेदना एवं श्रोतादि लज्जित होते हैं। आर्य विनय में इस 'प्रलोकधर्मा' नाशवान् होने से लोक ऐसा कहा जाता है। लोक को शून्य कहा है। यह आत्मा या आत्मीय से शून्य है।

संसार के प्राणी नामरूप से जाने जाते हैं। यह नाम संज्ञा भी कहलाने मात्र के लिए है। जिस प्रकार रथ नाम की वास्तविक चीज कोई नहीं होती है, अपितु उसके विभिन्न हिस्सों को मिलाकर रथ यह नाम दिया जाता है उसी प्रकार पांच स्कन्धों से उत्पन्न छः इन्द्रियधारी प्राणी को 'सत्त्व' संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

छः आयतनों से लोक (प्राणी) की उत्पत्ति एवं स्थिति होती है तथा उपादान से दुःख भोगता है। इन छः प्रत्ययों में भी मन को अग्रगामी कहा है, जो प्राणी को वश में रखता है। इसमें एकमात्र धर्म तृष्णा है, जिससे लोक नियंत्रित होता है एवं उसके वश में चला जाता है। एक गाथा में कहा गया है कि तृष्णा मनुष्य को पैदा करती है, चित्त उसका दौड़ता रहता है, प्राणी आवागमन के चक्कर में पड़ता है, दुःख उसका सबसे बड़ा भय है। दुःख से छुटकारा नहीं। कर्म ही उसका आश्रय है।

लोक के सम्बन्ध में भगवान् से पूछे जाने पर कि क्या चल कर लोक का अन्त जाना या देखा जा सकता है? जहां कोई न जन्मता है, न मरता है? शरीर को छोड़कर फिर उत्पन्न नहीं होता? भगवान् ने कहा- वे उक्त प्रकार से नहीं बतलाते। अपितु ऐसा बतलाते हैं कि लोक के अन्त को पाये बिना दुःखों का अन्त करना सम्भव नहीं है, किन्तु इस व्योम भर संज्ञा धारण करने वाले शरीर में लोक की उत्पत्ति निरोध एवं निरोधगामी मार्ग विद्यमान है। रोहितस्स नामक देवपुत्र ने उक्त बात का समर्थन करते हुए बतलाया

कि- बहुत पहले जब वह रोहितस्स नामक भोजपुत्र ऋषि था, आकाश में विचरण करने वाला था, उसकी गति सिखाये हुए तीरंदाज के समान थी, उसके पैर रखने की दूरी पूरब से पश्चिम तक की थी, उसने सोचा कि वह चलकर लोक के अन्त को पायेगा। इस गति पर वह चलता हुआ, खाना-पीना, पाखाना-पेशाब, सोना आराम छोड़ १०० वर्ष की आयु तक चलता रहा और लोक के बिना अन्त को पाकर मर गया। देवपुत्त कहता है कि भगवान् का यह कहना उचित है कि -चलकर लोक को जाना नहीं जा सकता तथा लोक को बिना जाने पर भी दुःख से छुटकारा नहीं है। अतः बुद्धिमान को लोक को पहचानना चाहिए। ब्रह्मचर्य धारण करने वाला, लोक के अन्त को पाने वाला, ठीक से जान, इस लोक और पारलोक की आशा नहीं करता। भगवान् ने लोक को इस व्योम भरे शरीर में बताया था तथा विभिन्न प्रकार से षडायतन, पंचस्कन्ध, धातु भी वेदना के अन्तर्गत वर्णित किया है। सट्ठानसुत्त में पंचस्कन्धों के सात प्रत्ययों को जानने से सुप्रतिपन्न कहा गया है। तथा तीन स्थानों से परीक्षा करने वाला बताया गया है- धातु से परीक्षा करने वाला, आयतन से परीक्षा करने वाला, प्रतीत्य समुत्पाद से परीक्षा करने वाला। जो सात स्थानों में कुशल एवं इस 'धर्मविनय' में सफल ब्रह्मचर्यवाला एवं उत्तम पुरुष कहा जाता है।

पांच उपादान स्कन्ध :-

भगवान् बुद्ध ने जीव या आत्मा- इस प्रकार की कोई सत्ता नहीं मानी थी, अपितु प्राणी की व्याख्या पंचस्कन्ध के रूप में की थी। पांच संख्या होने से (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) पंच ऐसा कहा जाता है। स्कन्ध के सम्बन्ध में भगवान् ने बतलाया था कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान-अतीत, अनागत, वर्तमान, अध्यात्म, बाह्य, स्थूल, हीन, प्रणीत, दूर और निकट के कारण स्कन्ध कहे जाते हैं। स्कन्धों में छन्द राग होने से उपादान ऐसा कहा जाता है। पांच उपादान स्कन्धों को 'सत्काय' भी कहा गया है।

पांच उपादान स्कन्ध इस प्रकार हैं- रूप-उपादान-स्कन्ध, वेदना-उपादान-स्कन्ध, संज्ञा-उपादान-स्कन्ध, संस्कार-उपादान-स्कन्ध और विज्ञान-उपादान-स्कन्ध। इस प्रकार पांच उपादान-स्कन्ध हैं। इनके पांच नाम-रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान क्यों कहे जाते हैं? इसका विवेचन निम्न प्रकार है।

रूप-प्रभावित होने से रूप कहा जाता है। शीत, उष्ण, भूख, प्यास, सांप, बिच्छू, हवा, अग्नि आदि के स्पर्श से प्रभावित होता है।

वेदना-अनुभव करने से वेदना कही जाती है। सुख-वेदना, दुःख-वेदना, अदुःख-वेदना।

सुख-वेदना का अनुभव करने से ऐसा कहा जाता है।

संज्ञा-जानने वाला होने से संज्ञा ऐसा कहा जाता है। नीले, पीले, लोहित, सफेदी आदि को जानता है।

संस्कार-संस्कृत का अभिसंस्करण करने से संस्कार कहा जाता है। रूपत्व के लिए संस्कृत रूपत्व का, वेदनात्व के लिए संस्कृत वेदना का, संज्ञात्व के लिए संस्कृत संज्ञा का, संस्कारत्व के लिए संस्कृत संस्कारों का और विज्ञान के लिए संस्कृत विज्ञान का अभिसंस्करण करता है।

विज्ञान-पहचानता है इसलिए विज्ञान कहा जाता है। कषैले, तीते, कडुए, मीठे, खट्ठे, नमकीन आदि को पहचानता है।

पांच उपादान स्कन्धों की व्याख्या चार प्रकार से की गई है- प्रत्यय, समुदय, निरोध और निरोधगामी मार्ग।

प्रत्यय- रूप उपादान स्कन्ध-चार महाभूत और उससे उत्पन्न होने वाला रूप, रूप- उपादान-स्कन्ध कहा जाता है।

वेदना उपादान स्कन्ध- वेदनाएं छः हैं- चक्षु, संस्पर्श-वेदना, श्रोत-संस्पर्श-वेदना, घ्राण-संस्पर्श-वेदना, जिह्वा-संस्पर्श-वेदना, काय-संस्पर्श-वेदना, मनो-संस्पर्श-वेदना।

संज्ञा उपादान स्कन्ध- संज्ञाएं छः हैं-रूप-संज्ञा, शब्द-संज्ञा, गन्ध-संज्ञा, रस-संज्ञा, स्पर्श-संज्ञा और धर्म-संज्ञा।

संस्कार उपादान स्कन्ध- संस्कार छः हैं- रूप संचेतना, शब्द संचेतना, गन्ध संचेतना, रस संचेतना, स्पर्श संचेतना और धर्म संचेतना।

विज्ञान उपादान स्कन्ध- विज्ञान काय छः हैं। चक्षु-विज्ञान, श्रोत-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, जिह्वा-विज्ञान, काय-विज्ञान एवं मनो-विज्ञान।

समुदय एवं निरोध-आहार के समुदय से रूप उपादान-स्कन्ध का समुदय एवं आहार के निरोध से उसका निरोध होता है। स्पर्श के समुदय से वेदना, संज्ञा एवं संस्कार-उपादान-स्कन्ध का समुदय एवं स्पर्श के निरोध से इन तीनों का निरोध होता है। नाम एवं रूप के समुदय को विज्ञान उपादान-स्कन्ध का समुदय एवं नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है।

निरोधगामी मार्ग-निरोधगामी मार्ग के रूप में आर्य-अष्टांगिक मार्ग का विवेचन किया गया है।

दूसरे सुत्त में इसके सात स्थानों का वर्णन किया गया है- प्रत्यय, समुदय, निरोध, निरोधगामी मार्ग, आस्वाद, आदीनव एवं निस्सारण। प्रथम चार की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है। शेष तीन इस प्रकार हैं-

आस्वाद-रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान का उनके प्रत्ययों से जो सुख और सौमनस्य होता है, वह उनका आस्वाद है।

आदीनव (दोष)–रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान का जो अनित्य दुःख विपरिणाम धर्मा होना है, यह उनका आदीनव (दोष) है।

निस्सरण (मुक्ति)–रूपादि से जो छन्दराग का प्रहीण हो जाना है, यह उनका निस्सरण (मुक्ति) है।

भगवान् बुद्ध ने पंचस्कन्धों के सम्बन्ध में निम्न तीन बातें सदैव सत्य बतलाई थीं–

१. जो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान अतीत, निरुद्ध विपरिणत हो गया, वह हुआ था ऐसा जाना जाता है।
२. जो अभी है –वह है' ऐसा जाना जाता है तथा
३. 'होगा' ऐसा जाना जाता है।

'इनको भगवान् ने निरुक्त पथ, अधिवचन पथ, प्रज्ञप्त पथ बतलाया था जो कभी बदले नहीं जा सकते हैं, पहले भी कभी नहीं बदले एवं भविष्य में भी कभी नहीं बदलेंगे। बतलाया गया है कि उत्कलवासी वस्स और अहेतुवादी, अक्रियावादी, नास्तिकवादी भी इनको मानते थे एवं अनित्य समझते थे। भगवान् ने पांच उपादान स्कन्धों को अनित्य बतलाते हुए उपमाओं से उनके स्वभाव का स्पष्टीकरण किया था।

रूप– इसको नदी के फेन पिण्ड के समान बतलाया है, जिस प्रकार आंख वाले (बुद्धिमान) मनुष्य द्वारा ठीक से देखने एवं परीक्षा करने पर फेन पिण्ड रिक्त तुच्छ असार पाया जाता है, उसी प्रकार रूप के सम्बन्ध में अतीत, वर्तमान और अनागत की परीक्षा करने पर रिक्त, तुच्छ और असार पाया जाता है।

वेदना–शरद काल में फुही पड़ जाने पर जिस प्रकार जल के बुलबुले होते हैं उसी प्रकार यह वेदना है। इसकी परीक्षा करने, अच्छी तरह देखने से रिक्तता, तुच्छता ही मिलती है।

संज्ञा– यह ग्रीष्म की दोपहरी की 'मरीचिका' के समान है।

संस्कार–यह केले के पेड़ की तरह 'निःसार' है।

विज्ञान–यह जादूगर के खेल के समान है। जिसमें परीक्षा करने पर कुछ नहीं मिलता।

२. बोधिपाक्षिक धर्मो की विशेषताएं :-

संयुत्तनिकाय में आर्य अष्टांगिक मार्ग, सात सम्बोध्यंग, चार स्मृति प्रस्थान, पांच इन्द्रिय, पांच बल, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद और चार ध्यान का परिचय देने वाले अलग-अलग संयुत्त हैं। इन सभी धर्मो में कुछ समान विशेषताएं पाई जाती हैं। गंगापेयाल वर्ग, अप्पमाद वर्ग, बलकरणीय वर्ग, एसनावर्ग तथा ओघ वर्ग-ये पांच वर्ग सभी उपर्युक्त धर्मो से सम्बन्धित संयुत्तों में पेय्याल कहकर वर्णित है। बोज्झंगसंयुत्त, इन्द्रिय

संयुत्त एवं बल संयुत्त में इन विशेषताओं की पुनरावृत्ति है। गंगापेयाल वर्ग मे कहा गया है कि जिस प्रकार पांच नदियां पूर्व की ओर बढ़ती हैं, उसी प्रकार इन धर्मो का अभ्यास करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।[२] अप्रमाद वर्ग में कहा है कि अप्रमाद सभी धर्मो में अग्र समझा जाता है। अप्रमत्त भिक्षु से आशा की जाती है कि वह इन धर्मो का अभ्यास और चिन्तन करेगा।[३] बलकरणीय वर्ग में कहा गया है कि इन सभी धर्मो का पालन शील में प्रतिष्ठित होकर किया जाता है। इन धर्मों के पालन से भिक्षु निर्वाण की ओर झुका होता है। पापमय अकुशल धर्मो को छोड़ देता है। निर्वाण का साक्षात्कार करता है। शेष धर्मो की पूर्णता को प्राप्त होता है। अकुशल धर्मो को दबा देता है। उसके संयोजन नष्ट हो जाते हैं। भिक्षु का गृहस्थ बनना सम्भव नहीं होता। इन धर्मो के अभ्यास से ज्ञानपूर्वक जानने योग्य धर्मो को जान लेता है। त्यागने योग्य धर्मो को त्याग देता है। साक्षात्कार करने योग्य धर्मो का साक्षात्कार करता है तथा अभ्यास करने योग्य धर्मो का अभ्यास करता है।[४] एसना वर्ग में तीन एषणाएं, तीन अहंकार, तीन आस्रव, तीन दुःख, तीन बाधाएं, तीन मल, तीन वेदनाओं तथा तीन तृष्णाओं का परिचय दिया गया है तथा इनको जानने के लिए, क्षय करने के लिए, प्रहाण करने के लिए सभी धर्मो (बोधि पाक्षिक) का अभ्यास आवश्यक बतलाया गया है।[५] ओघ वर्ग में चार बाढ़, चार योग, चार उपादान, चार गाठे, सात अनुशय, पांच कामगुण, पांच नीवरण, पांच उपादान स्कन्ध, पांच निचले संयोजन, एवं पांच ऊपरी संयोजन का विवरण दिया गया है तथा इनको जानने, क्षय करने एवं प्रहाण करने के लिए सभी धर्मो के अभ्यास की सलाह दी गई है।[६]

इन वर्गो के अतिरिक्त कुछ और समानताएं बतलाई गई हैं, जो अधिकांश धर्मो में मिलती हैं। इन धर्मो का ज्ञान अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध के उत्पन्न होने पर ही होता है।[७] बुद्ध विनय के बिना इन धर्मो का ज्ञान भी सम्भव नहीं है।[८] भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व इन धर्मो का मनन बोधिसत्व अवस्था में किया था।[९] तथा इन धर्मो के ज्ञान हो जाने के बाद अपने को बुद्ध घोषित किया।[१०] इन धर्मो के ज्ञान के बाद एक समान उदान वाक्य मिलता है कि पहले कभी न सुने हुए धर्मो का ज्ञान उत्पन्न हुआ, चक्षु प्रज्ञा एवं विद्या उत्पन्न हुई।[११] ब्रह्मचर्य पालन का उद्देश्य और उसकी सफलता इन धर्मो के पालन में कही गई है। राग को जीतने के लिए, संयोजनों को प्रहाण करने के लिए, अनुशयों को समूल नष्ट करने के लिए, मार्ग का अन्त जानने के लिए, आस्रवों का क्षय करने के लिए, विद्या और विमुक्ति फल का साक्षात्कार करने के लिए, ज्ञान दर्शन के लिए, उपादान से रहित हो निर्वाण पाने के लिए इन धर्मो का पालन करना चाहिए।[१२]

इन धर्मो की भावना से सात फल बतलाये गए हैं। देखते-देखते परम ज्ञान का साक्षात्कार करता है अथवा मरने के बाद अवश्य साक्षात्कार करता है। पांच संयोजनों

के क्षीण हो जाने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है। अथवा आगे चलकर निर्वाण पा लेता है। पांच नीचे वाले संयोजन क्षीण हो जाने से उर्ध्वस्रोतगामी श्रेष्ठ मार्ग पर जाने वाला होता है।[१३] इन धर्मो के पालन से अमृत की प्राप्ति होती है।[१४] शैक्ष्य,[१५] अशैक्ष्य,[१६] श्रमण, ब्राह्मण,[१७] कहलाने का अधिकारी होता है।

सुत्तपिटक में परमार्थ अवर्णनीय एवं अतर्क्य होते हुए भी, उसकी चर्चा का महत्त्व था। निर्वाण का लक्ष्य था, महिमा मंडन भी खूब हुआ है, अहंकार, आत्मवाद का निराकरण करते हुए मध्यमा-प्रतिपदा का उपदेश प्रमुख था। जबकि अभिधर्म में पूरा ध्यान धर्मों के विभाजन और वर्गीकरण की ओर दिया गया है ताकि (डॉ० गोविन्द चन्द्र पाण्डेय के अनुसार) बौद्ध साधक-उत्पन्न हुई मानसिक अवस्था का नाम और कार्य परिच्नत हो जाय एवं उसकी भावना अथवा प्रहाण उसके लिए सम्भव हो।

धर्म का प्राचीनतम विभाजन नाम-रूप में था, यद्यपि सूत्रपिटक में धर्मों का विभाजन प्रायः पाँच स्कन्धों में पाया जाता है-रूपस्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध एवं संस्कारस्कन्ध। इन पाँच-स्कन्धों के संघात से ही मानव जीवन का व्यापार सम्पन्न होता है एवं मोक्ष के लिए इनका प्रहाण आवश्यक है। इनको उत्पादनस्कन्ध भी कहा गया है क्योंकि इनकी उत्पत्ति तृष्णा और कर्म से होती है। इनकी उत्पत्ति और परिणति का क्रम द्वादश निदानात्मक प्रतीत्यसमुत्पाद में निर्दिष्ट है। इस प्रकार सूत्रपिटक में पंचस्कन्धवाद एवं द्वादश निदानों के द्वारा अनुभव के जगत् का विश्लेषण किया गया है। अनेक स्थलों में स्कन्धों के स्थान पर धातुओं में एवं आयतनों में धर्मविश्लेषण किया गया है। अभिधर्मपिटक में पाँच स्कन्धों का महत्त्व घट गया है और साथ ही पुराने प्रतीत्यसमुत्पाद का पाँच स्कन्धों के स्थान पर चित्त एवं रूप के विभाजन को पुनः प्रधान मान कर दोनों के अनेक अवान्तर विभाग किये गये हैं। इनमें चित्त के कुशल, अकुशल एवं अव्याकृत, ये तीन विभाग सर्वप्रधान हैं। ऐसे ही प्रतीत्यसमुत्पाद का स्थान पट्ठान में नाना पच्चयों ने ले लिया है।

अभिधर्मपिटक में धर्मसंगणि, विभंग, धातुकथा, कथावत्थु, पुग्गलपञ्ञत्ति, यमक और पट्ठानप्पकरण नाम के सात ग्रन्थ संगृहीत हैं। प्रायः अभिधम्म के ग्रन्थों में पारिभाषिक पद, उनका वर्गीकरण, और उनके अर्थ दिये गये हैं। कथावत्थु में न्यायवाक्यों का परिचय मिलता है एवं वादकथाओं का विस्तार पाया जाता है। धम्मसंगणि में मातृका के अनन्तर धर्मों का अनुपद और व्यवस्थित विवरण किया गया है। मातृका में पहले २२ त्रिक धर्मों का उल्लेख किया गया है उसे 'तिकमातिका' कहा गया है। इस सूची में संगृहीत धर्मों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

१. कुशलधर्म, अकुशलधर्म, अव्याकृत धर्म,

२. सुखवेदना, संप्रयुक्तधर्म, दुःखवेदना, संप्रयुक्त धर्म अदुःखासुखवेदना, संप्रयुक्त धर्म।

३. विपाकधर्म, विपाकधर्म-धर्म, न विपाक-धर्म न विपाकधर्म-धर्म।....
४. संक्लिष्ट - सांक्लेशिक धर्म, असंक्लिष्ट - सांक्लेशिक धर्म, असंक्लिष्ट- असांक्लेशिक धर्म,
५. सवितर्क-सविचार धर्म, अवितर्क विचारमात्रधर्म, अवितर्काविचार धर्म।

धम्मसंगणि में धर्मों का मुख्य विभाजन उनकी हेयोपादेयता की दृष्टि से किया गया है। धर्म कुशल, अकुशल अथवा अव्याकृत है। अव्याकृत धर्म स्वयं कोई भोगरूप फल उत्पन्न नहीं करता। निर्वाण, रूप (=भौतिक धर्म), विपाक (=पूर्व कर्म का भोग) एवं क्रिया (ससंकल्पपूर्व नैसर्गिक क्रिया) अव्याकृत हैं। कुशल-धर्म कालान्तर में सुख-भोग प्रदान करते है। एवं अकुशल-धर्म दुःखभोग। चित्त और चैतसिक धर्म ही कुशल अथवा अकुशल हो सकते हैं। लोभ, द्वेष एवं मोह-ये तीन अकुशल होते हैं। इन्हीं के संयोग से चित्त-चैतसिक धर्मों में अकुशलता उत्पन्न होती है। दूसरी ओर अलोभ, अद्वेष एवं अमोह-ये कुशल-हेतु हैं। यह स्पष्ट है कि कुशल, अकुशल एवं अव्याकृत का भेद धर्मों का स्वभावगत भेद नहीं है, किन्तु संसारी पुरुष की दृष्टि से ही धर्मों का उनके पृथक् कार्यों के अनुसार विभाजन हैं'- कुछ धर्म उन्हें सुख देते हैं, कुछ दुःख देते हैं, कुछ न सुख देते हैं, न दुःख देते हैं। आध्यात्मिक साधन की दृष्टि से ही इस प्रकार का वर्गीकरण बहुत महत्वपूर्ण है।

धम्मसंगणि में प्रकारान्तर से धर्मों का चित्त, चैतसिक तथा चित्त-विप्रयुक्त, इन तीनों वर्गों में विभाजन उल्लिखित है। चित्त सप्तविध है-चक्षुरादि-विज्ञान, मनोधातु एवं मनोविज्ञानधातु। चैतसिक विविध हैं। वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध, एवं संस्कारस्कन्ध। चित्त-विप्रयुक्त धर्म दो हैं- रूप एवं निर्वाण। किन्तु यह विभाजन अभिधम्मपिटक में अधिक चर्चित नहीं है। उस समय, जैसा कथावत्थु से प्रतीत होता है चैतसिक धर्मों की पृथक् सत्ता भी विवादास्पद थी। चित्त एवं रूप के दो वर्गों का धम्मसंगणि में विस्तार से वर्णन मिलता है। अभिधम्म के कुछ ग्रन्थों में पुनः प्राचीन स्कन्ध, धातु, एवं आयतन की विस्तृत चर्चा है।[१८]

आचार्य अनिरुद्ध ने चार पारमार्थिक तत्त्व स्वीकार किये हैं-चित्त, चैतसिक, रूप और निर्वाण।[१९]

चित्त- समस्त लौकिक धर्मों में चित्त शीर्षभूत है जैसे समस्त लोकोत्तर धर्मों में प्रज्ञा। सब कुशल अथवा अकुशल धर्म चित्तपूर्वगम हैं धम्म की प्रसिद्ध गाथाओं के अनुसार। 'मन सब धर्मों में पहले अग्रसर होते हैं। सब धर्मों में मन श्रेष्ठ है। सब धर्म मनोमय हैं।' सुख और दुःख मनोगत शुभ और अशुभ का इस प्रकार अनुसरण करता है जैसे यानवाही पशु का यानचक्र अथवा पुरुष की छाया।[२०] क्लेश और व्यपदान चित्त का ही सहारा लेकर प्रवृत्त होते हैं। यही कारण है कि चित्त के स्वभाव, प्रवृत्ति उसके कुशल

और अकुशल से सम्बन्ध को लेकर अभिधर्म में इतनी चर्चा रही हे। जैसे चित्र में नाना विचित्र रूप लोक का प्रदर्शन होता है ऐसे ही देव, मनुष्य, निरय एवं तिर्यक् गतियों में कर्म, लिंग, संज्ञा, व्यवहार आदि का भेद चित्त-कृत एवं चित्त-मात्र ही है।[२१] कर्म का मूल चित्त में ही है एवं कर्म से ही समस्त संसार का वृक्ष विरूढ़ हुआ है। इस प्रकार यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है कि संसार का दुःख एवं उससे विमुक्ति दोनों ही चित्त के अधीन है।

चित्त और रूप- चित्त रूप का पच्छाजात-पच्चय है। रूप चित्त का पुरेजात-पच्चय है। चित्त की प्रवृत्ति के लिए रूप, वस्तु एवं आलम्बन प्रदान करता है। इन्हीं के आश्रय से सातों विज्ञान-धातु उत्पन्न होती हैं। ऐसे ही रूप, शब्द आदि पंचविध भौतिक धर्मों का आलम्बन कर पाँच प्रकार की विज्ञान-वीथियाँ प्रवृत्त होती हैं। दूसरी ओर चित्त-संभूत कर्म कायिक-रूप की उत्पत्ति में प्रधान कारण है। कर्म और विज्ञप्ति के प्रसंग में चित्त ही देह का संचालन करता है। चित्त को रूप के उद्भवों में से एक स्वीकार किया गया है। रूप का जहाँ अभाव है ऐसे अरूप लोगों में भी चित्त की प्रवृत्ति सम्भव होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यद्यपि भूतरूप चित्त-निरपेक्ष है एवं चित्त की प्रवृत्ति साधारणतः रूप-सापेक्ष है तथापि कर्म आदि के द्वारा देह का उत्पाद, संचालक एंव उपष्टम्भक होने के कारण चित्त का ही प्राधान्य स्वीकार करना चाहिए।

सुत्तपिटक में भी चित्त को रूप से अधिक चंचल बताया गया है। पीछे क्षणभंगवाद के विकसित होने के साथ इस प्रश्न पर विचार किया गया कि यदि रूप-धर्म एवं चित्त दोनों ही क्षणिक हों तो चित्त और रूप का सम्बन्ध दुरुपपाद है। रूपालम्बन के पूरी तरह से अवबुद्ध होने में अनेक चित्त उत्पन्न एवं निरुद्ध होते हैं। यदि चित्त का एक क्षण रूप में एक क्षण के बराबर हो तो रूप का ठीक ज्ञान असम्भव है। अतएव थेरवादियों ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि रूप-क्षण सत्रह चित्त-क्षणों के बराबर हैं। इस सिद्धान्त का आधार चित्तवीथि का विवेचन है।[२२]

वीथिचित्त- वीथि का अर्थ स्फुट-बोध के अभिमुख चित्त-परम्परा है। एक जन्म में उत्पत्ति के समय का प्रथम चित्त जो पिछली जन्म की चित्त-संतति से इस जन्म की चित्तसंतति का सम्बन्ध जोड़ता है, प्रतिसंधान-हेतु होने के कारण प्रतिसंधि-विज्ञान कहलाता है। इसके अनन्तर भवांगचित्त की प्रवृत्ति होती है। भवांग से तात्पर्य उपपत्ति-भव के अंग अथवा कारण से है जो कि चित्त का एक अर्धचेतन अथवा उपचेतन प्रवाह है जैसा सुषुप्ति की अवस्था में उपलब्ध होता है। भवांग का प्रारम्भ प्रतिसन्धि चित्त से होता है एवं अन्त च्युति-चित्त से। भवांग का आलम्बन प्रावतन जनककर्म, कर्म निमित्त अथवा गति-निमित्त होता है। १६ प्रकार के भवांग बताये गये हैं।[२३] इस भवांग-चित्त के स्रोत को काटकर वीथिचित्त की प्रवृत्ति होती है एवं वीथि के अन्त में पुनः भवांग-पात।

भवांगचित्त बोध का आत्मविश्रान्त अस्फुट प्रवाह है, वीथिचित्त नाना आध्यात्मिक एवं बाह्य विषयों के जगत् का स्फुट बोध है।

विषयों का चित्त से सम्बन्ध इन्द्रियों के द्वारा एवं मन के द्वारा सम्पन्न होता है। इन्द्रिय-द्वार में आलम्बन के प्रकट होने पर वह मनोद्वार में भी प्रकट होता है, जैसे किसी वृक्ष की शाखा पर उतरते हुए पक्षी की छाया पृथ्वी पर भी उतरती है। किन्तु अनेक आलम्बन सीधे मनोद्वार में प्रकट होते हैं। इस प्रकार द्वार-भेद से चित्तवीथि के दो भेद किये जा सकते हैं-पंचद्वार-वीथि एवं मनोद्वारवीथि। पंचद्वारवीथि में बाह्य विषय का इन्द्रिय-द्वार के साथ सम्पर्क स्थापित होना वस्तुतः बाह्यरूप एवं 'प्रसादरूप' का संघट्टन है। इससे विचलित होकर भवांग की धारा का विच्छेद होता है। पहले क्षण में 'भवांग-चलन' होता है, दूसरे में 'भवांग-उपच्छेद'। तदनन्तर इन्द्रिय-द्वार में प्राप्त आलम्बन की ओर चित्त का आकर्षण अथवा 'आवर्जन' होता है। यह एक असंकल्पपूर्वक नैसर्गिक क्रिया है। अभिधर्मपिटक में इसे क्रिया-मनोधातु कहा गया है और इसे क्रियारूप अव्याकृत धर्म बताया गया है। पीछे के दार्शनिक साहित्य में इसका नाम 'पञ्चद्वारावर्जन' है। आवर्जन के अनन्तर तद्विषयाकार चक्षुरादिविज्ञान की उत्पत्ति होती है। चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान आदि विज्ञान सर्वथा निर्विकल्प, विशुद्ध ऐन्द्रिय-संवेदन हैं। ये विज्ञान प्राक्तन कुशल अथवा अकुशल धर्मों के विपाक होते हैं अतएव अव्याकृत धर्म हैं। इन विज्ञानों के निषेध के अनन्तर 'सम्पटिच्छन्न' अथवा 'विपाक-मनो-धातु' की उत्पत्ति होती है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि यदि पंच-विज्ञान आलम्बनों की ऐन्द्रिय स्फूर्ति है तो 'सम्पटिच्छन्न' उन आलम्बनों का मन के द्वारा प्रथम ग्रहण। इसके अनन्तर मन के द्वारा आलम्बन के स्वरूप-निर्णय का प्रयत्न होता है जिसे 'सन्तारण' कहा गया है। अभिधर्म के अनुसार यह अहेतुक विपाक मनोविज्ञान-धातु है। इसके अनन्तर मन के द्वारा आलम्बन का 'व्यवस्थापन' होता है। 'व्यवस्थापन' के अनन्तर 'जवन' -चित्त की उत्पत्ति होती हे। जवन के पूर्ववर्ती चित्त विपाक-रूप अथवा क्रिया-रूप होने के कारण अव्याकृत धर्म है। 'जवन' चित्त आलम्बन की ओर चेतना-प्रतिसंयुक्त सम्मुखीभव है। जवन-चित्त की अधिकतया सात बार उत्पत्ति होती है अथवा होती ही नहीं। ज्ञान का कुशल अथवा अकुशल कर्म से सम्पर्क जवन-चित्त में ही होता है। इसके अनन्तर 'तदालम्बन' चित्त के दो क्षण होते हैं। तदालम्बन-चित्त जवन-चित्त के आलम्बन का अनुसरण करता है। मानो इसका अवशिष्ट संस्कार हो। इसके अनन्तर पुनः भवांग-पात होता है। भवांग के उच्छेद से वीथि की प्रवृत्ति होती है, वीथि के पर्यवसान पर पुनः भवांग का पूर्ववत् प्रवाह। इसी प्रकार जन्म के प्रतिसन्धिचित्त से प्रारम्भ कर मृत्यु के च्युति-चित्त तक भवांग का स्रोत और वीथि का उन्मेष चलता रहता है।

भवांग-चलन के दो क्षणों से पहले एक क्षण अतीत-भवांग का गिनने पर 'तदालम्बन' के अन्त तक १७ चित-क्षणों का क्रम ऊपर वीथि-चित्त में निर्दिष्ट है। प्रत्येक क्षण का, उत्पाद, स्थिति और भंग होता है। किन्तु यह पूरी चित्त-परम्परा आलम्बन के 'अंतिमहत्' होने पर ही सम्पन्न होती है। यदि आलम्बन केवल 'महत्' हो तो 'जवन' के अन्त में भवांग-पात हो जाता है, 'तदालम्बन' की उत्पत्ति नहीं होती। जब 'व्यवस्थापन' की दो-तीन बार प्रवृत्ति के अनन्तर ही भवांग-पात हो जाता है और 'जवन' का भी उत्पाद नहीं होता, तब आलम्बन 'परित्त' अथवा अल्प कहलाता है। 'अतिपरित' आलम्बन होने पर भवांग-चलन मात्र होता है, वीथि-चित्त का उत्पाद नहीं होता।

मनोद्वार में विभूत आलम्बन के उपस्थित होने पर भवांगचलन, मनोद्वारावर्जन, जवन एवं 'तदालम्बन' क्रमशः उत्पन्न एवं निरुद्ध होते हैं। आलम्बन अविभूत होने पर 'तदालम्बन' का उत्पाद नहीं होता।

ध्यान के प्रसंग में वीथिचित्त की कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। ध्यान से निष्पन्न समाधि अर्पणा कहलाती है। इसमें आलम्बन सदा अतिविभूत होता है किन्तु अर्पणाजवन के अतिसन्तति होने के कारण तदालम्बन-चित्त का भी उत्पाद नहीं होता। अर्पणा भी भवांग-स्रोत के समान प्रवृत्त होती है। इस अर्पणावीथि में ज्ञानसम्प्रयुक्त आठ कामावचर जवनचित्तों में से कोई एक कुशलचित्त अथवा क्रियाचित्त तीन बार अथवा चार बार उत्पन्न होकर निरुद्ध होता है। ये चित्त क्रमशः परिकर्म, उपचार, अनुलोम एवं गोत्रभू नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके अनन्तर चतुर्थ एवं पंचम जवनचित्त अर्पणावीथि में अवतीर्ण होता है। यह जवन छब्बीस महद्गत एवं लोकोत्तर जवनों में से एक होता है। इसके अनन्तर अर्पण के जवन-चित्तों का प्रवाह प्रवृत्त होता है। तदनन्तर भवांगपात पुनः घटना है। यदि सौमनस्य-सहगत जवनचित्त के अनन्तर अर्पणा का प्रारम्भ हो तो वह भी सौमन्स्य-सहगत होती है तथा उपेक्षापूर्वक होने पर वह उपेक्षा सहगत होती है। कुशल जवनचित्त के अनन्तर कुशल जवन एवं निचले तीन फल तथा क्रियाजवन के अनन्तर क्रियाजवन एवं अर्हत्व-फल अर्पित होते हैं।

वीथिचित्त के अवबोधन के लिए 'आम्रोपमा' उदाहृत की गयी है-मान लीजिए फले हुए आम्रवृक्ष के नीचे सिर ढँककर कोई पुरुष सोया हुआ हो एवं अपने पास गिरे एक आम के शब्द को सुनकर सिर से वस्त्र हटाकर आँख खोलकर उसे देखे, उठाये और परखे तथा उसे पका हुआ जानकर उसका परिभोग करे और फिर मुख में उसके शेष स्वाद का अनुभव करता हुआ पुनः सो जाय। ऐसी स्थिति में पहली निद्रा का समय भवांग का प्रवाह है, फल का गिरना आलम्बन के द्वारा प्रसाद-संघट्टन है, उस शब्द से जागना आवर्जन है। आँख खोलकर देखना चक्षुर्विज्ञान आदि विज्ञानों की प्रवृत्ति है। उठा

लेना सम्पटिच्छन्न है। परखना संतीरण है। पके होने का निश्चय व्यवस्थापन है, परिभाग जवन है, पीछे के स्वाद का अनुभव तदालम्बन है। पुनः निद्रा की प्रवृत्ति भवांगपात है।[२४]

चैतसिक- कथावत्थु से ज्ञात होता है उस समय कुछ सम्प्रदाय चैतसिकों की सत्ता का ही प्रतिवाद करते थे। चैतसिकों का विकसित विवरण बुद्धघोष के समय तक निश्चित हो चुका था। इस विकास में संस्कारस्कन्ध को अनेक धर्मों में बांट दिया गया था। चैतसिक चित्त से सम्प्रयुक्त धर्म है। वे चित्त के साथ उत्पन्न होते हैं, एवं चित्त के साथ निबद्ध होते हैं। उनके आलम्बन और वस्तु भी चित्त के आलम्बन और वस्तु से अभिन्न होते हैं। चैतसिक धर्म बावन बताये गये हैं जिनमें वेदना और संज्ञा के अतिरिक्त पचास धर्मों में विभक्त संस्कारस्कन्ध परिगणित है। सात चैतसिक धर्म सर्वचित्तसाधारण हैं-स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, एकाग्रता, जीवितेन्द्रिय तथा मनसिकार। स्पर्श चित्त एवं आलम्बन को संघटित करता है। वेदना के सुविदित तीन भाग हैं-सुख, दुःख, अदुःखासुख। आलम्बन का संज्ञान ही संज्ञा है। चेतना संकल्पात्मक प्रेरक धर्म है। एकाग्रता न्यूनाधिक मात्रा में सभी चित्तों में पायी जाती है। मनसिकार का अर्थ नवीन आलम्बन की ओर मन की अवधान है। चैतसिक धर्म प्रकीर्णक कहे जाते हैं। ये बहुत से चित्तों के सहगत होने के कारण इस प्रकार कहे गये हैं-इनकी चित्त के साथ सदा उपस्थिति नहीं होती। वितर्क, विचार, अधिमोक्ष, वीर्य, प्रीति एवं छन्द-ये ही प्रकीर्णक हैं। इन दोनों विभागों के १३ चैतसिक धर्म अन्य समान कहे जाते हैं क्योंकि ये स्वतः न कुशल हैं न अकुशल। किन्तु कुशल अथवा अकुशल चित्त के सम्प्रयोग से स्वयं भी कुशल अथवा अकुशल हो जाते हैं । चौदह चैतसिक अकुशल हैं-मोह, अह्री, अनवत्रप्य, औद्धत्य, लोभ, दृष्टि, मान, द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य, कौकृत्य, स्त्यान, मृद्ध एवं विचिकित्सा। शोभन चैतसिक पच्चीस हैं। ये केवल कुशल चित्तों में पाये जाते हैं। इनमें १६ चैतसिक शोभन-साधारण कहे जाते हैं-श्रद्धा, स्मृति, ह्री, अवत्रप्य, अलोभ, अद्वेष, तत्रमध्यस्यता काय-प्रस्रब्धि, चित्तप्रस्रब्धि, कायलघुता, चितलघुता, कायमृदुता, चित्तमुदृता, कायककर्मण्यता, चित्तकर्मण्यता, कायप्रागुण्यता, चित्तप्रागुण्यता, काय-ऋजुता एवं चित्तऋजुता। शोभन चैतसिकों में तीन विरतियाँ-सम्यक्वाक्, सम्यक्कर्मान्त एवं सम्यग्- कर्मान्त एवं सम्यग्-अजीव-दो अप्रमाण करुणा एवं मुदिता-एवं प्रज्ञेन्द्रिय सम्मिलित है।

विभज्यवाद एवं थेरवाद

भगवान् बुद्ध ने स्वयं को विभज्यवादी कहा है एक संवादी नहीं, **यथा विभज्यवादो खो अहमत्थ, माणव, नाहमेत्थ एकसंवादी**।[२५] कथावत्थु प्रकरण में सभी अन्यतैर्थिकवादों का खण्डन विभज्यवाद के आधार पर किया गया है। यथा- **किं वादी, भन्ते-सम्मा सम्बुद्धो 'ति' ? विभज्यवादी, महाराज 'ति'**।[२६] प्रो० ब्रह्मदेवनारायण शर्मा ने

इस विषय पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ ही लिखा है।[२७] द्वितीय संगीति (पालि परम्परा) में संघ दो भागों में बंट गया, एक स्थविरवादी दूसरा महासांघिक। आगे अशोक के काल तक तृतीय संगीति के समय संघ अठारह निकायों में विकसित हो गया था। इनमें से स्थविरवादी पहले दो भागों में विभक्त हुए-वज्जिपुत्तक और महीशासक।

वज्जिपुत्तक ४ भागों में विभक्त हुए- धर्मोत्तर, भद्राणिक, छन्नागारिक और सम्मतीय।

महिसासक- पहले दो भागों में विभक्त हुए-धर्मगुप्तिक और सर्वास्तिवादी, सवास्तिवादियों से क्रमशः काश्यपीय, -संक्रान्तिक-सूत्रवादी (सौत्र.) इस प्रकार स्थविरवादी निकाय ११ भागों में विकसित हुआ जो स्थविरवादी को मिलाकर १२ होते हैं। विभिन्न स्थलों में इनके नामों में विभिन्नता है लेकिन सभी १८ सम्प्रदाय (निकाय) ही मानते हैं।[२८] अशोक ने (२५३ या २४६ ई. पू.) जब पाटलिपुत्र की सभा बुलायी तो मोग्गलिपुत्ततिस्स (सभापति) ने १८ सम्प्रदायों में से एक (थेरवाद स्थविरवाद) को मूलधर्म मान कर बाकी १७ के दार्शनिक सिद्धान्तों का निराकरण किया और अपने समाधानों को 'कथावत्थु प्रकरण' नामक ग्रन्थ में रख दिया जो उसी समय से अभिधम्मपिटक का अंग माना जाने लगा। ये दार्शनिक सिद्धान्त किन-किन सम्प्रदायों के हैं इनका उल्लेख नहीं किया गया है। अट्ठकथा (पांचवी शताब्दी) में वह कमी दूर की गई है।

मूल थेरवाद से अशोक के समय तक १२ सम्प्रदाय इस प्रकार हैं- स्थविरवादी, महिंसासक, वज्जिपुत्तक, सब्बत्थवाद, धामगुत्तिक, धम्मुत्तरिय, छन्नागरिक, भद्रमानिक, सम्मितिय, कस्सपिक, संक्रन्तिक और सुत्तवादी। वसुमित्र प्रणीत अष्टादश निकाय के अनुसार बारह सम्प्रदाय इस प्रकार बतलाए गए हैं- १. स्थविरवादी, २. हैमवत, ३. वात्सीपुत्रीय, ४. धर्मोत्तरीय, ५. भद्रयानीय, ६. सम्मतीय, ७. षण्णागारिक, ८. सर्वास्तिवादी, ९. महीशासक, १० धर्मगुप्त, ११ काश्यपीय और सौत्रान्तिक।[२९]

महाबुद्धवत्थु-

बीसवीं शताब्दी की पालि भाषा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। श्री भरतसिंह उपाध्याय ने विशाल आकृति में भगवान् बुद्ध का सम्पूर्ण परिचय उनके सिद्धान्तों सहित दिया है। इसको दिल्ली संस्कृत अकादमी ने पाँच खण्डों में प्रकाशित किया है। इस विशाल ग्रन्थ का प्राक्कथन प्रो. संघसेन सिंह दिल्ली विश्वविद्यालय ने संस्कृत में लिखा है। विभिन्न सम्प्रदायों के आधार पर बुद्धकथा पालिभाषा में लिखित मात्र एक यह कृति कही जा सकती है। क्योंकि इसके पूर्व मात्र थेरवादी साहित्य पालि भाषा में पाया जाता है।

संदर्भ-विवरण

१. संयुत्तनिकाय पालि एक अध्ययन, डॉ० विजय कुमार जैन, पृ. ६४-६८

२. संयुत्त. ५, पृ. २२

३. वही, पृ. ४१-४४
४. वही, पृ. ४४-५३
५. सयुंत्त. ५, पृ. ५३-५७
६. वही, पृ. ५७-६०
७. वही, पृ. १४, ७२, २०३
८. वही, पृ. १४, ७२, २०४
६. वही, पृ. २३५
१०. वही, पृ. १६७, १७८
११. वही, पृ. ३६२
१२. संयुत्त. ५, पृ. २४
१३. वही, पृ. ६६
१४. वही, पृ. ६
१५. वही, पृ. १४
१६. वही, पृ. १५०
१७. वही, पृ. २२, १७८
१८. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, हीनयान के सम्प्रदाय-स्थविरवाद, देखें पृष्ठ २५६।
१६. अभिधम्मत्थसंगहो (सारनाथ, १६४१) पृष्ठ. १ ।
२०. खुद्दकनिकाय, नालन्दा, जि. १, पृ. १६।
२१. अट्ठसालिनी, पृ. ५४।
२२. द्र० अभिधम्मत्थसंगहो, पृ० ६४-६५४, अट्सालिनी, पृ. २१६-३३।
२३. अभिधम्मत्थसंगहो, पृ. ८६।
२४. अट्ठसालिनी, पृ. २१६।
२५. म. नि. भा. २ पृ. ४६६-४७०)
२६. कथावत्यु प्रकरण पृ. ४
२७. 'विभज्जवादी ति वेरञ्चकण्डे आगतनयेनेव वेनयिकादिभाव विभज्ज वदतीति विभज्जवादी! तत्थ हि भगवता 'अहञ्हि ब्राह्मण विनयाय धम्मं देसेमि रागस्सा 'ति आदि वत्वा नो च खो यं त्वं सन्धाय वदेसी 'ति आदिना वेरञ्जब्राह्मणस्स अत्तनो वेनयिकादि भावो विभज्ज वुत्तोति। अपि च सोमनस्सादीनं चीवरादिनञ्च सेवितब्ब सेवितब्बभाव विभज्ज वदतीति विभज्जवादी। सस्सतुच्छेदवादे वा विभज्ज वदतीति विभज्जवादी 'सस्सतो अत्ता च लोकोचा' ति आदीनं ठपनीयानं पंहानं ठपनतो रागादिश्वसङ्खातस्स सस्सतस्स रागादिकायदुच्चारितादि उच्छेदस्स वचनतो विभज्जवादी, सस्सतुच्छेदभूते उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झियमपटिपदाभूतस्स पटिच्चसमुप्पादस्स देसनतो विभज्यवादी भगवा'। - विभज्यवाद, प्रो. ब्रह्मदेव नारायण शर्मा
२८. सारत्थ. पृ. १४८-१४६
२६. बौद्ध दर्शन प्रस्थान, प्रो. रामशंकर त्रिपाठी।

आधार-ग्रंथ

१. पालि साहित्य का इतिहास, पृ. ४६०
२. संयुत्तनिकाय पालि एक अध्ययन - डॉ. विजय कुमार जैन, पृ. ६२-६३, भूमिका १ से ५ ।

• • • •

भगवान बुद्ध की देशना, देशना का क्रम, पात्र, शैली और विशेषताएं

देशना से तात्पर्य भगवान बुद्ध की शिक्षा या उपदेश से है। पालि निकायों में भगवान् के प्रथम उपदेश से लेकर अन्तिम वचन एवं उनके बीच की विभिन्न शिक्षाएं मिलती हैं। जिससे भगवान् बुद्ध की देशना का स्वरूप एवं विशेषताएं स्पष्ट होती हैं।

बुद्धत्व प्राप्ति के बाद भगवान ने वितर्क से संसारी जनों की स्थित पर विचार किया और उन्होंने पाया कि उनका धर्म प्रतीत्यसमुत्पाद और संसारी लोगों के अनुकूल नहीं है, क्योंकि संसारी लोग काम आसक्वि में रत एवं प्रसन्न है। जबकि भगवान का धर्म गम्भीर, दुर्दर्शनीय, दुर्जय, शांत, तर्क से परे, निपुण पण्डितों के जानने योग्य है। इसलिए भगवान ने वितर्क किया कि जनता को उपदेश देना उचित नहीं है क्योंकि इसे प्रजा समझेगी नहीं और न समझना उसके लिए पीड़ादायक होगा।[1] ब्रह्मा के निवेदन पर भगवान् ने प्राणियों की दया के निमित्त संसार को बुद्ध नेत्र से देखा। भगवान ने देखा कि संसार में विविध प्रकार के प्राणी हैं-अल्पमति, तीक्ष्णबुद्धि, सुन्दर स्वभावाले, शीघ्र समझने वाले तथा परलोक एवं पाप से भयभीत। इन सभी की स्थिति का चित्रण भगवान ने कमल और नाल के दृष्टान्त से उपमा द्वारा दिया एवं ब्रह्मा याचना स्वीकार करते हुए कहा कि उन्होंने पहले मनष्यों की पीड़ा का ध्यान रखकर उत्तम धर्म का उपदेश नहीं दिया था अब उनके लिए द्वार खुल गया है, जो कान वाले हैं, वे श्रद्धापूर्वक सुने।[2] इसके बाद भगवान ने अपना प्रथम उपदेश सारनाथ में दिया जिसे धर्म चक्र प्रवर्तन की संज्ञा दी जाती है। पश्चात् भगवान ने भिक्षुओं को भी आदेश दिया कि वे **'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'** विचरण करें तथा स्वयं भी विचरने का निश्चय किया।[3] भगवान ने जब भिक्षुओं को सभी बन्धनों से मुक्त बतलाते हुए लोकानुकम्पार्थ विचरने के लिए आदेश दिया तो मार ने आकर कहा कि वे दिव्यलोक और मनुष्यलोक के बन्धन से अभी भी बंधे हैं, यक्ष ने कहा कि वे अनुरोध और विरोध के चक्कर में फंसे हुए हैं, जिसके उत्तर में भगवान् ने अपना परम उद्देश्य प्राणियों पर अनुकम्पा बतलाया।[4]

देशना का क्रम- संयुत्तनिकाय के खन्तूपमसुत्त से भगवान् की देशना के क्रम का भी पता चलता है। भगवान् उपदेश में प्राथमिकता सर्वप्रथम भिक्षु-भिक्षुओं को, उसके बाद उपासक उपासिकाओं को तथा शेष बचे समय में दूसरे मतावलम्बियों को दिया करते थे। असिबन्धक ग्रामणी ने भगवान पर आरोप लगाया कि भगवान किसी को अधिक प्रेम से किसी को कम प्रेम से उपदेश देते हैं। भगवान् ने अपनी बात का स्पष्टीकरण उपमा द्वारा किया। भगवान् ने अपने श्रोताओं की तीन श्रेणियां बतलाई एवं उनकी उपमा खेत एवं घड़ों से दी। भगवान ने कहा कि जिस प्रकार कृषक सर्वप्रथम सबसे उत्तम खेत में फिर मध्यम खेत में तथा उसके पश्चात् बुरे खेत में बीज बोता है। उसी प्रकार भगवान सर्वप्रथम

भिक्षु-भिक्षुणियों को फिर उपासक उपासिकाओं को तथा उसके पश्चात् अन्य मतावलम्बी श्रमण-ब्राह्मणों को उपदेश देते हैं। भिक्षु एवं भिक्षुणिओं को घड़े के समान बतलाया गया है, जिससे पानी बिल्कुल नही निकलता है, उपासक-उपासिकाओं को छिद्र रहित मटके के समान बतलाया है लेकिन उनसे कुछ पानी निकल जाता है। अन्य मतावलम्बी छिद्र वाले मटके के समान है। भिक्षु-भिक्षुणिओं, उपासक-उपासिकाओं को प्राथमिकता का कारण यह है कि वे भगवान को अपना त्राण समझकर विहार करते हैं तथा अन्य मतावलम्बियों को उपदेश देने का कारण उनके प्रति अनुकम्पा है कि थोड़ा भी समझ जायें तो उनके हित और सुख के लिए होगा।[५]

देशना के पात्र- जिसने चित्त की उछृंखलता को दबा दिया है, द्वेष को बिलकुल छोड़ दिया है, उसी को उपदेश देना उचित बतलाया गया है। मैले चित्तवाले, झगड़ा करने को तैयार तथा विरोध भाव रखने वाले को उपदेश उचित नहीं बतलाया गया है।[६] वाद-विवाद वाले भिक्षु को भी उपदेश के अयोग्य ठहरा दिया गया था।[७] आलस्य, प्रमाद, उत्साहहीनता, असंयम, निद्रा तथा तन्द्रा- इन छः बातों से युक्त रहने पर उपदेश नहीं ठहरता।[८]

शैली- पालि निकायों में भगवान् बुद्ध की देशना को विभिन्न शैलियां प्राप्त होती हैं-संक्षिप्त कथन, विस्तृत, प्रश्नोत्तर, यमक, उपमा आदि। आचार्य बुद्धघोष ने सुत्तों के चार प्रकार बतलाये हैं-अत्तज्झासय, परज्झासय, पुच्छावसिक एवं अट्ठप्पतिक। भगवान की अपनी इच्छा से दिए गए उपदेश अत्तज्झासय, दूसरों की इच्छा या प्रेरणा से दिए गए उपदेश परज्झासय, प्रश्नोत्तर स्वरूप दिए गए उपदेश पुच्छावसिक तथा अन्य सुत्तों के स्पष्टीकरण के लिए दिए गए उपदेश अट्ठप्पतिक है।[९]

विशेषताएं- भगवान का उपदेश आदिकल्याणकारी, मध्यकल्याणकारी, अवसान कल्याणकारी अर्थ एवं शब्द से परिपूर्ण परिशुद्ध तथा ब्रह्मचर्यवाला होता है।[१०] दीघनिकाय में सारिपुत्र भगवान् के प्रति सिंहनाद करते हुए उनके उपदेश की विशेषताएं एवं विषय-वस्तु बतलाते हैं। वर्णित है कि भगवान अच्छे बुरे का विभाजन कर उपदेश देते थे, कुशल धर्मों का, गर्भ प्रवेश के विषय में, आदेशना विधि के विषय में, दर्शन-समापत्ति, पुद्गल-प्रज्ञप्ति, सम्बोध्यंग, प्रतिपदा, शील सम्बन्धी आचरण अनुशासन विधि विषयक, पुढाल विमुक्ति ज्ञान, शाश्वतवाद, पूर्वजन्मानुस्मृति ज्ञान, प्राणियों के जन्म मरण का ज्ञान तथा ऋद्धिविध (दिव्य शक्ति) के विषय में उपदेश देते थे।[११] भगवान की देशना का प्रमुख उद्देश्य दुःख का निरोध करना था।

भगवान प्रश्न का उत्तर अपने दृष्टिकोण से देते थे। श्रोता चाहे जिस प्रकार से प्रश्न पूछे। भगवान् अनुपयोगी बात को छोड़कर उपयोगी एवं सुलझी हुई बात करते थे। भगवान् स्पष्ट कह देते थे कि प्रश्न पूछने का ढंग ठीक नहीं है, प्रश्न इस प्रकार होना चाहिए। भगवान से पूछे जाने पर कि विज्ञान आहार का कौन आहार करता है ? भगवान ने कहा यह प्रश्न ही गलत है, क्योंकि वे ऐसा नहीं कहते हैं कि कोई आहार करता है। प्रश्न

उपयुक्त यह होना चाहिए कि विज्ञान आहार से क्या होता है ? जिसका उत्तर यह है कि विज्ञान आहार आगे पुनः जन्म का हेतु है।[१२] सुख दुःख के सम्बन्ध में पूछे जाने पर कि दुःख स्वयं किया होता है या दूसरे का किया होता है ? भगवान ने दोनों प्रश्नों को दो अन्त बतलाते हुए कहा कि सुख दुःख क्यों होता है तथा इसका निरोध क्या है।[१३] संयुत्तनिकाय के प्रथम सगाथ वर्ग में प्रश्नों के उत्तर व्यवहारिक दृष्टिकोण से दिए गए हैं एवं प्रश्नों का मोड़ धार्मिक कर दिया गया है।

भगवान के उपदेश की विशेषता पर्याय देशना से थी। भगवान का स्पष्ट कथन था कि जो उनके दृष्टिकोण को समझते थे उनके उपदेशों का अनुमोदन करेंगे तथा जो नहीं समझेंगे वे आपस में विवाद एवं झगड़ा करेंगे। यह बात भगवान ने उस समय कही जब भिक्षु आपस में वेदना के सम्बन्ध में विवाद कर रहे थे।[१४] इसी प्रकार एक समय भगवान के दर्शन की शुद्धि के सम्बन्ध में दो तीन मत व्यक्त किए गए तो एक भिक्षु ने भगवान के पास जाकर सभी मत व्यक्त किए और वास्तविकता जाननी चाही। भगवान ने उत्तर दिया कि सभी अपनी अपनी समझ के अनुसार कहते हैं और सभी सही है। जिस प्रकार फूल को अलग अलग अवस्थाओं में देखकर व्यक्ति अलग-अलग प्रतिपादन करें, लेकिन सभी सच बोलते हैं, उसी प्रकार दर्शन की शुद्धि की बात है।[१५] राजा प्रसेनजित के यहां राजाओं के बीच विवाद होने पर भगवान् ने यही कहा था कि जिसे जो अच्छा लगे वही ठीक है, क्योंकि जो एक को अच्छा लगता है वही दूसरे को बुरा लगता है।[१६]

भगवान बुद्ध के उपदेश की विशेषता यह भी थी कि उचित समय पर ही विषय वस्तु का प्रतिपादन करते थे। भगवान स्वयं कहते हैं कि वे इन प्रश्नों का उत्तर भिक्षुओं के पूछने पर ही दिए हैं। क्योंकि पहले देते तो शायद दूसरे लोग नहीं मानते और नहीं मानने से उनका अहित और दुष्परिणाम होता।[१७] पहले भी भगवान ने जनता के अहित के ख्याल से उपदेश देने में अनुत्सुकता दिखलाई थी। भगवान ने शुद्ध देशना का लक्षण बतलाया था कि जो धर्म को स्वाख्यात समझकर दूसरे के कल्याण हेतु धर्म कहता है उसकी देशना स्वाख्यात है।[१८] इस प्रकार पालिनिकायों के मूल सन्दर्भों के आधार पर भगवान बुद्ध के मन्तव्य को उपस्थित किया है।

संदर्भ-विवरण

१. संयुत्तनिकाय भाग-१, पृ. १३७ २. वही १ पृ.-१३७-१३६ ३. वही १
४. संयुत्तनिकाय, भाग-१, पृ.-२०७ ५. वही ४, पृ. २७८ ६. संयुक्तनिकाय भाग-, पृं. १४३
७. वही १ पृ.-१७० ८. वही ६. सुमंगलविलासिनी, भाग.-१ पृ. ६५
१०. संयुत्तनिकाय, भाग ४ पृ. २७८ ११. दीघनिकाय,भाग-३, पृ. ७६-८७
१२. संयुत्तनिकाय, भाग-२, पृ.-१४ १३. संयुत्तनिकाय, भाग-२, पृ.-१४
१४. संयुत्तनिकाय, भाग-४, पृ.-१७१ १५. संयुत्तनिकाय, भाग-१, पृ.-७८-८०
१६. संयुत्तनिकाय, भाग-२, पृ.-२१२ १७. संयुत्तनिकाय, भाग-१, पृ.-७८-८०

• • • •

पालि साहित्य में सम्यक्दृष्टि

आर्य आष्टांगिक-मार्ग का प्रथम अंग सम्यक्दृष्टि है लेकिन सम्यक्दृष्टि का क्षेत्र विस्तृत है। बुद्ध शिक्षा को यथार्थ धारण करना सम्यक्दृष्टि है। इसकी व्याख्या भदन्त आनन्द कौशल्यायन ने इस प्रकार की है- दुराचरण को दुराचरण समझना। सदाचरण को सदाचरण समझना। लोभ, मोह, द्वेष को दुराचरण का मूल कारण समझना। अलोभ, अमोह, अद्वेष को सदाचरण का मूल कारण समझना। चार आर्य सत्यों को समझना। दस संयोजनों से मुक्त होने का प्रयास करना। आत्मा को लेकर किसी दृष्टि में नहीं लगना। किसी भी दृष्टि से नहीं चिपटना। प्रतीत्यसमुत्पाद को यथार्थ रूप में समझना सम्यक्दृष्टि है।[१]

संयुत्तनिकाय में चार आर्यसत्यों के ज्ञान[२] एवं प्रतीत्यसमुत्पाद के ज्ञान को सम्यक् दृष्टि कहा गया है। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन को अनित्य देखने से तथा रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और धर्म को भी अनित्य देखने से सम्यक्दृष्टि वाला बतलाया गया है। संसार के सम्बन्ध में अस्तित्व एवं नास्तित्व की अविद्या को दो अन्त कहा गया है। संसार के समुदय का यथार्थ ज्ञान करने से, लोक की नास्तित्व और अस्तित्व बुद्धि मिट जाती है। यह संसार आसक्ति और ममत्व के मोह में है। जब उसकी तृष्णा, आसक्ति, ममत्व, मोह समाप्त हो जाता है, वह समझ लेता है कि दुःख ही उत्पन्न होता, निरुद्ध होता है, उसे किसी प्रकार का संशय नहीं रहता, भीतर वास्तव में ज्ञान हो जाता है तब सम्यक्दृष्टि कहा जाता है।

चार आर्यसत्य -

भगवान् बुद्ध की शिक्षा में चार आर्यसत्यों का प्रमुख स्थान है। भगवान् ने अपने प्रथम उपदेश में इनका उपदेश दिया था। संयुत्तनिकाय में चार आर्यसत्यों से सम्बन्धित विस्तृत विवरण मिलता है। सच्चसंयुत्त में १३७ सुत्त हैं, जो आर्यसत्यों से सम्बन्धित सूक्ष्म जानकारी देते हैं।[३] चार आर्यसत्यों में चार सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाता है- दुःख आर्यसत्य, दुःख समुदय आर्यसत्य, दुःख निरोध आर्यसत्य तथा दुःखनिरोधगामी मार्ग आर्यसत्य। इनके नामकरण पर प्रकाश डालते हुए भगवान् ने बतलाया था कि ये चार आर्यसत्य तथ्य हैं, अवितथ हैं, हूबहू वैसे ही है, इसलिए आर्यसत्य कहे जाते हैं।[४] दूसरे सुत्त में बतलाया गया है कि-देव, मार, ब्रह्मा सहित इस लोक में, श्रमण ब्राह्मणों सहित प्रजा में, देव तथा मनुष्यों में तथागत ही आर्य (श्रेष्ठ) हैं, इसलिए उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत आर्यसत्य कहे जाते हैं। तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध के उत्पन्न होने से ही चार आर्यसत्यों की चर्चा, शिक्षा, सिद्धि होने लगती है। जिस प्रकार चांद या सूरज

के उगने के बिना अंधकार दूर नहीं होता है एवं प्रकाश नहीं आता है, उसी प्रकार तथागत के बिना चार आर्यसत्यों की शिक्षा नहीं होती, तथागत के होने से ही होती है।

भगवान् बुद्ध ने अपने अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध कहे जाने के कारण इन्हीं चार आर्यसत्यों का यथार्थ ज्ञान बतलाया है तथा अतीतकाल के बुद्धों एवं अनागत के बुद्धों को भी चार आर्यसत्यों के अवबोध से अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध बतलाया है।[५] पूर्वजन्मों में चार आर्यसत्यों के ज्ञान न होने से भगवान् को अपनी पूर्वावस्था एवं इस जन्म में पड़े रहना पड़ा। चार आर्यसत्यों के ज्ञान के बाद भगवान् कहते हैं कि- अब उनकी तृष्णा नष्ट कर दी गई है। दुःखों की जड़ कट गई है। अब पुनर्जन्म नहीं होगा।[६]

चार आर्यसत्यों की व्याख्या भगवान् ने धम्मचक्कपवत्तन सुत्त में की थी, जिसका वर्णन महावग्ग (विनयपिटक) के समान ही संयुत्तनिकाय में मिलता है। इसमें चार आर्यसत्यों को तिहरा अर्थात् बारह प्रकार से साक्षात्कार किया बताया गया है।[७]

दुःख आर्यसत्य – जाति, जरा, व्याधि, मरण, अप्रियों का संयोग एवं प्रियों का विप्रयोग दुःख है, इच्छित वस्तु का न मिलना भी दुःख है। संक्षेप में कहा जाय तो पांच उपादान स्कन्ध-दुःख आर्य सत्य हैं।

दुःखसमुदय आर्यसत्य- पुनः-पुनः जन्म होने वाली, उन-उन विषयों में अभिनन्दन करने वाली नन्दीराग सहगत तृष्णा-कामतृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा- दुःखसमुदय आर्यसत्य है।

दुःखनिरोध आर्यसत्य- तृष्णा का पूर्णतया विराग, निरोध, त्याग, प्रतिनिःसर्ग, मुक्ति अनालय होना- दुःखनिरोध आर्यसत्य है।

दुःखनिरोधगामि मार्ग आर्यसत्य- आर्य अष्टांगिक मार्ग- सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि- दुःख निरोधगामि मार्ग आर्य सत्य है।

इन चार आर्यसत्यों को तिहरे प्रकार से वर्णित करने के कारण बारह प्रकार का बतलाया गया है।

१. (क) यह दुःख आर्यसत्य है, (ख) यह दुःख आर्यसत्य परिज्ञेय है,
(ग) यह भगवान् के द्वारा परिज्ञात कर लिया गया है।

२. (क) यह दुःखसमुदय आर्यसत्य है, (ख) यह प्रहातव्य है,
(ग) भगवान् के द्वारा प्रहाण कर दिया गया है।

३. (क) यह दुःख निरोध आर्यसत्य है, (ख) यह साक्षात्कार करने योग्य है,
(ग) भगवान् के द्वारा साक्षात्कार कर लिया गया है।

४. (क) यह निरोधगामी मार्ग आर्यसत्य है, (ख) यह भावना करने योग्य हैं,
(ग) भगवान् के द्वारा भावित हो गया है।

इस प्रकार भगवान् को चार आर्यसत्यों का तिहरा ज्ञान हुआ। पहले न सुने गए धर्मो में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ बतलाया है। बारह प्रकार के ज्ञान के बाद भगवान् ने अपने लिए अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्ध घोषित किया कि- उनका चित्त विमुक्त हो गया है, यह अन्तिम जन्म है, अब पुनर्जन्म नहीं होगा।[८] चार आर्यसत्यों को यथार्थ धारण करने की शिक्षा देते समय प्रथम को प्रथम, द्वितीय को द्वितीय, तृतीय को तृतीय एवं चतुर्थ को चतुर्थ धारण करने की सलाह दी है एवं उसे यथार्थ धारण करना बतलाया है। भगवान् ने आर्यसत्यों को ज्ञान के लिए सम्यक्दृष्टि को उसका पूर्वलक्षण उसी प्रकार बतलाया था जिस प्रकार सूर्योदय के पहले से पूर्व लालिमा होती है। इसके यथार्थज्ञान के लिए समाधि के अभ्यास एवं आत्म चिन्तन की सलाह दी थी। चेलसुत्त में कहा गया है कि- चार आर्यसत्यों के जानने के लिए छन्द, व्यायाम, उत्साह, तत्परता और स्मृति बनाये रखना चाहिए। भगवान् ने चार आर्यसत्यों के अज्ञान को सबसे बड़ा अन्धकार एवं सबसे बड़ा प्रपात बतलाया था, जिससे मुक्त होना सम्भव नहीं होता। दुःख की विशालता बतलाते हुए कहा था कि लिच्छिवियों द्वारा छेदे जाने वाले बाण से भी सौ भाग छोटा छिद्र छोड़ना आसान है, लेकिन दुःख का भेदना आसान नहीं है। इसके अतिरिक्त दुःख की विशालता दर्शाने वाले अनेक सुत्त हैं।

भगवान् ने कहा था कि चार आर्यसत्यों के ज्ञान के बदले यदि सौ भालों से भी छिदना पड़े तो उसे ज्ञान के बदले में स्वीकार कर लेना चाहिए। काम, व्यापाद, विहिंसा, वितर्को, पापमय अकुशल वितर्को, विग्रह की बातों एवं तिरश्चीन कथाओं के त्याग की बात कही थी। क्योंकि ये अर्थ सिद्ध करने, ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, उपशम, सम्बोधि एवं निर्वाण के लिए नहीं है।

चार आर्यसत्यों की विशेषता बतलाते हुए कहा गया है कि जो एक आर्यसत्य को धारण करता है वह सभी आर्यसत्यों को धारण करता है।

चार आर्यसत्यों के देखने और जानने से आस्रवों का क्षय अपाय से मुक्ति एवं दुःख का क्षय होता है। इनके ज्ञान से लोहे के खम्भे के समान स्थिरता आती है। चार आर्यसत्यों के यथार्थ जानने से ही श्रमण ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी होते हैं तथा इनके ज्ञान के बाद चर्चा करने में समर्थ होते हैं। भगवान् ने एवं अतीत के बुद्धों ने अपने अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धत्व का दावा चार आर्यसत्यों के ज्ञान के बाद किया तथा सभी अनागत के बुद्धों के लिए चार आर्यसत्यों का ज्ञान अनिवार्य बतलाया गया है। भगवान् ने प्राणियों को विभिन्न प्रकार से चार आर्यसत्यों की शिक्षा दी थी तथा कहा था कि अपने मित्रों को भी आर्यसत्यों की शिक्षा देनी चाहिए।[३३]

प्रतीत्यसमुत्पाद :-

भगवान् बुद्ध ने अपने यथार्थ दर्शन के रूप में प्रतीत्यसमुत्पाद का प्रतिपादन किया था। भगवान् ने अनुभव किया था कि यह प्रजा तृष्णा के कारण संसार में भ्रमित हो रही है और दुःखी है। इसके कारणभूत तृष्णा को रोक दिया जाय तो यह चक्कर रुक सकता है। इस बात का ज्ञान प्रजा को नहीं है। इसे भगवान् ने अविद्या कहा। अविद्या के कारण ही प्रजा भ्रमित हो रही है, उसके सारे दुःख समूह उठ खड़े होते हैं, यदि इसको जान लिया जाय तो सारे दुःख समूहों को जाना जा सकता है। इसलिए भगवान् ने अपने दर्शन में दो बातों की प्रमुखता दी-दुःख का कारण एवं उसका निरोध। दुःख के सम्बन्ध में भगवान् से विभिन्न प्रकार से प्रश्न पूछे जाते थे। क्या दुःख स्वयं अपना किया होता है? दूसरे का किया होता है? क्या स्वयं और दूसरे का किया होता है? क्या अकारण होता है? भगवान् ने इन सभी प्रश्नों को गलत बतलाया एवं पूछे जाने पर कि क्या दुःख है ही नहीं? भगवान् ने कहा- दुःख है, लेकिन भगवान् दो अन्तों को छोड़ मध्यम प्रकार से बतलाते हैं। उन्होंने कहा कि अविद्या से संस्कार-विज्ञान- नामरूप-षडायतन-स्पर्श-वेदना-तृष्णा-उपादान-भव- जाति-जरामरण शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य उत्पन्न होते हैं। अविद्या के मिट जाने से सारे दुःख समूह रुक जाते हैं।

इस प्रकार भगवान् ने अपने को एवं अपने दर्शन को विभिन्न प्रश्नों में न उलझा कर अपने परम उद्देश्य दुःख समूह के रोकने में लगाया। इसके लिए उन्होंने दुःख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बतलाया[९] एवं प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जो अंग हेतु है वह प्रतीत्यसमुत्पाद है तथा जो अंग फल है, वह प्रतीत्यसमुत्पन्न है।[१०] इन दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है क्योंकि सभी धर्म प्रतीत्यसमुत्पाद और प्रतीत्यसमुत्पन्न हैं।[११]

संयुत्तनिकाय में प्रतीत्यमुत्पाद का विस्तृत विवरण मिलता है इसके निदानवग्ग में प्रतीत्यमुत्पाद के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। त्रिपिटक के दीघनिकाय के महानिदान सुत्त, मज्झिमनिकाय के महातण्हासंखयसुत्त, चूलसिंहनादसुत्त एवं महाहत्थिपदोपम सुत्त में, उदान के बोधिवग्ग में एवं पट्ठान में उसकी विस्तृत रूप से जानकारी मिलती है। साथ ही मिलिन्द प्रश्न एवं आचार्य बुद्धघोष के विसुद्धिमग्ग में भी इसका विवेचन किया गया है। त्रिपिटक में संयुत्तनिकाय का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि प्राचीन माने जाने वाले ग्रन्थों में प्रतीत्यसमुत्पाद का सबसे अधिक विस्तृत परिचय इसी में मिलता है।

प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ-

प्रतीत्यसमुत्पाद एक निश्चित सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाला शब्द है, जिसमें १२ प्रत्ययों का अनुलोम एवं प्रतिलोम की पद्धति से वर्णन समाहित है। प्रतीत्यसमुत्पाद की व्याख्या या अर्थ करना कितना दुष्कर है, इसका आभास आचार्य बुद्धघोष को भी हुआ था और उन्होंने कहा था कि- इसका अर्थ करना अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि सूत्रों की अवहेलना हो सकती है।[१२]

प्रतीत्यसमुत्पाद में दो शब्द हैं- प्रतीत्य एवं समुत्पाद। प्रतीत्य (प्रति इण् गतौ ल्यप्) का अर्थ है प्राप्त कर एवं समुत्पाद में पद धातु सत्तार्थक है। सम्+उत् उपसर्ग पूर्वक इसका अर्थ प्रादुर्भाव है, जिसका भाव-उत्पन्न करता है। अर्थात् एक वस्तु के होने पर दूसरे को उत्पन्न करना। एक-दूसरे के प्रत्यय से उत्पत्ति का सिद्धान्त।[13]

विसुद्धिमग्ग में कहा गया है कि यह हेतु समूह इससे प्रतिमुख है, इसलिए प्रतीत्य कहा गया है एवं साथ में रहने वाले धर्मो को उत्पन्न करता है, इसलिए यह समुत्पाद कहलाता है।[14] संयुत्तनिकाय में भी प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ 'हेतु' से है। न यह स्वयं का बनाया हुआ है न दूसरे का। बल्कि एक दूसरे के प्रत्यय से होता है। जैसे दो नलकपाल एक-दूसरे पर टिके रहते हैं उसी प्रकार इसके प्रत्यय एक दूसरे के हेतुओं के कारण से हैं।

व्याख्या- भगवान् ने प्रतीत्यसमुत्पाद की व्याख्या करते हुए इसमें बारह अंगों का प्रतिपादन किया था। जिसमें दुःख समुदय एवं दुःखनिरोध की व्याख्या की थी, जिसे अनुलोम एवं प्रतिलोम के नाम से जाना जाता है। संयुत्तनिकाय में अनुलोम को मिथ्यामार्ग एवं प्रतिलोम को सत्यमार्ग कहा गया है।

द्वादश प्रत्यय- अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और जरामरण हैं। **अविद्या-**चार आर्यसत्यों का अज्ञान है। इसी अविद्या के कारण सारा दुःख समूह होता है और इसके निरोध से दुःख समूह रुक जाता है। **संस्कार-** तीन प्रकार के हैं- काय संस्कार, वाक् संस्कार तथा चित्त संस्कार। **विज्ञान-** छः प्रकार के हैं- चक्षु विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वा विज्ञान, काय विज्ञान और मनोविज्ञान। **नामरूप-**वेदना, संज्ञा, चेतना, स्पर्श और मन में कुछ लाना- इसे नाम कहा गया है एवं चार महाभूतों से जो रूप होते हैं उन्हें रूप कहा गया है। **षडायतन-**इसमें छः आयतन वर्णित हैं- चक्षुआयतन, श्रोत्र आयतन, घ्राण आयतन, जिह्वा आयतन, काय आयतन और मन आयतन। **स्पर्श-**छः प्रकार के स्पर्श हैं- चक्षु संस्पर्श, श्रोत्र संस्पर्श, घ्राण संस्पर्श, जिह्वा संस्पर्श, काय संस्पर्श और मन संस्पर्श। **वेदना-** छः प्रकार की वेदनाएं हैं- चक्षु के संस्पर्श से होने वाली वेदना, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय एवं मन के संस्पर्श से होने वाली वेदना। **तृष्णा-** तृष्णा छः प्रकार की है- रूपतृष्णा, शब्द तृष्णा, गन्धतृष्णा, रसतृष्णा, स्पर्श तृष्णा एवं धर्म तृष्णा। **उपादान-**चार प्रकार के उपादान हैं- काम उपादान, दृष्टि उपादान, शीलव्रत उपादान एवं आत्मवाद उपादान। **भव-** भव के तीन प्रकार हैं- काम भव, रूप भव और अरूप भव। **जाति-**जीवों का योनियों में जन्म लेना, पैदा होना, आना, प्रकट होना, स्कन्धों का प्रादुर्भाव, आयतनों का प्रतिलाभ करना जाति है। **जरामरण-**जीवों का योनियों में बूढ़ा हो जाना, पुराना हो जाना, दांतों का टूट जाना, बाल सफेद हो जाना, झुर्रियां पड़ जाना, उम्र का समाप्त होना, इन्द्रियों का शिथिल हो जाना

'जरा' है एवं जीवों का योनियों से खिसकना, टपकना, कटजाना, अन्तर्धान हो जाना, मृत्यु होना, स्कन्धों का छिन्न-भिन्न हो जाना, शरीर को छोड़ देना मरण बतलाया है। इस प्रकार जरामरण होता है।[१५]

भगवान् ने इन द्वादश निदानों की पूर्व कोटियों सहित विस्तृत व्याख्या की है। अविद्या की पूर्व कोटि का वर्णन नहीं है। अविद्या क्यों होती है इसका कारण बतलाया गया है कि चार आर्यसत्यों के अज्ञान से अविद्या होती है। चार आर्यसत्यों के ज्ञान से अविद्या हट जाती है। शेष ग्यारह प्रत्ययों का वर्णन चार कोटियों में किया है एवं इन्हें (११X४=) ४४ प्रकार से ज्ञान का विषय बतलाया है। ग्यारहों में से प्रत्येक का अलग-अलग ज्ञान, उनके समुदय का ज्ञान, निरोध का ज्ञान, एवं निरोधगामी मार्ग का ज्ञान। इस प्रकार कुल ४४ ज्ञान के विषय बतलाये हैं।[१६] दूसरे सुत्त में इन ग्यारहों को ७ प्रकार से वर्णित कर ७७ भेद भी बतलाए हैं। जिसमें बतलाया गया है कि-

१. जाति आदि एक प्रत्यय से दूसरे प्रत्यय का ज्ञान होता है।
२. जाति आदि एक प्रत्यय के नहीं होने पर दूसरा प्रत्यय नहीं होता।
३. अतीत काल में भी जाति आदि एक प्रत्यय से दूसरे का ज्ञान हुआ था।
४. अतीत काल में ऐसा ज्ञान कि एक प्रत्यय से दूसरे का निरोध।
५. अनागत काल में प्रत्ययों के समुदयों का ऐसा ही ज्ञान होगा।
६. अनागत काल में प्रत्ययों के निरोध का ज्ञान होगा।
७. ऐसा ज्ञान कि जिन धर्मो की स्थिति है वे क्षय होने वाले, व्यय होने वाले, छूटने वाले और रुक जाने वाले हैं।

इस प्रकार अविद्या को छोड़कर शेष ११ प्रत्ययों में ऐसा ज्ञान बतलाया गया है जिसे ७७ प्रकार से 'ज्ञानवस्तु' कहा है। संयुत्तनिकाय में जब बारह प्रत्ययों के नाम गिनाए जाते हैं तब पहले अविद्या प्रथम प्रत्यय से १२ वें प्रत्यय जरामरण तक के नाम गिनाए गए हैं। लेकिन अधिकांशतया व्याख्या १२ वें प्रत्यय से पहले प्रत्यय तक की ही की गई है। शिक्षा देते समय विज्ञान प्रत्यय से शिक्षा आरम्भ की गई है कि विज्ञान के होने से सारा दुःख समूह खड़ा हो जाता है। तृष्णा को मूल कारण बतलाते हुए इसे त्यागने की सलाह दी गई है। तृष्णा से दुःख समूह का प्रारम्भ बतलाया गया है। इसके हटाने से शेष प्रत्ययों का निरोध बतलाया गया है। इस प्रकार इन बारह प्रत्ययों में कहीं से भी एक प्रत्यय का निरोध कर दिया जाय तो शेष प्रत्ययों का समुदय रुक जाता है। १२ प्रत्ययों की यह एक ऐसी माला है जिसे कहीं से भी तोड़ा जा सकता है और कहीं से भी जोड़ा जा सकता है।

भगवान् ने प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त की व्याख्या मध्यममार्ग के रूप में की थी, इसलिए जब भी कोई पूछता था कि जरामरण क्या है? किसको होता है? क्या जरामरण

दूसरी ही चीज है और दूसरे को ही होता है? भगवान् इस प्रकार के प्रश्नों को दो अन्तों के समान बतलाते हैं, जिस प्रकार यह पूछना कि- जो जीव हैं वही शरीर है या जीव दूसरा है शरीर दूसरा। भगवान् ने कहा था कि- वे इन दो अन्तों को छोड़कर मध्यम प्रकार से बतलाते हैं कि भव के प्रत्यय से जाति, जाति से जरामरण आदि प्रत्यय होते हैं। उपर्युक्त ढंग से प्रश्न करना गलत है। प्रश्न का सही प्रकार यह होना चाहिए कि किसके प्रत्यय से दूसरा प्रत्यय होता है और किसके प्रत्यय से दूसरा प्रत्यय रुक जाता है। प्रथम प्रकार से पूछने पर ब्रह्मचर्य-वास सफल नहीं होता। दूसरे प्रकार से ब्रह्मचर्य वास सफल होता है। इसी प्रकार आहार आदि के सम्बन्ध में कहा गया है।

भगवान् ने सच्चे मार्ग पर आरुढ़ होने के लिए शिक्षा दी है कि- जरामरण आदि प्रत्ययों के निदान, उत्पत्ति को जानना चाहिए एवं उसका मनन करना चाहिए कि एक के प्रत्यय से दूसरे प्रत्यय का समुदय एवं एक के विरोध से दूसरे प्रत्यय का निरोध होता है।[५४] इन प्रत्ययों के यथार्थ ज्ञान के लिए सलाह दी गई है कि- बुद्ध की खोज करनी चाहिए, शिक्षा लेनी चाहिए, योग करना चाहिए, उत्साह करना चाहिए, पीछे न लौटना चाहिए, उद्योग करना चाहिए, वीर्य करना चाहिए, सतत परिश्रम करना चाहिए, संप्रज्ञ रहना चाहिए और अप्रमादी रहना चाहिए। कोसम्बिसुत्त से पता चलता है कि प्रतीत्यसमुत्पाद के ज्ञान की सफलता के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का पालन करना अनिवार्य है। कहा गया है कि नारद भिक्षु प्रतीत्यसमुत्पाद के ज्ञान के बाद भी क्षीणास्रव अर्हत् नहीं हैं। जिस प्रकार कोई थका व्यक्ति मार्ग में कुआ पा जाए, लेकिन बाल्टी एवं डोर के अभाव में प्यास नहीं बुझाई जा सकती, उसी प्रकार की स्थिति नारद भिक्षु की बतलाई गई है कि वे यथार्थज्ञान को जानते हुए भी क्षीणास्रव नहीं थे। इस सुत्त में प्रतीत्यसमुत्पाद का यथार्थ ज्ञान श्रद्धा, रुचि, अनुश्रव, आकार, परिवितर्क, दृष्टि, ध्यान, क्षान्ति के बिना भी बतलाया है।[१७]

विशेषताएं-भगवान् से पूछने पर कि प्रतीत्यसमुत्पाद क्या है? भगवान् ने अविद्या के प्रत्यय से संस्कार आदि बतलाते हुए इसमें तथता, अवितथता, अनञ्ञथता, इदंपच्चयता बतलाई थी।[१८] इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने बताया है कि- प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त में उन-उन न्यूनाधिक प्रत्ययों से ही उस-उस धर्म के होने से, कम या अधिक की सम्भावना नहीं है इसलिए तथता, समग्र हुए प्रत्ययों में मुहूर्त भर भी उससे उत्पन्न हुए धर्मो के असम्भव होने के अभाव से अवितथता अर्थात् प्रत्यय सामग्री उत्पन्न होने पर उत्पन्न होने वाले धर्म भी अवश्य रूप से उत्पन्न होते हैं। अन्य पदार्थो या रूप प्रत्ययों से किसी अन्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती, इसलिए अनञ्ञथता तथा कहे गए जरामरण आदि पदार्थ प्रत्ययों या प्रत्ययसमूहों के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए इदंपच्चयता कहा जाता है।[१९] भगवान् ने अपने को इस सिद्धान्त का जानने वाला तथा स्पष्ट कर उपदेश

देने वाला बतलाया था, लेकिन इस सिद्धान्त को अटल बतलाया था कि बुद्ध उत्पन्न हो या नहीं, प्राणी जन्म लेने पर बूढ़ा और मृत्यु को प्राप्त होता है। यह प्रकृति का नियम है कि एक धर्म के होने से दूसरा होता है।[२०] भगवान् ने इसे अपने सहित पूर्व बुद्धों, को भी साक्षात्कृत प्राचीन बुद्धमार्ग बतलाया था।

महत्व– भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्ति के पहले प्रजा के जरामरण के कष्टों का अनुभव किया था और इसी के दुःख के उपाय जानने के लिए दृढ़ संकल्प किया था। भगवान् को जब दुःख के समुदय और निरोध का ज्ञान हो गया तब भगवान् ने अपने को अनुत्तर-सम्यक् सम्बुद्ध घोषित किया था। प्रतीत्यसमुत्पाद की जटिलता समझते हुए भगवान् ने उपदेश देने के विचार के समय भी पहले उपेक्षा भाव दिखा कि- जनता काम सुख में रमण करने वाली है, इसलिए वह उनके कठिनता से जानने वाले प्रत्यय समूहों के प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त को नहीं समझेगी। एक बार आनन्द द्वारा कहे जाने पर कि उन्होंने आनन्द के इस गूढ़ सिद्धान्त को साफ-साफ कर लिया है, भगवान् ने कहा- ऐसा मत कहो यह प्रतीत्यसमुत्पाद बड़ा गम्भीर है, गूढ़ है। इसी धर्म को न जानने के कारण यह प्रजा उलझी हुई है। उलझी हुई धागे की गुत्थी अथवा गांठ और बन्धनों वाली मूंग की झाड़ी के समान है। सारिपुत्र द्वारा सिंहनाद किए जाने पर कि उनका ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया है, जो करना था, कर लिया। भगवान् ने बुलाकर पूछा तथा सारिपु त्त द्वारा जाति आदि के निदान का वर्णन करने पर भगवान् ने उनका समर्थन किया। भगवान् ने कहा था कि प्रतीत्यसमुत्पाद के ज्ञान को 'आर्यज्ञान' कहा जा सकता है, अच्छी तरह देखा जाना कहा जा सकता है। इसके ज्ञान के बाद आर्यश्रावक को दृष्टि सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, सद्धर्म को प्राप्त, शैक्ष्य, ज्ञानों से युक्त, धर्म के स्रोत में आ गया, निर्वेधिक प्रज्ञ, अमृत के द्वार पर खड़ा हुआ, कहा जा सकता है। वह श्रमण और ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी होता है।[२१]

मिथ्यादृष्टि–भगवान् बुद्ध के दर्शन को जानने के साथ ही मिथ्यादृष्टियों को भी जानना आवश्यक है, क्योंकि भगवान् किसी मत की समीक्षा करते समय ऐसी बातों को अपने धर्म विरुद्ध बतलाते थे जो मिथ्यादृष्टि शाश्वतवाद या उच्छेदवाद के अन्तर्गत आती थी।

यदि कोई बात शाश्वतवाद या उच्छेदवाद के अन्तर्गत आती है तो वह धर्म के विरुद्ध मानी जाती थी, उसमें और कोई बुराई का कारण नहीं दिया जाता था, क्योंकि सभी बुराइयों के जड़ रूप यही विचार शाश्वतवाद और उच्छेदवाद थे। यद्यपि मिथ्यादृष्टि ऐसे शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं आता किन्तु ये दृष्टियां ही मिथ्या हैं, ऐसा माना जाता है क्योंकि एक सुत्त में कहा गया है कि दृष्टि मानने वाले धर्म नहीं होते।[२२] परवर्ती बौद्ध साहित्य में मिथ्यादृष्टि का प्रयोग हुआ और दृष्टियों के अन्तर्गत मतों की समीक्षा मिथ्यादृष्टि के नाम से प्रचलित हो गई।[२३]

मिथ्यादृष्टियों का विस्तृत विवरण संयुत्तनिकाय के दृष्टिसंयुत्त में मिलता है। वत्सगोत्र संयुत्त में मिथ्यादृष्टियों के मूल कारण पर विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त यत्र-तत्र विविध प्रसंगों में भी चर्चाएं हैं। दीघनिकाय के ब्रह्मजाल सुत्त में भगवान् ने ६२ मिथ्यादृष्टियां बतलाई हैं, जिसमें भगवान् ने दावा किया है कि उस सुत्त में उन्होंने उसी प्रकार सभी मिथ्या विचारों को और उनके कारणों को बांध दिया है जिस प्रकार कोई दक्ष लड़का छोटे-छोटे छेदवाले जल से पूरे जलाशय की मछलियों को फंसा लेता है। भगवान् ने अपने इस उपदेश को, जिसमें मिथ्यादृष्टियों का वर्णन किया था, विभिन्न नाम देते हुए कहा था कि इसके कोई अर्थजाल, धर्मजाल, ब्रह्मजाल, दृष्टिजाल या अलौकिक संग्राम विजय भी कह सकता है।[२४] दीघनिकाय में इन मिथ्यादृष्टियों को पूर्वान्तकल्पिक एवं उपरान्त कल्पिक नाम से विभाजित किया है, जिसमें एक में पूर्वजन्म से सम्बन्धित तथा दूसरे में भविष्य में होने वाले जन्म से सम्बन्धित दृष्टियां हैं। संयुत्तनिकाय में ब्रह्मजालसुत्त के नाम सहित ६२ मिथ्यादृष्टियों का उल्लेख है। एक सुत्त में मिथ्यादृष्टियों की संख्या ६० बतलाई है।

विभिन्न ग्रन्थों में अव्याकृत के नाम से आने वाली बातें भी संयुत्तनिकाय में दृष्टि के रूप में गिनाई गई हैं। साथ ही कुछ अन्य तैर्थिकों के मतों को उसमें शामिल किया गया है।

सत्कायदृष्टि- आत्मा के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार से विचार करने को ही सत्कायदृष्टि कहा जाता है। आत्मा रूपवान् होता है, अरूपवान् होता है, रूपवान् एवं अरूपवान् होता है, आत्मा एकान्त सुखी होता है, दुःखी होता है, सुख दुःख से रहित होता है, अरोग होता है।[२५] सत्कायदृष्टि को सभी मिथ्यादृष्टियों का मूलकारण कहा गया है तथा सलाह दी गई है कि स्मृतिमान् रहते सत्कायदृष्टि का प्रहाण करना चाहिए।[२६] रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को आत्मा समझने से सत्कायदृष्टि उत्पन्न होती है।

शाश्वतवाद- विचार करना कि हवा नहीं बहती, नदियां प्रवाहित नहीं होती, गर्भिणी बच्चा नहीं जनती, चांद सूरज न उगते हैं न डूबते हैं अपितु बिल्कुल दृढ़ अचल हैं।

यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरा आत्मा है- ऐसा विचार करना। जो आत्मा है सो लोक है न मैं होता, न मेरा होवे, न मैं होऊंगा न मेरा होगा। इस प्रकार विचार करना शाश्वतवाद है।

उच्छेदवाद- विचार करना कि दान, यज्ञ, होम नहीं हैं, अच्छे बुरे कर्म के फल नहीं होते। यह लोक नहीं है, परलोक नहीं है, माता, पिता नहीं हैं। औपपातिक सत्व लोक में श्रमण ब्राह्मण नहीं है। प्राणी चार महाभूतों से मिलकर बना है, मृत्यूपरान्त उसी में लीन हो जाता है। दिया हुआ दान बिल्कुल झूठ है। जो आस्तिकवाद प्रतिपादित करने वाले हैं वे मूर्ख और पण्डित सभी उच्छिन्न हो जाते हैं। मरने के बाद कुछ भी शेष नहीं रहता। भगवान्

ने शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद- इन दो अन्तों को प्रतिपादित करते हुए विभिन्न प्रसंगों में इनको इंगित किया है। सभी कुछ विद्यमान है, यह एक अन्त है। सभी कुछ शून्य है, यह दूसरा अन्त है। दुःख स्वयं किया होता है, दूसरे का किया होता है ये दोनो अन्त हैं। जो वेदना है वही अनुभूति कराने वाला है, अनुभूति कराने वाला दूसरा है यह दूसरा अन्त है। जो करता है, वही भोगता है, एक अन्त है, दूसरा भोगता है यह दूसरा अन्त है। भव एवं विभव को भी दो दृष्टि कहा गया है।

अक्रियावाद – ऐसा विचार करना कि करते, कराते, काटते, कटवाते, मारते, मरवाते, विचार करते, विचार करवाते हुए, थकते, थकाते हुए, बझते, बझवाते हुए, हिंसा, चोरी, सेंध, डाका डालते, घर लूटते, राहजनी करते, परस्त्री गमन करते, झूठ बोलते कोई पाप नहीं लगता। सभी प्राणियों के मारने से भी कोई पाप नहीं लगता, गंगा के किनारे में भी हिंसा करते हुए पाप नहीं लगता। दान, दम, संयम, सत्यवादिता में कोई पुण्य नहीं है। यह अक्रियावाद है। यह विचार पूरणकाश्यप का माना जाता था।

देववाद – ऐसा विचार करना कि सत्वों के संक्लेश और विशुद्धि के कोई हेतु प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु प्रत्यय के प्राणी संक्लिष्ट और विशुद्ध होते हैं। बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, कुछ भी नहीं है। सभी प्राणी अवश, अबल, अवीर्य भाग्य के अधीन संयोग के अधीन स्वभाव के अधीन, छः अभिजातियों में सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। यह देववाद है।

अकृततावाद – ऐसा विचार करना कि सात काया- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सुख, दुःख और जीव अकृत, अकारित, अनिर्मित, अनिर्यावित, वन्ध्या, कूटस्थ, अचल हैं। न हिलते डुलते- न विपरिणत होते हैं, न अन्योन्य प्रभावित हैं। एक-दूसरे को न सुख दे सकते हैं, न दुःख। जो तेज हथियार से सिर काटता है, वह किसी को जान से नहीं मारता, केवल सात कायों के बीच एक छेद करता है। मानता है कि योनियों में जन्म लेते हुए दुःख का अन्त करेगा। मानता है कि सुख-दुःख नपे हुए हैं, उनकी निश्चित अवधि होती है, जिसे भुगतना पड़ता है। उसे न कम किया जा सकता है, न अधिक। सूत की गोली की तरह सुख-दुःख आते रहते हैं।

पूर्वान्त, अपरान्त और वर्तमान की दृष्टि – भगवान् ने तीन प्रकार से मिथ्यादृष्टि का वर्णन करते हुए कहा था कि पूर्वान्त के सम्बन्ध में विचार करना कि मैं भूत काल में था, नहीं था? क्या था? कैसा था? क्या होकर क्या हो गया? अपरान्त के सम्बन्ध में विचार करना कि भविष्य में होऊंगा, नहीं होऊंगा? भविष्य में क्या होऊंगा? कैसा होऊंगा? क्या होकर क्या होऊंगा? वर्तमान में संशय करता है कि मैं हूँ, नहीं हूँ? क्या हूँ? कैसा हूँ? मेरा जीव कहां से आया है? कहा जाएगा? इत्यादि क्रमशः पूर्वान्त, अपरान्त और वर्तमान की ये तीन मिथ्यादृष्टियां है।

अव्याकृत- अव्याकृत दस हैं–

१. क्या लोक नित्य हैं?
२. क्या लोक अनित्य है?
३. क्या लोक अन्तवान् है?
४. क्या लोक अनन्त (बिना अन्त वाला) है?
५. क्या जो जीव है वही शरीर है?
६. क्या जीव अन्य है और शरीर अन्य है?
७. क्या मरने के बाद तथागत होते हैं?
८. क्या मरने के बाद तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते हैं?
१०. क्या मरने के बाद तथागत न होते हैं? न नहीं होते हैं?

संयुत्तनिकाय में इन दस अव्याकृत को दृष्टियों के समान ही वर्णित किया है। भगवान् के समय ही चर्चा होती रहती थी कि ये अव्याकृत क्यों कहे गये? उसमें भी तथागत के सम्बन्ध में चार प्रत्ययों की ही अधिक चर्चा होती थी। अव्याकृत कथन का कारण बतलाते हुए भगवान् ने कहा था कि जब रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान नहीं है तो तथागत की सत्यतः उपलब्धि ही नहीं है तब कैसे कहा जा सकता है कि तथागत मरने के बाद कहते हैं, नहीं रहते हैं? रहते भी हैं और नहीं रहते हैं, न रहते हैं न नहीं रहते हैं? इसलिए भगवान् बुद्ध इनका उत्तर नहीं देते हैं।

राजा प्रसेनजित द्वारा पूछने पर कि भगवान् ने तथागत के सम्बन्ध में चार प्रश्नों को अव्याकृत क्यों बतलाया है? खेमा भिक्षुणी उत्तर देती है कि जिस प्रकार गंगा के बालु गणों को संख्या में नहीं गिना जा सकता है एवं समुद्र के जल को तौला नहीं जा सकता क्योंकि वे अथाह हैं, उसी प्रकार तथागत के रूपादि के विषय में है। तथागत इस रूप और उस रूप के विषय से विमुक्त होते हैं। वे भी समुद्र के समान गम्भीर, अप्रमेय एवं अथाह हैं। इसलिए उन्हें अव्याकृत कहा गया है। यही प्रश्न भगवान् से पूछे जाने पर भगवान् ने भी ऐसा ही उत्तर दिया था।

सारिपुत्त से पूछने पर सारिपुत्त ने भी यही उत्तर दिया कि- यह कहना कि तथागत मरने के बाद रहते हैं, नहीं रहते हैं? उत्तर रूपादि के विषय में होगा। चूंकि तथागत रूपादि नहीं है इसलिए भगवान् ने इसे अव्याकृत बतलाया है।[२७]

अव्याकृत क्यों कहा गया है? इसका सबसे अच्छा उत्तर भगवान् ने मज्झिम निकाय में दिया है, जिसमें कहा गया है कि अगर बाण से घायल व्यक्ति इलाज न करवा कर पहले मारने वाले का नाम पूछेगा और इलाज न करायेगा तो वह मर जायेगा, वह जान ही नहीं पायेगा कि किसने मारा? उसी प्रकार अव्याकृत क्यों कहा गया? लोग जान ही नहीं पायेंगे और ब्रह्मचर्यवास पूरा हो जायेगा।[२८]

संयुत्तनिकाय में अव्याकृत प्रश्नों के उत्तर में कहा है कि यह कहना सार्थक नहीं है, भिक्षुचर्या के लिए उपयोगी नहीं है। निर्वेद, निरोध परमज्ञान, निर्वाण के लिए आवश्यक नहीं है। इसलिए उत्तर नहीं दिया गया है।[२६]

संदर्भ-विवरण

१. बौद्ध धर्मः एक बुद्धिवादी अध्ययन-आनन्द कौशल्यायन, पृ. ६६

२. दुक्खे ञाणं, दुक्खसमुदये ञाणं, दुक्खनिरोधे ञाणं, दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय ञाणं- अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि। संयुत्त. ५, पृ. ६

३. वही, पृ. १६, ४, १२६, २, १७, ५, ३५५-४०७

४. 'इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि अरियसच्चानि तथानि अवितथानि अनञ्ञथानि, तस्मा 'अरियसच्चानी' ति वुच्चन्ति। वही ५, पृ. ३७३

५. 'सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय तथागतो अरियो, तस्मा' अरियसच्चानी' ति वुच्चन्ति। -वही ५, पृ. ३७३, ३७६, ५, ३७१

६. "चतुन्नं अरियसच्चानं, यथाभूतं अदस्सना।
संसितं दीघमद्धानं, तासु तास्वेव जातिसु।।
तानि एतानि दिट्ठानि, भवनेत्ति समूहता।
उच्छिन्नं मूलं दुक्खस्स, नत्थिदानि पुनब्भवो"ति।। - वही, पृ. ३७०

७. वही पृ. ३६० एवं महावग्ग, पृ. १३-१६

८. "इमेसु चतूसु अरियसच्चेसु एवं तिपरिवट्टं द्वादसाकारं यथाभूतं ञाणदस्सनं सुविसुद्धं अहोसि, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि- 'अकुप्पा में विमुत्ति, अयमन्तिमा जाति, नत्थिदानि पुनब्भवो"ति। - संयु त्त. ५, पृ. ३६२

९. वही, पृ. ३६६, ३६७, ५, ३७८, ३५५, ३७७, ३८८, ३८३, ३९७, ३९६-४०७, ५, ३५८-५६, ३७४, ३७२, ३७५, ३७६, ३७०, ३६०, २२, २७-२६

१०. 'हेतुरत्र समुत्पादः समुत्पन्नं फलं मतम्।' - अभि. को. भा. ३/२८ पृ. १३६

११. 'त्रैविधिका सर्वे संस्कृता धर्माः प्रतीत्यसमुत्पादः।
अतएव च प्रतीत्यसमुत्पन्नः इति न कश्चिद्विशेषः।।
- अभि. को. ३/२७ पृ. ४४४, अभिधर्म देशना, पृ. १२५ से उद्धृत

१२. विसुद्धि. ३, पृ. ११६२

१३. माध्यमिक वृत्ति, पृ. ६, मध्यमक शास्त्र, पृ. २, दृष्टव्य- बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ. १२६

१४. पटिमुख मितो ति वुत्तो हेतु समूहो अयं पटिच्चेति।
सहिते उप्पादेति च इति वुत्तो सो समुप्पादो।।' विसुद्धि. ३, पृ. ११८३

१५. संयुत्त. २, पृ. ६६, २, ४, ६, २, ४

१६. विसुद्धि. ३, पृ. १२०१, २, पृ. ४८

१७. संयुत्त.२, पृ. ११, ३, ६-११ ५६, ५७, ६१, ७४-७५, २, ५२, १४, ६२, ११२-१३, ९८-१०१,

१८. विसुद्धि. ३, पृ. ११७४-११७५

१९. विशुद्धिमार्ग (हिन्दी) भाग २, पृ. १३०

२०. 'उत्पादा वा तथागतानं अनुप्पादा वा तथागतानं, ठिता व सा धातु धम्मट्ठितता धम्मनियामता इदप्पच्चयता। तं तथागतो अभिसम्बुज्झति अभिसमेति। संयुत्त. २, पृ. २४

२१. वही, २, पृ. ६, ८६, २, पृ. ११, १, पृ. १३७, २, पृ. ७६, २, पृ. ४३, पृ. ५८, पृ. ३८, पृ. ३९, ४०

२२. "इतो वहिद्धा पासण्डा, दिट्ठसु पसीदन्ति ते। न तेसं धम्मं रोचेमि, तं धम्मस्स अकोविदा।।
संयुत्त. १, पृ. १३४

२३. द्रष्टव्य-
'फल हेत्ववयवादी यः सा मिथ्यादृष्टि रुच्यते। अभि. दी. का, पृ. २७०
'हेतुं वा फलं वा क्रियां वा सद्वा वस्तु नाशयतः या दृष्टिः।
मंतिरित्येवमादि स मिथ्यादृष्टिरित्युच्यते।। अभि. वृ., पृ. १६४
'शुभे चाशुभे च कर्मणि या नास्तीति दृष्टिः सा मिथ्यादृष्टिः। तद्यथा नास्ति दत्तं नास्तीष्टं नास्ति हुतं नास्ति सुचरितं नास्ति दुश्चरितनित्येवमादि यावन्न सन्ति लोकेऽर्हन्त इति। सैषा साकल्येन कर्मफलायार्सवादिका मिथ्यादृष्टिर्भवति।
– अभि. को. भा., पृ. २४७
'सति दुःखादि सत्ये नास्तीति दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिः। सर्वेव हि विपरीतस्वभाव प्रवृत्ता दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिः।
वही, पृ. २८२
'यथा मुच्च गहणा भावेन मिच्छा पस्सतीति मिच्छादिट्ठि। अट्ठ. ३/१५६ पृ. ८३
'मिच्छा विपरीत तो पस्सतीति मिच्छादिट्ठि। विभा., पृ. १३२
–अभिधर्मदेशना पृ. २६५ से उद्धृत

२४. दीघ. १, पृ. १२-४०
"इमं धम्मपरियायं अत्थजालं ति पि नं धारेहि, धम्मजालं
ति पि नं धारेहि, ब्रह्मजालं ति पि नं धारेहि, दिट्ठिजालं ति"
"पि नं धारेहि, अनुत्तरो संगामविजयो ति पि नं धारेहि" ति।। वही, पृ. ४०

२५. संयुत्त. ४, पृ. २५५
'अथ सट्ठिनिसिता सवितक्का, पृथूजनताय अधम्मा निविट्ठा।'
वही, १, पृ. १८६, ४, पृ. २५५, ३, पृ. ४३१-५३, ३, पृ. ४३५

२६. 'सत्तिया विय ओमट्ठो, डयूहमानो व मत्थके।
कामरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे" ति।। -वही, १, पृ. १४

७८. संयुत्त. ४, पृ. २५५, ३, पृ. ४१४, पृ. ४१६, पृ. ४१६, १७, पृ. ४१७-१८, ३, पृ. ४१८, १६, २, पृ. १७, पृ. १८, पृ. २१,पृ. ६४-६५, ३, पृ. ३१८, ३, पृ. ४२०, पृ. ४२२, पृ. ४२३, ३, पृ. ३३५, २, पृ. ४२५, ४२६, ३, पृ. ४१४-४३८, पृ. ३३, पृ. ३२६, ३, पृ. ३२६, ४, पृ. ३२१-३२६

२८. मज्झिमनिकाय (हिन्दी) पृ. २५४

२९. संयुत्त. ५, पृ. ३५८-५६

• • • •

भगवान बुद्ध के अव्याकृत प्रश्न

भगवान बुद्ध ने कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों को अव्याकृत की कोटि में रखा था। अव्याकृत का अर्थ अकथनीय है, जो व्याकृत नहीं है वह अव्याकृत है। भगवान ने कुछ प्रश्नों को अव्याकृत क्यों कहा ? इस पर कई तरह की आशंकाएं व्यक्त की जाती रही हैं। इसमें कोई रहस्यात्मक देखता है तो कोई अज्ञान। भगवान् बुद्ध के समय भी ये प्रश्न उठते थे कि इन प्रश्नों को अव्याकृत क्यों कहा गया। पालि निकायों में ऐसे विभिन्न प्रसंग मिलते हैं जिससे अव्याकृत के सन्दर्भ में भगवान बुद्ध का वास्तविक मन्तव्य का पता चलता है। पालि ग्रन्थों में अव्याकृत प्रश्नों के अन्तर्गत दस प्रश्नों की गणना की गई है एवं महायानी ग्रन्थों में चौदह। अव्याकृत के आधार पर और भी कई प्रश्न थोप दिए जाते हैं जबकि अव्याकृत प्रश्नों की संख्या सीमित है। कुल चौदह अव्याकृत प्रश्न इस प्रकार हैं।[1]

१. क्या लोक शाश्वत है ?
२. क्या लोक अशाश्वत है ?
३. क्या लोक शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है ?
४. क्या न लोक शाश्वत है और न अशाश्वत है ?
५. क्या लोक अन्तवान है ?
६. क्या लोक बिना अन्त वाला है ?
७. क्या लोक अन्तवान भी और बिना अन्त वाला भी है ?
८. क्या लोक न अन्त वाला है और न बिना अन्त वाला है ?
९. क्या जो जीव है, वही शरीर है ?
१०. क्या जीव अन्य है और शरीर अन्य है ?
११. क्या मरने के बाद तथागत होते हैं ?
१२. क्या मरने के बाद तथागत नही होते हैं ?
१३. क्या मरने के बाद तथागत होते भी हैं, न नहीं होते हैं ?
१४. क्या मरने के बाद न होते हैं, न नहीं होते हैं ?

पालि ग्रन्थों में दस प्रश्न ही हैं,[२] उपर्युक्त में से संख्या नं. ३, ४ एवं ७, ८ नहीं हैं लेकिन इसमें कोई सैद्धान्तिक मतभेद दृष्टिगत नहीं होता बल्कि पालि ग्रन्थों में चतुष्कोटि प्रश्नों की तीसरी एवं चौथी कोटि नहीं हैं।

तथागत से सम्बन्धित प्रश्न- अव्याकृत प्रश्नों के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि इसमें तथागत से सम्बन्धित चार प्रश्नों की ही चर्चा अधिक होती थी। भगवान से पूछे जाने पर कि तथागत से सम्बन्धित प्रश्नों को अव्याकृत क्यों कहा गया ? भगवान उत्तर देते हैं,

चूंकि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान नहीं है तो तथागत की सत्यतः उपलब्धि ही नहीं है तब कैसे कहा जा सकता है कि तथागत मरने के बाद रहते हैं, नहीं रहते हैं, न रहते हैं, न नहीं रहते हैं? इसलिए भगवान बुद्ध इन प्रश्नों से अन्यत्र दुःख एवं उसके निरोध का प्रतिपादन करते हैं।[३] इसी प्रश्न का उत्तर खेमा भिक्षुणी इस तरह से देती हैं कि जिसप्रकार गंगा के बालुकणों को संख्या में गिना नहीं जा सकता है एवं संमुद्र के जल को तौला नही जा सकता है क्योंकि वह अथाह है उसी प्रकार तथागत के रूपादि के विषय में है।[४] खेमा भिक्षुणी के इस उत्तर में तथागत के प्रति भक्तिभाव दर्शित होता है।
लोक से सम्बन्धित प्रश्न– अव्याकृत प्रश्नों में लोक की नित्यता से सम्बन्धित चार एवं लोक के अन्त के सम्बन्ध में चार कुल आठ प्रश्न है। इस सन्दर्भ में आवश्यक है घि लोक के सन्दर्भ में भगवान बुद्ध का मन्तव्य जाना जाय। भगवान् ने लोक संज्ञा का अर्थ लुज्जित होने से बतलाया था। चक्षु, रूप, चक्षुविज्ञान, चक्षुसंस्पर्श, चक्षुवेदना एवं श्रोतादि लुज्जित होते हैं। आर्यविनय में इसी प्रलोकधर्मा नाशवान होने से लोक ऐसा कहा जाता है।[५] लोक को शून्य कहा गया है। यह आत्मा या आत्मीय से शून्य है।[६] भगवान से पूछा गया कि क्या लोक का अन्त जाना या देखा जा सकता है? जहाँ न कोई जन्मता है, न मरता है ? शरीर को छोड़कर फिर उत्पन्न नहीं होता? भगवान ने कहा कि वे उक्त प्रकार से नहीं बतलाते अपितु ऐसा बतलाते हैं कि लोक के अन्त को पाए बिना दुःखों का अन्त करना सम्भव नहीं है किन्तु इस व्योम भर संज्ञा धारण करने वाले शरीर में लोक की उत्पत्ति एवं निरोधगामी मार्ग विद्यमान है।[७] लोक के सम्बन्ध में एक देवदूत कहता है कि वह यह देखने के लिए कि लोक को चलकर जान लेगा कई वर्ष बिना खाए चलता रहा, लेकिन मर गया और लोक के अन्त को जान नहीं पाया, उसीप्रकार इन प्रश्नों के सम्बन्ध में है कि इन प्रश्नों का उत्तर जान ही नहीं पाएगा और ब्रह्मचर्यवास पूरा हो जायेगा।[८]
जीव और शरीर से सम्बन्धित प्रश्न– अव्याकृत प्रश्नों में जीव और शरीर से सम्बन्धित दो प्रश्न है– जो जीव है वही शरीर है या अन्य है? इस सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है कि भगवान बुद्ध ने पाँच स्कन्धों में ही शरीर का प्रतिपादन किया था। भगवान बुद्ध ने आत्मा की सत्ता स्वीकार नहीं की थी। आत्मा के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार से विचार करने को सत्कायदृष्टि कहा गया है। इसे सभी मिथ्यादृष्टियों का मूल कारण कहा गया है तथा सलाह दी गई है कि स्मृतिवान रहते हुए सत्कायदृष्टि का प्रहाण करना चाहिए। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को आत्मा समझने से सत्कायदृष्टि उत्पन्न होती है।[९]

भगवान बुद्ध का प्रमुख सिद्धांत ही था– अनित्य, दुःख, अनात्म। सभी उपादान स्कन्ध एवं आयतन नष्टवान होने से अनित्य, अनित्य होने के कारण दुःख एवं दुःख के कारण अनात्म कहे गए हैं।[१०] यह सिद्धांत उपनिषद के वाक्य सच्चिदानन्द का ठीक उल्टा है।

समीक्षा- अव्याकृत एवं दृष्टियां- संयुत्तनिकाय में अव्याकृत के अन्तर्गत आगत प्रश्नों को दृष्टियों के साथ गिनाया गया है।[११] दृष्टियों के अन्तर्गत तीन प्रकार के प्रश्न समाहित थे। पूर्वान्त एवं अपरान्त के सम्बन्ध में विचार करना है कि मैं भूतकाल में था, नहीं था, क्या था, कैसा था, क्या होकर क्या हो गया। अपरान्त के सम्बन्ध में विचार करना कि भविष्य में हुआ, नहीं हुआ? भविष्य में क्या हुआ ? वर्तमान में संशय करना कि मैं हूँ? नहीं हूँ? कैसा हूँ मेरा जीव कहाँ से आया है? कहाँ जाएगा? इत्यादि।[१२] भगवान बुद्ध ने इन दृष्टियों को छोड़ने की सलाह दी थी।

शाश्वत एवं उच्छेदवाद- इन दोनों में मिथ्यादृष्टियों का सार है। भगवान बुद्ध का मध्यममार्ग दो अतियों के त्यागपूर्वक है। धर्म में दो अतियां-काम सुख एवं कठोर तपस्या है तथा दर्शन के क्षेत्र में दो अतियां शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद है। इसी तरह सभी कुछ विद्यमान है? सभी कुछ नहीं है?[१३] दुःख स्वयं किया होता है या दूसरे का किया होता है- ये दोनों अन्त हैं।[१४] जो वेदना है वही अनुभूति कराने वाला है या दूसरा अनुभूति कराने वाला है?[१५] जो करता है वही भोगता है या दूसरा भोगता है।[१६] ये सब ऐकान्तिक प्रश्न हैं।

सही प्रश्नों का उत्तर- श्रोता चाहे जिस प्रकार से प्रश्न पूछे भगवान् अनुपयोगी बात को छोड़कर उपयोगी एवं सुलझी हुई बात कहते थे। भगवान स्पष्ट कह देते थे कि प्रश्न पूछने का यह ढंग ठीक नहीं है भगवान से पूछे जाने पर कि विज्ञान का कौन आहार करता है? भगवान ने कहा कि यह प्रश्न ही गलत है, क्योंकि वे ऐसा नहीं कहते कि कोई आहार करता है। प्रश्न उपयुक्त यह होना चाहिए कि विज्ञान आहार से क्या होता है? जिसका उत्तर यह है कि विज्ञान आहार आगे पुनर्जन्म का हेतु है।[१७] दुःख के सम्बन्ध में पूछे जाने पर कि दुःख स्वयं किया होता है या दूसरे का किया होता है। भगवान् दोनों प्रश्नों के दो अन्त बतलाते हुए दुःख क्यों होता है इसका उत्तर देते हैं।[१८] यही बात अव्याकृत प्रश्नों के सन्दर्भ में थी। भगवान् ने कहा कि इनका कहना सार्थक नहीं है, भिक्षुचर्या के लिए उपयोगी नहीं है। निर्वेद, निरोध, परमज्ञान और निर्वाण के लिए आवश्यक नहीं है। इसलिए इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया गया। जिनका कहना सार्थक था कहा गया ।[१९] 'मज्झिम निकाय' में कहा गया है कि जिस प्रकार बाण से घायल व्यक्ति इलाज न करवाकर पहले मारने वाले का नाम पूछेगा तो वह मर जाएगा और वह जान ही नहीं पाएगा कि बाण किसने मारा? उसी प्रकार अव्याकृत से सम्बन्धित प्रश्न है कि लोग इन प्रश्नों का उत्तर जान ही नहीं पाएंगे और ब्रह्मचर्म वास पूरा हो जाएगा।[२०]

आचार्यमुष्टि नहीं- भगवान् बुद्ध ने धर्म कथन में कोई आचार्य मुष्टि रहस्यात्मकता या गोपनीयता नहीं रखी थी। 'महापरिनिब्बाणसुत्त' में स्पष्ट कहा गया है कि धर्मों में तथागत की कोई आचार्यमुष्टि नहीं है।[२१] भगवान् ने तथागत बुद्ध आदि के सन्दर्भ में भी कोई

गोपनीयता नहीं रखी थी। बुद्धत्व प्राप्ति एवं पारमिताओं आदि का विस्तृत विवरण मिलता है।[२२] भगवान् बुद्ध कई प्रकार से आवश्यक प्रश्नों का समाधान किया करते थे।[२३] उन्हें विभज्यवादी कहा जाता था। उनके उत्तर देने के चार प्रकारों का पता चलता है- **'एकंस व्याकरणीय, पटिपुच्छाव्याकरणीय, ठापनीय एवं विभज्यकरणीय'**। परवर्ती बौद्ध साहित्य में परमार्थ तत्व को वाचावाच्यम और अनक्षर धर्म श्रुति कहा है। चन्द्रकीर्ति ने परमार्थ को **'आर्याणां तूष्णी भव'** कहा तथा 'लंकावतार सूत्र' में तथागत को सदैव मौन बतलाया गया है।[२४]

भगवान् बुद्ध ने अव्याकृत कथन दार्शनिक उलझनों से हटकर आध्यात्मिक शान्ति की दृष्टि से किया, परन्तु उत्तर काल में मूल सिद्धान्त परिवर्तित होते रहे। भगवान् बुद्ध का मन्तव्य तो यही था कि इनका कहना सार्थक नही है, भिक्षुचर्या के लिए उपयोगी नहीं है, निर्वेद निरोध, परमज्ञान और निर्वाण के लिए आवश्यक नहीं है। इसलिए इन प्रश्नों को अव्याकृत की कोटि में रखा गया।

संदर्भ-विवरण

१. प्रसन्नपदा आफ चन्द्रकीर्ति
२. संयुत्तनिकाय-भाग १, पृ. ३२६, सं. भिक्षु जगदीश काश्यप, नवनालन्दामहाविहार, सन् १९५९
३. वही भाग ४, पृ. ३२८
४. वही भाग ३, पृ. ३२६
५. वही भाग ४, पृ. ५०
६. वही भग ४, पृ. ५०
७. वही भाग १, पृ. ५९-६०
८. वही।
९. संयुत्तनिकाय, भाग ४, पृ. २५५, वही १, पृ. २४, वही ४, पृ. २५५
१०. वही भाग ३. पृ. २७६
११. दृष्टि संयुत्त-संयुत्तनिकाय।
१२. संयुत्त भाग ३, पृ. ३३५
१३. वही भाग २, पृ. १७
१४. वही भााग ३, पृ. १८
१५. वही २, पृ. २१
१६. वही पृ. ६४-६५
१७. वही २, पृ. १४
१८. वही पृ. २२
१९. वही ४, पृ.३२७
२०. मज्झिमनिकाय
२१. दीघनिकाय, महापरिनिब्बाणसुत्त
२२. अनेकंसिका पि मया धम्मा देसिता पञ्ञता-दीघनिकाय ९-४-१९
२३. पातिमोक्ख-स. डा. भागचन्द्र जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर। भूमिका, पृ. ३७

• • • •

पालि साहित्य में पारमिता

बौद्ध परम्परा में पारमिताओं का विशेष महत्त्व है। बुद्धकारक धर्मों को पारमी या परमिता कहा गया है। बुद्धत्व प्राप्ति हेतु ये साधनाभूत हैं। पारमिता का अर्थ पार चला जाना (पारं इता) अथवा पराकाष्ठा को प्राप्त करना है। बुद्धत्व प्राप्ति के लिए दशधर्मों का पालन अत्यावश्यक है। इन्हें धर्मविशेष की परिपूर्ति का परमभाव भी कहा जा सकता है।[१]

पारमिता- दान, शील, शान्ति आदि किसी भी पारमिता की पूर्ति के समय जब बोधिसत्व द्वारा अपने शरीर के प्रिय से प्रिय अंग के परित्याग तथा उसका चरम लक्ष्य दर्शाया जाता हे, तो उस परिपूरणभाव को पारमिता कहा जाता है जिससे ऐसे परिपूर्ण उत्सर्ग, दान शीलादि दशों परमिताओं के क्षेत्र में देखा जा सकता है, इसलिए दस पारमितायें हैं।

उपपारमिता- जब किसी भी पारमिता की प्रतिपूर्ति बाह्य वस्तुओं के परित्यागपूर्वक उस गुण विशेष के चरम भाव को प्राप्त होती है, तो वह उप पारमिता कहलाती है, ऐसे कार्यों का सम्बन्ध दान, शीलादि सभी पारमिताओं के साथ है अतः पारमिताएं भी दस हैं।

परमार्थ पारमिता- परमार्थ पारमिता का अभिहित जीवन पारित्याग पुरस्सर कोटिनिष्ट कार्यों से है। जब बोधिसत्व ने दानादि के परिपाचन में जीवन परित्याग द्वारा चरमोत्कर्षता दर्शायी है, तो उन परमभावोपगत गुणविशेष को परमार्थ कहा गया है।

जातकों में परमार्थ पारमिता का विशिष्ट स्थान देखा जाता है वस्तु तथा अंग का त्याग कुछ क्षणों के लिए पुरुषों में अधिकांशतः देखा जाता है, पर जीवन का त्याग कुछ ही के द्वारा संभव है अतः वस्तु तथा अंग के त्याग की तुलना में जीवन का परित्याग महान त्याग समझा जा सकता है। जातक कथाओं से स्पष्ट है कि बोधिसत्व की चर्चाओं में परमार्थ पारमिता का ही बाहुल्य है। ससजातक में अभ्यागत ब्राह्मण के लिए बोधिसत्व द्वारा शरीर के त्याग को परमार्थ पारमिता कहा गया है।[२]

पारमिता कथन खुद्दकनिकाय के बुद्धवंस में सारिपुत्र के प्रश्न के रूप में आता है। भगवान बुद्ध को प्रसन्न जानकर सारिपुत्र ने पारसी-पूरण वृतान्त को उनसे जाने के उद्देश्य से पूछा था कि हे भगवान! आपके द्वारा (दान, शील, निष्क्रम्य, प्रज्ञा, वीर्य, शान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा) दस पारमिताओं, दस उपपारमिताओं तथा दस परमार्थ पारमिताओं का परिपूरण किस प्रकार किया गया।[३] इसी प्रश्न के विसर्जन स्वरूप भगवान ने अतीत के बुद्धों की तथा अपनी पूर्वकथा कही तथा उसी क्रम में पारमिताओं का आख्यान किया।[४] लेकिन पारमिताओं का विस्तार से सुव्यवस्थित वर्णन जातक की अट्ठकथा की निदान कथा में मिलता है।[५] जिसके लेखक आचार्य बुद्धघोष हैं।[६]

१. दान पारमिता-

बौद्ध धर्म में कुशल एवं कुशल कर्मों का बहुविध विवेचन है। कुशल कर्मों के उद्देश्य क्रम में सर्वत्र दान का नाम आता है। दान, शील भावना आदि रूपों में कुशल कर्मों की चर्चा की जाती है।[७] कर्म वस्तुतः चेतना का नाम है फलतः दान को परित्याग चेतना कहा जा सकता है।[८] इसे कार्यद्वार से उत्पन्न होने पर कुशल काय कर्म, वचीद्वार से उत्पन्न होने पर कुशल मनो कर्म कहा जा सकता है।[९] उत्तम कोटि का दान वह है, जिसे सम्पादन क्षण में चित्त सौमनस्य ज्ञान तथा तीन कुशल हेतु अलोभ, अद्वेष तथा अमोह से युक्त रहता है। अभिधर्म में इसकी चर्चा प्रथम कामावचर कुशल चित्त शीर्ष में की जाती है।[१०]

दान पारमिता की पूर्ति के लिए बोधिसत्व की क्रिया उस उलटे जलयुक्त घड़े के समान होती है जो अपने को रिक्त करते हुए सम्पूर्ण जल का त्याग कर देता है। जिस प्रकार घट जल देकर पुनः लेने की आशा नहीं रखता, उसी प्रकार दान पारमिता की प्राप्ति की लालसा से दूर रहते हुए भी स्वतः प्राप्त हो जाती है। जातक की कथाओं से बोधिसत्व की सहज भावना से दानकृत्य का परिचय मिलता है। उदाहरणार्थ- अकीर्ति ब्राह्मण[११], संखब्राह्मण[१२], राजा शिवि[१३] आदि के रूप में दिए गये दान का पारमिता पूर्ति हेतु वर्णनीय है। सबसे प्रमुख तो सस जातक है जहाँ बोधिसत्व ने द्वार पर आए याचक को अन्य देय पदार्थ को योग्य न पाकर अपने शश शरीर को ही दान कर दिया-

न ससस्स तिला अत्थि, न मुग्गा नापि तण्डुला।
इमिना अग्गिना पक्कं, ममं भुत्वा वने वसे"ति।।

इस प्रकार अपने को ही दान देने के कारण दान परमार्थ पारमिता कहलाई गई-

भिक्खाय उपगतं दिस्वा, सकत्तानं परिच्चजिं।
दानेन मे समो नत्थी, एसा मे दान पारमी"ति।।

२. शील-पारमिता-

बौद्ध साधना का आधार शील है। शील की ही भित्ति पर ब्रह्मचर्य का पालन होता है। जिस प्रकार बहुविधबीज पृथ्वी के सहारे बढ़ते हैं, उसी प्रकार श्रद्धा, स्मृति, बल, बोध्यंग आदि कुशलधर्म शील से विकसित होते है। इसलिए यह कहा गया है **'सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो'** शील अभ्यास के बिना कुलपुत्रों का साधना में प्रतिष्ठा नहीं हो सकती- **"सासने कुलपुत्तानं पतिट्ठा नत्थि विना"**। जिस प्रकार टिटहरी अपने अण्डे की, चमरी गाय अपनी पूंछ की, माता इलकौते प्रिय पुत्र की तथा काना पुरुष अपनी एकमात्र आँख की रक्षा करता है उसी तरह बौद्ध साधक को शील की रक्षा करनी चाहिए।[१४]

शील की व्याख्या अनेक प्रकार से की जाती है- पंचशील, अट्ठशील, दस शील, इन्द्रिय संवर शील और आहारपरिसुद्धि शील, पातिमोक्ख संवर शील आदि। जातक में

शील का पालन एक पारमिता के रूप में देखा जाता है जैसे सीलव- नागर राजा चम्पाय्य नागराज। चरियापिटक का निम्न वचन शील भावना का परिचायक है कि-

सूलेहि विज्झयन्तेपि, कोट्टयन्तेपि सत्तिहि।
भोजपुत्ते न कुप्पामि, एसा मे सीलपारमी''ति।।

नैष्क्रम्य पारमिता-

'नेक्खम्म' शब्द नैष्क्रम्य तथा निष्क्राम्य दोनों अर्थों का द्योतक है। भगवान बुद्ध की देशना विशेषतः वैराग्यपरक है। जिस प्रकार बहुत दिनों तक बन्धनागर में रहता हुआ भी मनुष्य उस बन्धागार के प्रति स्नेह नही करता है, सर्वदा उससे सन्तुष्ट रह उससे निकलना ही चाहता है, उसी प्रकार सभी भवों को बन्धागारवत् जानकर, सभी योनियों से मुक्त होने के लिए उत्कंठित हो नैष्क्रम्याभिमुखं होना चाहिए।[१७] ऐसी प्रवृत्ति की परमभाव प्राप्ति ही नैष्क्रम्य पारमिता है। चूलसुतसोमजातक[१८] के विवरण से स्पष्ट है कि बोधिसत्व ने अपने विशाल राज्य को थूक के समान त्यागते हुए उसके प्रति तनिक भी आसक्ति न दिखलायी। फलतः उनका यह नैष्क्रम्य परमभाव प्राप्त कृत्य परमार्थ पारमिता कहलायी-

महारज्जं हत्थगतं, खेलपिण्डं च छड्डयिं।
चजतो न होति लगनं, ऐसा मे नेक्खम्मपारमी''ति।।

प्रज्ञापारमिता-

बौद्ध साधना के तीन पाद हैं, जिन्हें शील, समाधि तथा प्रज्ञा कहा जाता है। इसमें प्रज्ञा उस ज्ञानविशेष का नाम है जिसके सहारे संसार की वस्तुओं के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान तथा निर्वाण का साक्षात्कार होता है। प्रज्ञा के उदय होने से मनुष्य इस सत्य को स्पष्टतः जान लेता है कि सभी पदार्थ अनित्य, अनात्म और दुःखस्वरूप हैं- ऐसा जानने से वह समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।[१९] इसे कुशल चित्त सम्प्रयुक्त विपश्यना ज्ञान भी कहा जाता है।[२०] ऐसे ज्ञान की चरमोपलब्धि ही प्रज्ञा पारमिता है।

अनेक कथाओं में प्रज्ञा के परिपालन की चर्चा है। महायान परम्परा का प्रज्ञा पारमितासूत्र नामक वैपुल्य सूत्र ग्रन्थ इसकी महनीयता का स्पष्ट उदाहरण है। सोनक पण्डित[२१] के रूप में उन्होंने प्रज्ञा की खोज करते हुए एतद् विषयक कृत्यों से ब्राह्मण को दुःख से मुक्त करते हुए इसे परमार्थ पारमिता के रूप में दर्शाया है। इसे लक्ष्य करते हुए निदानकथाकार ने लिखा है-

पञ्ञाय विचिनन्तोहं, ब्राह्मणं मोचयिं दुखा।
पञ्ञाय मे समो नत्थि, एसा में पञ्ञापारमी।।

वीर्य पारमिता- सत्कर्मों के सम्यक् समपादन के लिए पाँच गुण अपेक्षित हैं। वे हैं- श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञा। श्रद्धा द्वारा विश्वास, वीर्य द्वारा उत्साह, समाधि द्वारा

एकाग्रता तथा प्रज्ञा द्वारा ज्ञान की वृद्धि होती है। जैसे स्वादिष्ट भोजन में नमक का महत्त्व है। वैसे ही इन सबमें स्मृति जागरूकता के रूप में विद्यमान रहती है। वीर्य शक्ति का पर्याय है। वीर्य के कारण ही कार्यों में प्रवृत्ति होती है। जिस प्रकार मृगराज सिंह सभी अवस्थाओं में दृढ़ उत्साह सम्पन्न रहता है उसी प्रकार वीर्य पारमिता की परिपूर्ति में लगे प्राणी द्वारा सभी योनियों तथा अवस्थाओं में दृढ़ उत्साह उद्योग तथा वीर्य सम्पन्न होना चाहिए।[२२] महाजनक जातक[२३] में वीर्य पारमिता का भलीभाँति प्रयोग हुआ है।

क्षान्तिपारमिता-

क्षान्ति का अर्थ है- सहनशीलता समान तथा अपमान की उपस्थिति क्षण में समस्थिति बनाए रखना सहनशीलता है। इसकी उपमा पृथ्वी से दी गयी है। जिस प्रकार पृथ्वी शुद्ध या अपवित्र वस्तुओं को फेंके जाने पर न तो शुद्ध वस्तु के फेंकने वाले के प्रति स्नेह करती है, न अपवित्र वस्तु के फेकने वाले के प्रति द्वेष की भावना ही रखती है। वह उनके प्रति क्षमा का भाव प्रदर्शित करते हुए सबको सहन करती है, सबको समभाव से स्वीकार करती है। इसका विशद रूप क्षान्तिवाद-जातक में देखने को मिलता है। तेज परशु से काटे जाने पर बोधिसत्व को बिल्कुल भी क्रोध न आया।[२५] इस परम भाव के कारण ही यह पारमिता क्षान्ति परमार्थ पारमिता कहलायी।

सत्य पारमिता-

यथार्थ को यथार्थ, तथ को तथ रूप में व्यक्त करना ही सत्य है। भगवान बुद्ध इसीलिए तथागत कहलाते हैं। जो घटना जिस रूप में घटित हो, उसे उसी रूप में कथन करना सत्य हैं भगवान बुद्ध ने शिक्षापदों का[२६] उल्लेख करते हुए चतुर्थशिक्षापद के रूप में असत्य भाषण से विरत रहने का उपदेश दिया। संसार के दुःखों से दूर रहने के लिए जिन चार धर्मों का कथन किया उसमें सत्य प्रथम है।[२७] जो सत्य पालन में अडिग रहे उनका परमभाव ही सत्य परमार्थ पारमिता कहलायी। सुतसोमक जातक के अनुसार बोधिसत्व ने अपने प्राणों का त्यागना उचित समझा किन्तु सत्य पर अडिग रहे। सत्य का सभी धर्मों में पालन हुआ है।

अधिष्ठान पारमिता-

अधिष्ठान का अर्थ दृढ़निश्चय है। सत्कर्म के प्रतिपादन में दृढ़ निश्चय का होना परमावश्यक है। जिस प्रकार पर्वत अडिग रहता है उसी प्रकार लक्ष्य विनिश्चय के प्रति अडिग तथा अचल रह कर ही अभीप्सित पदार्थ की प्राप्ति की जा सकती है। इसे ही अधिष्ठान पारमिता कहा गया हैं बोधिसत्व का ऐसा अधिष्ठानबोधिमण्डाभिरोहण के क्षण में देखा जाता है। जब वे कह उठते हैं भले ही मेरा चमड़ा, हड्डियां सूख जाय, पर सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के बिना इस आसन को नहीं छोडूंगा। इस प्रकार सौ वज्रों के पात से भी नहीं टूटने वाले अपराजित आसन पर बैठे।

मैत्री पारमिता-

अद्वेषचित्त का नाम मैत्री है। इसे परहित चिन्ता भी कहा जा सकता है। यह मातृहृदय का वह समान गुण है, जिसके कारण वह अपने सभी पुत्रों के प्रति स्वभावतः मंगलकामना करती है। हित और अहित दोनों के प्रति एक चित्तता का भाव रखती है- **'हितेसु अहितेसु पि एक चित्ते भवेय्यासि'** जिस प्रकार पापी और पुण्यात्मा दोनों के प्रति जल एक भाव रखता है, दोनों को शीतलता प्रदान करता है, उसी प्रकार हित तथा अहित करने वाले समस्त प्राणियों के प्रति हित की भावना रखना मैत्री है- **'सुखिनो व खेमिनो होन्तु, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता।'** चार ब्रह्मविहार में इसकी गणना की जाती है। बोधिसत्व की वह वाणी अभय विहार का द्योतन करती है कि न मुझे कोई डराता है, न मैं किसी से डरता हूँ। मैं मैत्रीबल में आश्रित हो सर्वदा वन में विचरण करता हूँ? विशुद्धिमग्ग के नवम परिच्छेद में मैत्री पारमिता का विस्तार से उल्लेख मिलता है।

उपेक्षा पारमिता-

उपेक्षा से अभिप्राय माध्यस्थ भाव से है। अदुःख, असुख-भाव का नाम उपेक्षा है। सुख, दुःख, सौमनस्य, दौमनस्य तथा उपेक्षा नामक पाँच वेदनीय होती हैं- कायिक आनन्द को सुख, कायिक पीड़ा को दुःख, मानसिक सुख को सौमनस्य, मानसिक दुःख को दौर्मनस्य तथा मानसिक दुःख सुखभाव की अपेक्षा नहीं करते हैं। इसे सत्त्वों के प्रति माध्यस्थाकार प्रवृत्ति लक्षण युक्त बतलाया है।[३०] जिस प्रकार पृथ्वी शुचि तथा अशुचि के फेंके जाने पर माध्यस्थ ही बनी रहती है। उसी प्रकार सुख-दुःख की अवस्थाओं के प्रति तटस्थ बने रहना ही इष्ट बतलाया गया है। इस गुण के इस रूप में परमभाव को प्राप्त होना ही उपेक्षा पारमिता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पालि साहित्य में पारमिताओं का विस्तार से वर्णन मिलता है। जिस प्रकार जैन परम्परा में तीर्थंकरत्व प्राप्ति के लिए सोलहकारण भावनाएं आदि अपेक्षित हैं उसी प्रकार बुद्धत्व प्राप्ति हेतु दस पारमिताओं का परिपालन वांछनीय है। दस पारमिताओं एवं जैन परम्परा के धर्मों में बहुत साम्यता है।[३१] दस पारमिताओं का समावेश अष्टांगिक मार्ग में सुगमता से देखा जा सकता है, जो तथागत की आदि देशना का प्रतिपाद्य विषय है। पूर्व ग्रन्थों में छः दस पारमिताओं का उल्लेख है और परवर्ती ग्रन्थों में छः पारमिताओं का[३२] छः पारमिताओं में ही इस पारमिताओं का अन्तर्भाव किया गया है। आर्य असंग ने भी महायान सूत्रालंकार में छः पारमिताओं का अधिशील, अधिचित्त, अधिप्रज्ञा तथा सर्वसहायक नामक चार वर्गों में विभाजन किया है यथा-

इस प्रकार स्थविरवाद के अनुसार दस, महायान के अनुसार छः तथा दशभूमिक सूत्र के अनुसार दस पारमिताओं की संख्या है। वस्तुतः पारमिताएं त्याग पर आधारित हैं। दृष्टि भेद से छ-दस भेद हो सकते हो, पर सबके मूल में त्याग की प्रधानता है। त्याग बहुमुखी हो सकता है, पर पारमिता परम्परा में वह केवल तीन भागों में विभक्त है।

१. वस्तु के अंतर्गत अन्न, पान, धन, रजत, सुवर्ण, गेह, रथ आदि।

२. अंग परित्याग से अभिप्राय शरीर में हस्त पाद, चक्षु आदि किसी भी अंग का त्याग है।

३. जीवन का उत्सर्ग ही जीवन परित्याग है।

इन त्रिविध त्याग का वर्णन जातक की कथाओं में उपलब्ध है। कुछ ऐसी कथाएं हैं, जहाँ विशेषतः वस्तु त्याग का वर्णन है, कहीं अंग त्याग तो कहीं जीवनोत्सर्ग का वर्णन है। इस त्याग के विषयगत, भेद के कारण पारमिताओं के तीन भेद देखे जाते हैं।

१. पारमिता, २. उपपारमिता, ३. परमार्थपारमिता

जातक अट्ठकथा से यह स्पष्ट होता है कि इन्हीं के पारिपाचन स्वरूप भगवान ने बुद्धत्व प्राप्ति की। पारमिताओं के कथन क्रम एवं परिपालन क्रम में अन्तर उपस्थित होता है। बोधिसत्व ने दृढ़ता के साथ अधिष्ठान करते हुए पुनः पुनः अनुचिन्तन कर अनुलोम प्रतिलोम क्रम से उनके ज्ञान को दृढ़ किया। वे अन्त से आरम्भ कर आदि तक पहुँचते थे, आदि से लेकर अंत तक पहुँचते थे, मध्य से प्रारम्भ कर दोनों छोर तक ले जाते थे, तथा दोनों छोरों से प्रारम्भ कर मध्य तक लाकर समाप्त करते थे। इससे यह स्पष्ट है कि इनकी गणना का आदि से या मध्य से या अंत से कोई भी क्रम हो सकता है, बात तो परिपालन की प्रधानता की है। दस धर्मों का परिपालन एक साथ भी हो सकता है, एक एक जीवन में या उस जीवन के कृत्यविशेष में किसी धर्म का प्रभाव प्राप्त हुआ और उसी के कारण व तन्नामिक पारमिता कहलायी। जैसे शशयोनि में विद्यमान बोधिसत्व ने याचक ब्राह्मण को अभिप्सित वस्तु देने में आत्मोत्सर्ग किया। फलतः चरमभाव प्राप्त कर वह दान कृत्य दान पारमिता कहलाती है। इसी प्रकार अन्य पारमिताओं के विषय में समझना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पालि साहित्य में पारमिता की प्ररूपणा विस्तृत रूप से हुई है, जो बुद्धत्व प्राप्ति में सहायक है।

संदर्भ-विवरण

१. नेतिप्पकरण पृ. ८७

२. भिक्खाय उपगतं दिस्वा, सकत्तानं परिच्चजिं दानेन मे समो नात्थी, एसा मे दान पारमीति एवं अत्तपरिच्चागं करोन्तस्सदान पारमिता परमत्थपारमिता नाम जाता-निदानकथा, पृ. ११२

३. दानं सीलं च नेक्खम्मं, पञ्ञविरियं च कीदिसं।

खन्ति सच्चमधिट्ठानं, मेत्तुपेक्खा च कीदिस।
दस पारमी तथा धीर, कीदिसी लोक नायक।
कथं उपपारमी पुण्णा, परमत्थपारमी कथं।। बुद्धवंस, पृ. ३०४

४. तस्स पुट्ठे विनयाकासि, करवकमधुरगिरी। निब्बापयन्तो हृदयं, हासयन्तो सदेवकं। बुद्धवंस पृ. ३०५

५. निदानकथा, पृ. ४८-६८

६. निदानकथा, पृ. ११२-११६

७. अभिधम्मत्थ संगहो, पृ. ६८

८. दीयति अनेनं दानं, परिच्चागचेतना। विभाषा टीका, पृ. १३४

९. अभिधम्मत्थसंगहो, पृ. ६८

१०. वही, पृ. १२

११. जातक ४, पृ. ४३८-४४

१२. वही, २१४-२०

१३. वही, ६०९-२०

१४. किंकीव अण्डं, चमरी व बालधिं पियं व पुत्तं व एक्कं।
तथेव सीलं अनुरक्खमानका सुपेसला होथ सदा सगाथेति।। विसुद्धिमग्ग, पृ. २३

१५. जातक, ४१५-१८

१६. वही, ५, पृ. ५२

१७. निदानकथा, पृ. ५२

१८. जातक ५, पृ. २६०-७४

१९. सब्बे संखारा अनिच्चा ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बदन्तिं धीरा, सब्ब दुक्खा विमुच्चति। धम्मपद, पृ. ४२

२०. विशुद्धिमग्ग, पृ. १-५

२१. जातक ४, पृ. १-५

२२. निदानकथा पृ. ५४

२३. जातक ६, पृ. ३४-७७

२४. जातक, २०८-११

२५. अचेतनं व कोट्टेन्ते तिण्हेन फरसुना ममं।
कासिराजे न कुप्पामि, एसा मे खन्ति पारमी। निदानकथा, पृ. ११४

२६. खुद्दकपाठ, पृ. १

२७. यस्सेते चतुरो धम्मा, वानरिन्द यथा तव।
सच्च धम्मो धिति चागो, दिट्ठं सो अतिवट्टति। वानरिन्द जातक

२८. जातक ५, पृ. ५३५-८६

२९. खुद्दकपाठ, पृ. १२

३०. अट्ठसालिनी बुद्धघोष, पृ. १५७

३१. आगम और त्रिपिटक, पृ. १३४-३५

३२. क. दिव्याववदान पृ. १२७, ४६०
ख. ललित विस्तर, पृ. ३७५, ४७४

३३. अंग परिच्चागो पारमियो नाम, बाहिरभण्डपरिच्चागो उपपारामियो नाम।
जीवितपरिच्चागो परमत्थपारमियो नामाति। -निदानकथा, पृ. ६२

• • • •

चार ब्रह्मविहार : विश्वोपयोगी शिक्षा

दुनियां के रंगमंच पर मानव सदैव दुःख और विविध क्लेशों से मुक्ति पाने का मार्ग खोजता रहा है। संसार में सुख समृद्धि के भौतिक उपकरणों में कल्पनातीत वृद्धि हुई है फिर भी संकटों, दुःखों, अभावों, चिन्ताओं की दृष्टि से मनुष्य परेशान है। इस दिशा में विश्व इतिहास में भगवान् बुद्ध ने दुःखाक्रान्त मानव के कष्ट निवारण में अपूर्व योगदान दिया है। भगवान् बुद्ध के धर्म में सार्वभौतिक एवं सार्वजनिक करुणा का संस्पर्श है। इस प्रसंग में विशेष उपयोगी चार ब्रह्मविहारों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

'ब्रह्म' से अभिप्राय- 'बड़े' या 'महान्' होने से है। 'विहार' 'भावना' को कहा गया है। इन भावनाओं में स्वकीय तथा परहित सम्मिलित हैं। इसलिए इनका क्षेत्र बड़ा या महान् है एवं इनको "ब्रह्मविहार" कहते है। उद्देश्य की विशालता के कारण इसमें सम्मिलित भावनाओं को 'अप्रमाण' भी कहते हैं। इनकी कोई इयत्ता नहीं हैं अपरिमित जीव इन भावनाओं से प्रभावित होते हैं।

संसार के प्राणी विभिन्न प्रकार के हैं। कुछ साधारण कोटि के हैं जो सुख चाहते हैं। कुछ दुःख से पीड़ित हैं और दुःख दूर करना चाहते है। कुछ सुखी हैं जो चाहते हैं कि उनके सुख बना रहे, छिन न जाये। कुछ क्लिष्ट या मलिन स्वभाव के हैं। इन सबको देखकर उचित भावना का प्रतिपादन इन ब्रह्मविहारों में वर्णित है।

प्रथम मैत्री में दूसरों का हित साधन करना, द्वितीय करुणा में उनके दुःख का अपनयन करना, तृतीय मुदिता में उनकी सम्पन्न अवस्था को देखकर प्रसन्न होना तथा चतुर्थ, उपेक्षा भावना में सबके प्रति पक्षपात रहित या समदर्शी होना है। इन भावनाओं का आर्विभाव क्रमशः होता है। सबसे पहले प्राणी जीवों के हित करने को सोचता है। तदनन्तर दुःख से आविर्भूत जीवों की प्रार्थना सुनकर करुणा भावना द्वारा उनके दुःख का अपनयन करता है। पुनः लोगों की सम्यक् अवस्था देख मुदिता भावना द्वारा प्रसन्न होता है तत्पश्चात् कर्तव्य के अभाव में उपेक्षा भावना द्वारा उदासीन वृत्ति का अवलम्बन करता है।[1]

मैत्री-जीवों के प्रति स्नेह और सुहृदभाव प्रवर्तित करना मैत्री है। मैत्री की प्रवृत्ति परहित साधन के लिए होती है। जीवों का उपकार करना, उनके सुख की कामना करना, द्वेष और द्रोह का परित्याग इसके लक्षण है। मैत्री का सौहार्द तृष्णा-वश नहीं होता अपितु जीवों की हित-साधना के लिए होता है। यह लोभ, मोह वश भी नहीं होती अपितु ज्ञानपूर्वक होती है। इसका समीपवर्ती शत्रु राग एवं दूरवर्ती शत्रु व्यापाद है।

करुणा-करुणा की प्रवृत्ति जीवों के दुःख का अपनयन करने के लिए होती है। दूसरे के दुःख को देखकर साधु पुरुष करुणा से द्रवित हो जाता है। वह दूसरे के दुःख को सहन नही कर सकता। करुणा भावना की सम्यक् निष्पत्ति से विहिंसा का उपशम होता

है, शोक का नाश होता है। इस भावना के निकटवर्ती शत्रु, शोक, दौर्मनस्य तथा दूरवर्ती शत्रु अविहिंसा है।

मुदिता- मुदिता का लक्षण हर्ष है। जो जीवों की भावना का आदर करता है, वह दूसरों को सुखी देखकर हर्षित होता है। दूसरों की सम्पत्ति, पुण्य और गुणोत्कर्ष को देखकर उसको असूया या अप्रतीति नहीं होती। ईर्ष्या या द्वेष भी नहीं करता, पृथग्जनोचित्त सौमनस्य इसका निकटवर्ती शत्रु एवं अरति, अप्रीति इसका दूरवर्ती शत्रु है।

उपेक्षा-जीवों का उदासीन भाव 'उपेक्षा' है। उपेक्षा की भावना रखने वाला योगी जीवों के प्रति समभाव रखता है। प्रिय-अप्रिय में कोई भेद नहीं करता। सबके प्रति उदासीनवृत्ति रखता है। प्रतिकूल एवं अप्रतिकूल दोनों आकारों को ग्रहण नहीं करता। उपेक्षा भावना की निष्पत्ति से विहिंसा एवं अनुनय का उपशम होता है। इसके निकटवर्ती शत्रु अज्ञान सम्मोह प्रवर्तित उपेक्षा तथा दूरवर्ती शत्रु राग एवं द्वेष है।[२]

निकटवर्ती शत्रु छद्मवेश में उस भावना के समान प्रतीत होने वाले होते हैं एवं साधक के चित्त में अधिकार जमा लेते हैं, अतः इनसे सतर्कता रखनी चाहिए। दूरवर्ती शत्रु उस भावना के विरोधी होते है।[३]

क्षेत्र- संयुत्तनिकाय में कहा गया है कि जैसे कोई बलवान पुरुष शंख फूंकते समय ज़ोर लगा दे तो चारों दिशाओं को गूंजा देता है, उसी प्रकार मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा चेतोविमुक्ति का अभ्यास कर लेने से संकीर्णता में डालने वाले कोई कर्म ठहरने नहीं पाते। आर्यश्रावक लोभरहित, द्वेषरहित, असम्मूढ़, संप्रज्ञ, स्मृतिमान् होकर मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा भावना से चारों दिशाओं को व्याप्त कर ऊपर-नीचे टेढ़े-मेढ़े सभी तरह सारे लोक को विपुल अपरिमित चित्त से व्याप्त कर विहार करता है। इसके लिए आर्यश्रावक को जीवहिंसा, झूठ,चुगली, कठोर वचन, गप-शप, लोभ, द्वेष एवं मिथ्यादृष्टि को छोड़ना तथा सम्यक् दृष्टिवाला होना अनिवार्य है।[४] राग, द्वेष मोह, कुछ निमित्त कारण होते हैं इनके विपरीत चार भावनाएं अपरिमित कारण है।

मज्झिमनिकाय में वर्णित है कि जिस प्रकार स्वच्छ, मधुर शीतल जल वाली रमणीक एवं सुन्दर घाटों वाली पुष्करणी से सभी दिशाओं से आए, घाम में तपे, थके, तृषित पुरुष प्यास, धाम एवं ताप को दूर करते हैं उसी प्रकार क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य शूद्र सभी कुल वाले तथागत के उपदेशित धर्म को प्राप्त कर मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा की भावना कर आध्यात्मिक शांति को प्राप्त करते हैं।[५]

मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा भावना से व्यक्ति को प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदित होने से प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीतियुक्त होने से उसका शरीर प्रश्रब्ध होता है तथा प्रश्रब्ध होने से सुख होता है, जिसे धर्म की समाधि भी कहते हैं, इससे सभी शंकाएं दूर हो जाती हैं।[६] विशुद्धिमार्ग में इन भावनाओं से व्यक्ति को ११ लाभ बतलाए हैं।

१. सुखपूर्वक सोता है।

२. अंग टूटते नहीं हैं। सोकर सुखपूर्वक उठता है।

३. बुरे स्वप्न नहीं देखता।

४-५. मनुष्यों एवं अमनुष्यों में प्रिय होता है।

६. देवता उसकी रक्षा करते है।

७. उस पर अग्नि, विष और शस्त्र का असर नही होता।

८. चित्त शीघ्र शान्त हो जाता है।

९. चेहरे पर कांति आ जाती है।

१०. मरने के समय सजग बना रहता है।

११. सोकर जागने की तरह 'ब्रह्मलोक में उसकी उत्पत्ति होती है।[७]

सुत्तनिपात के मेत्तसुत्त में विविध प्रकार की भावनाओं को ''ब्रह्मविहार' कहा गया है। वर्णित है कि शान्ति पद के चाहने वाले कल्याण साधक मनुष्य को चाहिए कि वह मृदु बने, उसकी बात सुन्दर, मृदु और विनीत हो। सन्तोषी हो, सहज ही पोष्य हो, सादा जीवन बिताने वाला हो, उसकी इन्द्रियां शान्त हों। चतुर, अप्रगल्भ और कुलों मे अनासक्त हो। ऐसा कोई कार्य न करे जिससे दूसरे विज्ञ लोग उसे दोष दें। उसे विचार करना चाहिए कि-सभी प्राणी सुखी हो, क्षेमी हों, सुखितात्मा हो, जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान, मध्यम या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दृष्ट या अदृष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न या अनुत्पन्न होने वाले जितने भी जीव हैं, सभी सुखपूर्वक रहें। एक दूसरे की वंचना न करें। कभी किसी का अपमान न करें। वैमनस्य या विरोध की इच्छा न करें। माता जिस प्रकार जान की परवाह न कर अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार प्राणी मात्र के प्रति असीम प्रेम-भाव बढ़ायें। खड़े रहते, चलते, बैठते या सोते उक्त प्रकार की स्मृति बनाये रहें। इसी को ''ब्रह्मविहार'' कहते हैं।[८]

चार ब्रह्मविहारों में आगत भावनाएं जैन परम्परा में भी वर्णित हैं-मैत्री, करुणा, प्रमोद एवं माध्यस्थ भाव 'उपेक्षा'। पातंजल योग सूत्र में भी इन भावनाओं का उल्लेख है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भावनाओं से व्यक्ति अपना एवं समस्त मानव समुदाय का हित कर सकता है। इसी प्रकार एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति सहयोग कर सकते हैं। आधुनिक हथियारों के उत्पादन की अपेक्षा यदि प्रत्येक देश अपने पड़ोसी देशों से मैत्री सम्बन्ध रखे तो वह अपने लिए अभेद्य दीवारें खड़ी कर सकता है जो उसको हिमालय की तरह सन्तरी का काम दें। सामाजिक एवं आर्थिक विषमता दूर हो सकती है तथा सभी लोक तरक्की में साझेदार हो सकते हैं। इसके विपरीत यदि दुनिया में तबाही बढ़ती गयी तो कोई देश इससे अछूते न रह सकेंगे। इस दृष्टि से भगवान बुद्ध की शिक्षा में भी ''चार ब्रह्मविहार'' बहुत उपयोगी हैं। इस प्रकार बौद्ध धर्म विश्वोपयोगी धर्म है।

संदर्भ-विवरण

१. विशुद्धिमार्ग, पृ. ८८-८९

२. बौद्ध धर्म-दर्शन (आचार्य नरेन्द्र देव), पृष्ठ ६४

३. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सागरमल जैन, पृष्ठ ४३३

४. संयुत्तनिकाय ४०/८

५. मज्झिमनिकाय १-४-१०

६. संयुत्तनिकाय ४०/१३

७. विशुद्धिमार्ग (हिन्दी अनुवाद) भाग-१, पृ. २७३-२७४

८. सुत्तनिपात १-८

• • • •

पालि निकायों में प्रतिपादित ऋद्धि चमत्कार

ऋद्धि चमत्कार के सम्बन्ध में दुविधा प्रतीत होती है। एक ओर भगवान बुद्ध ने ऋद्धि चमत्कार प्रदर्शन को अपराध बताया था[१], दूसरी ओर पालि साहित्य ऋद्धि चमत्कारों से भरा पड़ा है। इस दृष्टि से निकायों में उपलब्ध प्रसंगों से भगवान बुद्ध का मन्तव्य स्पष्ट होता है।

बुद्ध वचनों का नौ अंगों में विभाजन जो सबसे प्राचीन माना जाता है, उसमें अद्‌भुत धर्मों को सम्मिलित किया गया है।[२] इनके अन्तर्गत चार अद्‌भुत धर्मों की गणना की गई है। विण्टरनित्ज ने इन धर्मों के अन्तर्गत चमत्कारिक वर्णनों[३] तथा गायगर ने अलौकिक शक्तियों से युक्त प्रसंगों की गणना की है[४]। चार ऋद्धिपादों की सैंतीस बोधिपाक्षिक धर्मों में गणना की जाती है[५]। जिनको भगवान ने धर्म की कसौटी कहा है[६]। दीघनिकाय के महापरिनिब्बासुत्त में भगवान भिक्षुओं की वैशाली की उपस्थान शाला में अन्तिम उपदेश के लिए बुलवाते हैं और अन्तिम वचन के पहले सैंतीस धर्मों का उपदेश देते हुए कहते हैं कि इनको अच्छी तरह सीख कर सेवन करना, भावना करना और बढ़ाना जिससे ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो जाय, साथ ही वह बहुजनहितार्थ, बहुजनसुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ, देव मनुष्य के अर्थ और सुख के लिए हो सके[७]।

समस्त अलौकिक शक्तियों का कारण चार ऋद्धिपादों की भावना बतलाई गई है[८]। चार ऋद्धिपादों का परिचय इस प्रकार है:-

चार ऋद्धिपाद (१) छन्द समाधि प्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद, (२) वीर्य समाधि प्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद, (३) चित्त समाधि प्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद, (४) मीमांसा समाधि प्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद।

ऋद्धियों के सिद्ध करने वाले मार्ग होने से ऋद्धिपाद कहा जाता है। आचार्य बुद्धघोष ने भी सिद्ध करने के अर्थ से ऋद्धि कहा है। छन्द-इच्छा के आधार पर समाधि और चित्त की एकाग्रता पाना छन्द समाधि है। इसी प्रकार वीर्य, चित्त और मीमांसा समाधि है। साधक अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिए, उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के ग्रहण के लिए, अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिए और उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, वृद्धि, भावना और पूर्णता के लिए कोशिश करता है। मन लगाता है, यह प्रधान संस्कार है। प्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद कहे जाते हैं। ऋद्धिपादों की भावना का मार्ग आर्य अष्टांगिक मार्ग है। इनका उद्‌देश्य-छन्द, वीर्य, चित्त और मीमांसा के ग्रहण के लिए इनका पालन करना है। यहाँ पर प्रहाण का तात्पर्य उनकी सफलता (शान्त हो जाना) है।

जिस प्रकार पाँच नदियां पूर्व की ओर बढ़तीं हैं, उसी प्रकार इन धर्मों में अभ्यास करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। अप्रमत्त भिक्षु से आशा की जाती है कि वह इन धर्मों का अभ्यास करेगा। इन धर्मों का पालन शील में प्रतिष्ठित होकर किया जाता है। इन धर्मों के पालन से भिक्षु निर्वाण की ओर झुका रहता है। पापमय अकुशल धर्मों को छोड़ देता हैं, निर्वाण का साक्षात्कार कर शेष धर्मों की पूर्णता को प्राप्त करता है। अकुशल धर्मों को दबा देता है। उसके संयोजन नष्ट हो जाते हैं। भिक्षु का गृहस्थ बनना सम्भव नहीं होता। इन धर्मों के अभ्यास से ज्ञानपूर्वक जानने योग्य धर्मों को जान लेता है। त्यागने योग्य धर्मों को त्याग देता है, साक्षात्कार करने योग्य धर्मों को साक्षात्कार करता है तथा अभ्यास करने योग्य धर्मों का अभ्यास करता है। एसना वग्ग में एषणाएं, अहंकार, आस्रव, दुःख, बाधाएं, मल, वेदनाएं तथा तृष्णा को जानने, क्षय करने, प्रहाण करने के लिए इन धर्मों का अभ्यास करना बतलाया गया है। चार बाढ, योग, उपादान, अनुशय, पांच कामगुण, नीवरण उपादान, स्कन्ध, संयोजन को जानने, क्षय करने एवं प्रहाण करने के लिए इन धर्मों के अभ्यास करने की सलाह दी गई है[९]।

भगवान बुद्ध को अलौकिक शक्ति के धारी के रूप में वर्णित किया गया है। इन शक्ति का कारण चार ऋद्धिपादों की भावना थी। कहा जाता है कि यदि भगवान चाहें तो हिमालय पर्वत भी सोने का हो जाय। चाहें तो कल्प भर या शेष कल्प तक जीवित रहें, धर्मपूर्वक राज्य करे एवं एक होकर बहुत हो जाय या बहुत होकर एक हो जाय[१०]। मार द्वारा भगवान के पास पत्थर गिराने पर भगवान कहते हैं कि चाहे सारे गृद्धकूट पर्वत को गिरा दिया जाय, लेकिन विमुक्त बुद्धों में चंचलता पैदा नहीं होती[११]। मार द्वारा भिक्षाटन में बाधा पहुंचाने पर भगवान अपने को अभास्वर देवताओं के समान प्रीति से सन्तुष्ट रहने वाला कहते हैं[१२]। भगवान अपनी अविचलता के सम्बन्ध में कहते हैं कि आकाश फट जाय, पृथ्वी कांप जाय, सभी प्राणी कांप जाय, छाती में भाला भी चुभाया जाये तब भी बुद्ध विचलित नहीं होते[१३]।

भिक्षुसंघ में मौद्गल्यायन भिक्षु को ऋद्धिधारियों में अग्र बतलाया गया है[१४]। ऋद्धि के सम्बन्ध में कहा गया है कि जो साधक ऋद्धियों को सिद्ध करता है वह एक होकर बहुत हो जाता है। विभिन्न प्रकार के चित्तों को जान लेता है, पूर्व जन्मों की गतियों को जानता है[१५]। भगवान के वेदना सहन करने वाले स्वभाव को स्वाभाविक समाधि का फल कहा गया है[१६]। भगवान बुद्ध की ऋद्धि माया से भिन्न है। स्वयं भगवान बुद्ध ने अपने लिए मायावी होने का खण्डन किया हैं इसके बाद कि वे माया को जानते हैं। इस बात का स्पष्टीकरण किया गया है कि जिस प्रकार किसी दुष्ट व्यक्ति को जानने से कोई दुष्ट नहीं हो जाता, उसी प्रकार वे माया, मायावियों तथा माया के दुःखद फल नरक को जानते हुए भी मायावी नहीं हैं[१७]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भिक बौद्धधर्म-दर्शन में ऋद्धि चमत्कार का प्रयोग मात्र सद्धर्म की रक्षा के लिए तथा साधना के लिए अपवाद के रूप में स्वीकार था, जो बाद में धारणी, तंत्रयान आदि के रूप में विकसित हुआ।

सन्दर्भ-विवरण

१. चतुर्थ पाराजिक, पातिमोक्ख, विनयपिटक

२. समन्तपासादिका (विनयकथा) नालन्दा संस्करण, पृ.२ पृ. १०

३. विण्टरनित्ज, एम.ए., हिस्ट्री आव इण्डियन लिट्रेचर, भाग २, पृ. १०

४. गायगर, विलियम, पालि लिट्रेचर एण्ड लैंग्वेज, पृ. ११-१२

५. दीघनिकाय, भाग २, पृ. ६४

६. मज्झिमनिकाय पालि, भाग ३, पृ. २८

७. महापरिनिब्बाण सुत्त, दीघ, भाग २, पृ. ६४

८. संयुत्तनिकाय - एक अध्ययन

९. वही

१०. संयुत्त निकाय भाग १/११६

११. वही पृ. ११६

१२. वही पृ. ११८

१३. वही पृ. १०६

१४. वही पृ. १०६

१५. वही भाग ५, पृ. २२५-२८

१६. वही भाग १, पृ. २६-२८

१७. वही भाग ४, पृ. २६

• • • •

बौद्धदर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों में अनात्मवाद

भगवान बुद्ध के प्रारम्भिक सिद्धान्त पालि त्रिपिटक में हम पाते हैं। पश्चात् महायान के सूत्रों में बौद्ध शिक्षाएं संगृहीत हैं। भारतीय दार्शनिक परम्परा में बौद्धदर्शन को चार प्रमुख दार्शनिक सम्प्रदायों में विभाजित किया गया है। सौत्रान्तिक, वैभाषिक, माध्यमिक एवं योगाचार।

प्रारम्भ में भगवान बुद्ध के प्रमुख सिद्धान्त अनित्य, दुःख एवं अनात्मवाद के रूप मे मिलते हैं। सभी संस्कार अनित्य हैं, जो अनित्य रूप हैं वे दुःख रूप हैं जो दुःख रूप हैं वे (आत्मरूप नहीं हो सकते) अनात्म है। यहाँ पर अति सामान्य ढंग से अनात्म की बात कही गई है। धम्मपद में एवं अन्य ग्रन्थों में अत्ता शब्द के प्रयोग के आधार पर प्रायः बौद्धदर्शन में आत्मा को थोपने का प्रयास किया जाता है, लेकिन भगवान बुद्ध ने विभिन्न प्रसंगों के आधार पर सत्कायदृष्टि को बुराई की जड़ बतलाते हुए छोड़ने की सलाह दी है। सत्कायदृष्टि को सभी मिथ्यादृष्टियों का मूल कारण कहा गया है तथा सलाह दी गई है कि स्मृतिमान रहते सत्कायदृष्टि का प्रहाण करना चाहिए। आत्मा के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार से विचार करने को सत्कायदृष्टि कहा गया है। आत्मा रूपवान है, अरूपवान है, रूपवान एवं अरूपवान है, आत्म एकान्तसुखी होती है, दुःखी होती है, सुख दुःख से रहित होता है, अरोग होता है या रूप, वेदना संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को आत्मा समझने से सत्कायदृष्टि उत्पन्न होती है।

अव्याकृत प्रश्नों के अन्तर्गत भी आत्मा की स्वीकृति नहीं है। बल्कि जो जीव है वही शरीर है, भिन्न है आदि प्रश्नों के माध्यम से शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद से बचने का प्रयास किया है।

विभिन्न सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि बौद्धों के दो सम्प्रदाय वात्सीपुत्रीय तथा सम्मतीय पुद्गलवाद को स्वीकार करते हैं। यहाँ पुद्गलवाद से तात्पर्य नित्य आत्मा को स्वीकार करना है। भारवाहसुत्त का उदाहरण देकर उद्योतकराचार्य ने न्याय. वा. (पृ. ३३६) में कहा है कि आत्मा नहीं है यह कहने वाला बौद्ध अपने सिद्धान्त के विरुद्ध कहता है। भारवाह सुत्त में उद्धत किया गया है कि हे भिक्षुओं ! तुम्हें भार क्या है ? तथा भारवाही कौन है ? रूप आदि पंचस्कन्ध ही भार है ? पुद्गल ही भारवाही है- जो कहता है आत्मा नहीं है वह मिथ्यादृष्टिवाला है।

तत्त्वसंग्रह में स्पष्ट कहा गया है कि अपने आपको बौद्ध मानने वाले कुछ लोग भी पुद्गल के बहाने आत्मा को मानते हैं और उसे पंचस्कन्ध से न तो भिन्न मानते हैं न अभिन्न ? (३३६)

इन लोगों को समझ लेना चाहिए कि पुद्गल की सत्ता पारमार्थिक नहीं है। सदसदनिवर्चनीय होने के कारण पुद्गल आकाश कमल के समान है। (३३८) वस्तु या तो सत होगी या असत् तो सदसद् विलक्षण है वह अवाच्य है, मिथ्या है। (३३६) सत्ता का लक्षण है अर्थक्रिया सामर्थ्य है यह क्षणिक पदार्थों में ही है अतः अवाच्य में वस्तुतः नहीं हो सकती। (३४७)

यदि यह कहो कि स्वयं भगवान् बुद्ध ने पुद्गल के अस्तित्व का प्रतिपादन किया है और इसलिए पुद्गल को न मानने पर आगम विरोध होता है, तो यह ठीक नहीं, क्योंकि महात्माओं ने (आचार्य वसुबन्धु आदि) यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि दयावान् भगवान ने नास्तिक का निराकरण करने के लिए पुद्गल का उपदेश दिया है, किन्तु वास्तविक उपदेश पुद्गल नैरात्म्य और धर्मनैरात्म्य है। (३४८)

लंकावतारसूत्र में अनात्मवाद का अच्छा चित्र उपस्थित किया गया है

महामति भगवान् से पूछते हैं- हे भगवन् !

आप तथागत गर्भ को स्वयंज्योति, आदि विशुद्ध सर्वजीवान्तमासी मलिन वस्तु में छिपे हुए बहुमूल्य रत्न के समान, स्कन्ध, धातु और आयतन में छिपा हुआ राग-द्वेष एवं महाभूतों से मैल से मलिन सा प्रतीत होने वाला नित्य, ध्रुव, शिव और शाश्वत बतलाते हैं तब हे भगवन् ! आपका यह तथागतगर्भवाद अबौद्धों के आत्मवाद से कैसे भिन्न कहा जा सकता है ?

अबौद्ध भी आत्मा को नित्य, निर्गुण, विभु और अव्यय मानते है।

भगवान् उत्तर देते हैं- हे महामति।

मेरा तथागतगर्भ अबौद्धों के आत्मा से भिन्न है।

तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध साधारण लोगों को जो नैरात्म्यवाद से भयभीत है, सुखपूर्वक उपदेश देने के लिए निर्विकल्प, निराभास, प्रज्ञागोचर तथागतगर्भ का इस प्रकार उपदेश देते हैं बोधिसत्वों को चाहिए कि तथागतगर्भ में आत्मा की भ्रांति न करें, इसे आत्मा मानकर इसमें आसक्त न हों।

ज्ञेयावरण के नष्ट होने पर धर्मनैरात्म्य और क्लेशावरण के नष्ट होने पर पुद्गल नैरात्म्य की उपलब्धि होती है तथा क्लेश और उपक्लेश के क्षीण होने पर बुद्धत्व प्राप्ति होती है।

सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र में भी कहा गया है कि जो समस्त बुद्धिगम्य पदार्थों को स्वतंत्र सत्तारहित होने के कारण अनात्म और स्वभावशून्य समझता है वही भगवान् बुद्ध की बोधि को वास्तव में जानता है

यस्तु शून्यान् विजानाति धर्मानात्मविवर्तितान्।
सम्बुद्धानां भगवतां बोधिं जानाति तत्त्वतः।। सद्धर्म पुण्डरीकसूत्र (५/५१)

शून्यवादी ग्रन्थ मूलमाध्यमिक कारिका में कहा गया है कि- भगवान् बुद्ध ने अपने उपाय कौशल्य से विविध विनेयों को उनकी बुद्धि के अनुरूप उपदेश दिए हैं। जो नैरात्म्यवाद के नाम से ही कांप उठते हैं उन लोगों को भगवान् ने पुण्यकर्म करने के लिए आत्मवाद (जीववाद) का उपदेश दिया ताकि जीव को शुभाशुभ कर्मों का कर्ता और भोक्ता मानकर वे शुभ कर्मों में प्रवृत्त हों। मध्यमश्रेणी के शिष्यों को नैरात्म्यवाद का उपदेश दिया ताकि वे अहंकार ममकार का परित्याग कर सकें। उत्तमश्रेणी के बोधिसत्त्वों को अपना व्यक्तिगत उपदेश दिया कि जीव सदसद्विलक्षण और अपरोक्ष अद्वय प्रपंचशून्य बोधि ही तत्त्व है। (१८६) माध्यमकावतार में कहा गया है कि सत्कायदृष्टि का मूल आत्मा है। सत्कायदृष्टि से सभी क्लेश दोष उत्पन्न होते हैं। योगी ऐसा अच्छी तरह समझकर आत्मा का निषेध करता है। (६/१२०)

आत्मा अनुपलब्ध तथा अप्रसिद्ध है। वस्तुतः उसकी सत्ता नहीं है।

अतः आत्मा के निषेध कर देने से सत्कायदृष्टि के प्रहाण से सर्वक्लेश की निवृत्ति हो जाती है। सर्वक्लेश उपशम ही निर्वाण है। जब तक आत्मा का निषेध नहीं होगा, तब तक निर्वाण संभव नहीं है। क्योंकि आत्मात्मीय के बने रहने पर सर्वक्लेश की निवृत्ति असम्भव है।

माध्यमिककारिका में पूर्वपक्ष के रूप में कहा गया है कि यदि कहें कि स्कन्ध ही आत्मा है क्योंकि उसमें ही आत्मत्व व्यवहार होता है। वही अहंकारास्पद है, अन्यत्र घटादि पदार्थों में आत्मत्व व्यवहार नहीं होता, ठीक नहीं है, क्योंकि यदि स्कन्ध आत्मा है, तो वह उत्पाद विनाश वाला होगा, स्कन्धों से अन्य होगा तो अस्कन्ध लक्षण होगा। (१८/१)

अर्थात् यदि ऐसी परिकल्पना है तो आत्म उत्पादविनाशशील होगा, क्योंकि स्कन्ध उत्पाद विनाशशील है, (यह आत्मवादियों को इष्ट नहीं है, अतः उसमें अनेकत्व दोष भी हो गये) उपादान भी आत्मा नहीं हो सकता, क्योंकि उपादान प्रतिक्षण उत्पन्न तथा नष्ट होता रहता है और उपादान ही उपादाता कैसे हो सकता है ?

सौत्रान्तिक सर्वास्तिवादी है। इनके मत में भूत, भौतिक, बाह्य तथा चित्त चैत्त आन्तरिक पदार्थ हैं बाह्य अर्थों को अनुमान से ही सिद्ध करते हैं इनका मानना है कि विज्ञान के अतिरिक्त भिन्न बाह्य अर्थ है, बाह्य अर्थों का चक्षुरादि से सन्निकर्ष मात्र होता है, क्षणिक होने से ग्रहण नहीं हो सकता, सन्निकर्ष काल में ही वे घटादि चित्त या विज्ञान में अपने आकार का उल्लेख कर देते हैं। ये विज्ञानवादियों एवं शून्यवादियों के मतों से सहमत नहीं हैं कि विज्ञान और विज्ञेय अर्थ में भेद नहीं किया जा सकता; ज्ञान तथा ज्ञेय में भेद उपलब्ध होता है। इनका मानना है कि आन्तरत्वेन ज्ञान उपलब्ध होता है तथा बाहरत्वेन ज्ञेय घटादि उपलब्ध होता है। नीलादि अर्थों का उसके साथ अभेद होगा

तो विज्ञान के आत्मरूप होने से 'अहं नील' अर्थात् मैं नील हूँ ऐसा व्यवहार होने लगेगा।

वैभाषिक बाह्यार्थ अस्तित्ववादी है। सौत्रान्तिकों के विपरीत बाह्य सभी पदार्थ अनुमेय ही नहीं अपितु योग्य, प्रत्यक्ष एवं अनुमेय है। बाह्य अर्थों को केवल अनुमेय मानने पर व्याप्ति सिद्ध न होने से अनुमान प्रवृत्त नहीं होगा, यदि धूमादि प्रत्यक्ष न हो तो वन्हि के साथ उसकी व्याप्ति गृहीत नहीं हो सकती, व्याप्ति ज्ञान के अभाव में वन्हि की अनुमिति नहीं हो सकती। वैभाषिक वस्तु को क्षणध्वंसी भी नहीं कहते, इनके मत में बाह्यवस्तुओं का सन्निकर्ष के अनन्तर ग्रहण सम्भव है। वस्तु की स्थिति क्षण है। तृतीय या चतुर्थ क्षण में पदार्थों का ध्वंस होता है। इसी अर्थ में क्षणिकत्व व्यवहार है।

आत्मा के बिना पुनर्जन्म की सिद्धि

अभिधर्मकोश के अनुसार कर्म तथा अविद्यादि क्लेशों से संस्कृत पंचस्कन्ध की सन्तति प्रवाहित होती रहती है। एक मृत शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को ग्रहण करने तक मध्य में भी एक स्कन्ध सन्तति चलती रहती है जिसे अन्तराभव कहते हैं। यह स्कन्ध सन्तति ही जन्मान्तर में गमन करती है।

मृतशरीरं विहाय परिग्रहीष्य माणशरीरं ग्रहीतुं मार्गे वर्तमाना विज्ञानसन्ततयः।

– अभिधर्मकोश, नालन्दिका टीका, ३-६

नात्मास्ति स्कन्धमात्रं तु कर्मक्लेशाभिसंस्कृतम्।

अन्तराभव सन्तत्या कुक्षिमेति प्रदीपवत्। – अभिधर्मकोश ३-१८

अनात्मवाद में स्मृति तथा प्रतिसन्धान

न्याय-वैशेषिक के आत्मवाद में स्मृति तथा प्रतिसन्धान विशेष हेतु है।

एक वस्तु का पहले अनुभव होता है, फिर उस वस्तु के विद्यमान न होते हुए भी दुःखी उसका स्मरण हुआ करता है।

दूसरी प्रकार की प्रतीति देखी जाती है कि जिस घट को मैंने देखा था उसे ही मैं इतर जान रहा हूं।

इस प्रकार एक ही वस्तु का भिन्न-भिन्न रूपों में नेत्रों द्वारा तथा स्पर्शेन्द्रिय द्वारा ज्ञान होता है।

यह तभी संभव है जबकि कोई मिथ्यात्व (आत्मा) भिन्न-भिन्न कालों में विद्यमान रहता हुआ एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न इन्द्रियों से अनुभव करे। ... यह ज्ञान प्रतिसंधान ज्ञान कहलाता है।

प्रश्न- १ नैयायिकों का कहना है कि बौद्धों की विज्ञानधारा में यह प्रतिसंधान नहीं बन पाता क्योंकि प्रत्येक विज्ञान अपने-अपने विषय में नियत है। जिस विज्ञान द्वारा व्याप्त का अनुभव हुआ था वह तो क्षणिक होने से नष्ट हो गया फिर प्रतिसंधान कैसे हो सकता है ?

बौद्ध कहते हैं कि आत्मा रूप ज्ञाता के न होने पर तथा विज्ञानों के भेद होने पर भी प्रतिसंधान हो सकता है क्योंकि विज्ञानों की एक सन्तान होती है तो इसे नैयायिक ठीक नहीं मानते, क्योंकि बौद्धों के यहाँ सन्तान विज्ञानों की धारा से भिन्न कोई वस्तु नहीं है।

बौद्ध कहते हैं (न्यायवार्तिक में) वास्तव में जिनकारणभूत एवं कार्यरूप विज्ञानों में भेद का ग्रहण नहीं होता, वे प्रतिसंधान के हेतु होते हैं, सभाग (समान) क्षणों में इसी प्रकार देखा जाता है अर्थात् विज्ञानों की धारा में प्रतिसंधान हो सकता है।

पूर्वपक्षी भी बौद्धों को अनात्मवादी मानते हैं

पूर्वपक्ष के रूप में न्यायदर्शन ने बौद्धों के अनात्मवाद के सिद्धान्त को इसप्रकार प्रतिपादित किया है- **नास्त्यजातत्वाद् इत्येके-नास्त्यात्माऽजातत्वात् शशविषाणवत्।**

–न्या. वा. पृ. ३३६

आत्मा नहीं है, क्योंकि उसके कारणों से उत्पत्ति नहीं होती, जैसे शशविषाण।

बौद्धदर्शन का मन्तत्य है कि आत्मा है इत्यादि प्रतीति विकल्पों से उत्पन्न होती है। विकल्पों का उद्भव अनादिकालीन वासना के कारण होता है। विकल्पों के आधार पर शब्द और अर्थ का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। अतः किसी वस्तु की बाह्य जगत में सत्ता प्रयोग मात्र के आधार पर सिद्ध नहीं होती।

आत्मा आदि विषयक विकल्प तथा शब्द प्रयोग बाह्य वस्तु निमित्तिक नहीं, तथा आत्मा आदि की बाह्य रूप में अनुपलब्धि होने के कारण इनकी सत्ता नहीं होती। आत्मा को विकल्प का विषय मानने वाला बौद्धदर्शन, बाह्यजगत में नित्य द्रव्य रूप आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। यही है अनात्मवाद/नैरात्म्यवाद।

बाह्य तथा आध्यात्मिक सभी पदार्थों में नानाधर्म ही परमार्थसत् है। वे धर्म क्षणिक हैं तथा देशकाल में अनुगत नहीं, अर्थात् कोई धर्म काल की दृष्टि से एक क्षण में ही रहता है दूसरे क्षण में नहीं रहता।

जिस प्रकार बाह्य जगत में अवयवी या द्रव्य को बौद्धदर्शन नहीं मानता, उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत में भी वह आत्मा नाम के द्रव्य को स्वीकार नहीं करता।

विज्ञानों की धारा के अतिरिक्त आत्मा नाम का कोई स्थिर द्रव्य नहीं अथवा रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा, और संस्कार– इन पांच स्कन्धों से पृथक् आत्मा नामक कोई वस्तु नहीं, (दृष्टव्य- वाचास्पतिमिश्र द्वारा बौद्धदर्शन का विवेचन पृ. २१-२२)

अनात्मवाद में कर्मफल व्यवस्था

न्याय वैशेषिक बौद्धों से प्रश्न करते हैं कि जब देह, इन्द्रिय, बुद्धि तथा वेदना आदि के संघात से भिन्न आत्मा नाम की कोई स्थिर वस्तु नहीं, तब कर्मफल व्यवस्था नहीं बन सकती।

बौद्धों की ओर से जवाब दिया गया है कि जिस काया से उपलक्षित कोई चित्त सन्तान होता है वही दूसरी काया में जाकर फल भोगता है। 'धान्न के बीज से अंकुर उत्पन्न होता है, धान बीज के नष्ट हो जाने पर पौधे आदि की उत्पत्ति होकर पृथ्वी आदि भूतों की सहायता से फिर धान बीज का प्रादुर्भाव हो जाता है। वहां कोई अनुगत एक निमित्त नहीं होता तथापि यह नियम है कि धान बीज से अंकुर होने वाले अंकुर से धान बीज़ उत्पन्न होता है। इसी प्रकार कारण-कार्यरूप से व्यवस्थित जो चित्त-सन्तति है उसके चित्तों में विपाक दशा को प्राप्त हुए कर्मों से फल उत्पन्न हो जाता है। अथवा जिस प्रकार लाक्षा के रस से भावना दिये हुए (भावित) बीजों को बोने से उनके पुष्प फल तथा कपास आदि में भी लालिमा आ जाती है, इसी प्रकार एक चित्त-सन्तान के किसी विज्ञान-क्षण के कर्म का फल अग्रिम विज्ञान-क्षणों को प्राप्त होता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिस काया में रहने वाली चित्त-सन्तति के प्रवाह का कोई चित्तक्षण कर्म करता है उसी चित्तसन्तति का अन्य क्षण उस कर्म का फल भोगता है, दूसरी चित्तसन्तति का नहीं। इसलिये जो चित्त-सन्तति कर्म करती है वही फल भोगती है तथा कृतनाश, अकृताभ्यागम नाम का दोष नहीं होता।

अनात्मवाद में जन्ममरण व्यवस्था-

बौद्ध-दर्शन ने अत्यन्त दृढ़तापूर्वक यह सिद्ध किया है कि जन्म-मरण-व्यवस्था नैरात्म्यवाद में ही बन सकती है, आत्मवाद में नहीं। बौद्धों की युक्तियों का निरूपण करते हुए वाचस्पति मिश्र लिखते हैं- "जन्म और मरण (उत्पादोच्छेद) को ही प्रेत्यभाव कहा जाता है। यदि आत्मा नित्य है तो उसकी उत्पत्ति और मृत्यु नहीं होनी चाहिये। इसलिये आत्मा को नित्य मानने पर प्रेत्यभाव नहीं बन सकता। बौद्धों के मतानुसार तो चेतन (सत्त्व) की उत्पत्ति तथा विनाश होता है अतएव प्रेत्यभाव बन सकता है।" यहां नैयायिक की ओर से यह शंका होती है कि 'प्रेत्य-भाव' का अर्थ उत्पन्न होकर नष्ट हो जाना नहीं हो सकता; क्योंकि प्रेत्य-भाव शब्द के 'प्रेत्य' अंश में ल्यप् प्रत्यय हुआ है और जहाँ एक ही कर्ता दो कार्यों को करता है वहाँ पूर्वकालीन क्रिया की वाचक धातु से ल्यप् प्रत्यय होता है। यदि एक ही आत्मा का मरकर (प्रेत्य) पुनर्जन्म (भाव) माना जाये तभी यहां ल्यप् प्रत्यय संगत होता है। अतः आत्मा को नित्य मानने पर ही प्रेत्यभाव बन सकता है। इस प्रकार प्रेत्यभाव का अर्थ 'मरकर पुनर्जन्म' मानना चाहिये।

इसके उत्तर में बौद्धों की ओर से कहा गया है कि जिस प्रकार मुख खोलकर सोता है (मुखं व्यादाय स्वपिति) यहाँ पर पहले सोता है तब मुख खोलता है अतः 'सोना' (स्वाप) पूर्वकालीन क्रिया है और 'स्वप्' धातु के ल्यप् प्रत्यय होना चाहिये, किन्तु पश्चात् वाली क्रिया (व्या+दा) से ल्यप् प्रत्यय देखा जाता है। ठीक इसी प्रकार 'प्रेत्यभाव' का भी 'भूत्वा प्रायणम्' अर्थात् 'उत्पन्न होकर नष्ट हो जाना' यह अर्थ है; किन्तु यहाँ पश्चात्

होने वाली क्रिया (प्र+इ) से ल्यप् हो गया है। विज्ञान-क्षण उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है जो उत्पन्न होता है वही नष्ट होता है। अतएव दोनों क्रियाएं समानकर्तृक हैं और ल्यप् प्रत्यय सहज ही में निष्पन्न हो जाता है। इस प्रकार बौद्ध मत में ही प्रेत्यभाव बन सकता है, आत्मा को नित्य मानने पर नहीं।

बौद्धन्यायपरम्परा एवं अनात्म-

बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्ति ने तो आत्मा को तृष्णा का प्रमुख कारण ही घोषित कर दिया है।

यः पश्यत्यात्मानं तत्राहमिति शाश्वतः स्नेहः।
स्नेहात् सुखेषु तृष्यति तृष्णा दोषांस्थिरी कुरुते।।

तत्वसंग्रहकार शांतिरक्षित आत्मपरीक्षा में विस्तार से सभी आत्मवादियों का पक्ष रखते हुए उनका खण्डन करते हैं जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आत्मवादी जो समस्याएं अनात्मवादी बौद्धों के समक्ष उपस्थित करते हैं वे समस्याएं या आपत्तियां आत्मा को नित्य मानने से भी आती हैं।

उपनिषदमत का खण्डन (पूर्वपक्ष)- यह पंचभौतिक जगत नित्य ज्ञान का विवर्तमात्र है आत्मा नित्यज्ञान स्कंध है। (३२८)

बुद्धि ग्राह्य विषयों की वास्तविक सत्ता नहीं है, अतः यह सब दृश्यमान जगत विज्ञान का परिणाम है। ३२६

उत्तरपक्ष- इन दार्शनिकों के मत में बहुत थोड़ा दोष है। और वह यह कि वे विज्ञान को नित्य मानते हैं। विज्ञान नित्य नहीं हो सकता, क्योंकि रूप, शब्द आदि के विज्ञान में स्पष्ट ही भेद और अनित्यत्व प्रतीत होता है। (३३०)

ज्ञान नित्य और एकरस हो तो सम्यक् और मिथ्याज्ञान का भेद सिद्ध नहीं होगा, और फिर बन्ध तथा मोक्ष भी सिद्ध नही होगा। नित्य और एकरस होने से तत्वज्ञान भी उत्पन्न नहीं होगा और योगाभ्यास व्यर्थ हो जायेगा।

न्याय परम्परा सम्मत आत्मा का खण्डन

पूर्वपक्ष- न्यायपरम्परा में आत्मा को नित्य, सर्वव्यापी, बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न आदि गुणों का आश्रय, किन्तुः स्वतः अचित् मानते हैं। १७१

ज्ञान के सम्बन्ध में आत्मा, ज्ञाता, प्रयत्न आदि के सम्बन्ध से कर्ता और सुख दुःख आदि के सम्बन्ध में भोक्ता बनता है।

उत्तर - यदि बुद्धि इच्छा आदि का कोई न कोई आश्रय मानना आवश्यक भी हो, तो भी नित्य और गतिशून्य आत्मा को आधार मानना निष्फल है।

अहं के आश्रय के कारण चित्त को आत्मा कहा जाता है किन्तु यह व्यावहारिक और वस्तुतः आत्मा नामक कोई नित्य वस्तु नहीं है।

स्वसंवेदन के कारण आत्मा को प्रत्यक्ष सिद्ध मानने पर भी उसका नित्यत्व और विभुत्व सिद्ध नहीं होता।

बुद्धि इच्छा आदि को समवाय सम्बन्ध से आत्मा पर निर्भर नहीं माना जा सकता, क्योंकि बुद्धि इच्छा आदि क्षणिक होने में बीज अंकुर लता के समान क्रमशः उत्पन्न होती है। (२१७)

मीमांसक सम्मत आत्मा का खण्डन-

पूर्वपक्ष- मीमांसक का पूर्वपक्ष तत्वसंग्रह में वर्णित करते हुए कहा है कि

अन्य लोग आत्मा को चैतन्य रूप भी व्यावृत्ति-अनुगमात्मक मानते हैं तथा चैतन्य को बुद्धि का लक्षण मानते हैं।

उत्तर- किन्तु चैतन्य को एक और नित्य मानने पर तद्रूप बुद्धि को भी एक और नित्य मानना पड़ेगा। (२४१)

यदि बुद्धि सदा नित्य और सब पदार्थों को जानने वाली है, तो फिर हम सब बुद्धिमान व्यक्ति सर्वज्ञ क्यों नहीं हैं (२५३)

यदि कर्तृत्व और भोक्तृत्व प्रयत्न आदि और सुख दुःख आदि अवस्थाओं पर निर्भर नहीं हैं तो इस अवस्था वाले आत्मा को कर्ता और भोक्ता नहीं कहा जा सकता, और यदि निर्भर है तो अवस्थाओं और आत्मा में कोई अन्तर नहीं होगा। अतः हम (शान्तरक्षित) आत्मा के नित्यत्व का खण्डन करते हैं, क्योंकि आत्मा के स्वरूप में विकार होने के कारण उसका विकास होता रहता है। (२७३)

सर्प के कभी पीछे और कभी गोले होने की तरह आत्मा को स्वरूपतः अविकारी और गुणतः विकारी मानने से भी काम नहीं चलेगा, क्योंकि सर्प क्षणिक होने से सीधा या गोल अवस्था को प्राप्त होता है, जो नित्य है, उसमें विकार संभव नहीं, वास्तव में आत्मा अहंकार के अतिरिक्त कुछ नहीं है, और यह अहंकार अनादि अविद्याजन्य आत्मदृष्टि वासना के कारण, निरालम्ब ही चलता रहता है यह बन्धनावस्था में ही चलता रहता है, मोक्षावस्था में नहीं (२७५)

सांख्यमत का खण्डन-

पूर्वपक्ष- अन्य लोग बुद्धि से भिन्न चैतन्य को आत्मा मानते हैं, प्रकृति द्वारा उपस्थित कर्मफल का आत्मा भोग करता है। आत्मा में कर्तृत्व नहीं है, कर्तृत्व प्रकृति में ही है।

उत्तरपक्ष- किन्तु नित्य और एकरूप चैतन्य में विविध पदार्थों का भोक्तृत्व कैसे संभव हो सकता है ?

यदि आत्मा शुभाशुभ कर्मों का कर्ता नहीं है, तो वह उनके फलों की भोक्ता कैसे हो सकती है।

पूर्वपक्ष- यह कथन ठीक नहीं है

प्रकृति-पुरुष में अंध-पंगु सम्बन्ध है और पुरुष की अभिलाषा के अनुरूप फलों को प्रकृति उसके भोग के लिए उपस्थित करती है। (२६५)

उत्तर- यदि आत्मा में अर्थोपभोग के समय विकार न हो तो उसका भोक्तृत्व सिद्ध नहीं हो सकता और प्रकृति उसका कोई उपकार नहीं कर सकती।

और यदि आत्मा में विकार होता हो, तो उसका नित्यत्व नष्ट हो जाएगा विकार का अर्थ है अन्यथाभाव और नित्य स्वभाव का अन्यथाभाव हो नहीं सकता।

यदि कहा जाय कि स्वयं आत्मा भोग नहीं करता, क्योंकि वह अपने स्वरूप को कभी नहीं छोड़ता, किन्तु बुद्धि में स्थित अपने प्रतिबिम्व को ही अपना स्वरूप समझकर वह भोग करता सा प्रतीत होता है, तो वह भी ठीक नहीं, क्योंकि यदि प्रतिबिम्व के साथ आत्मा का तादात्म्य है तो आत्मा भी प्रतिबिम्बित के समान अनित्य है और यदि तादात्म्य नहीं है, तो आत्मा भोक्ता नहीं हो सकता। (२६७-२६८)

यदि चैतन्य को ही आत्मा कहा जाय, तो इसमें कोई विवाद नहीं है, हम तो यही कहते हैं कि उसका नित्यत्व सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि फिर सब इन्द्रियां व्यर्थ हो जाएगी। (३०५)

और फिर इस कथन से ज्यादा उपयुक्त बात क्या होगी कि

प्रकृति विविध व्यंजन बनाना तो जानती है, किन्तु उनका उपयोग करना नहीं जानती। (३००)

जैनमत का खण्डन

पूर्वपक्ष- मीमांसकों के समान जैन भी आत्मा को चिद्रूप तथा द्रव्य और पर्याय के भेद से, एक और अनेक, नित्य और अनित्य अविकृत और विकृत मानते हैं। (३११)

उत्तरपक्ष- किन्तु यदि द्रव्य और पर्याय वास्तव में अभिन्न है तो द्रव्य को पर्याय के समान, अनेक, अनित्य, विकृत मानना पड़ेगा, और पर्यायों को द्रव्य के समान, एक नित्य और अविकृत मानना होगा।

यदि द्रव्य और पर्याय वास्तव में भिन्न-भिन्न तो दोनों साथ-साथ आत्मा में नहीं रह सकते। अतः या तो अनित्यत्व ही मानिए या नित्यत्व। (३२१)

उपसंहार-

श्वेरवात्स्की का मानना है कि अनात्मन् शब्द का साामन्यतः 'न आत्मा (Non Soul) अनुवाद किया जाता है किन्तु वास्तव में आत्मन् शब्द व्यक्तित्व, अहं (इगो), प्राणी अथवा चेतन का पर्याय है।

इसमें यह भाव निहित है कि इन समस्त नामों में से जो कुछ भी निर्दिष्ट किया जाता है, वह परमार्थसत्-चरम सत्य नहीं, केवल परस्पर सम्बद्ध इन तत्वों के समुदाय

का नाम है। नैरात्म्य केवल निषेधात्मक अभिव्यक्ति है, जो वस्तुतः परमार्थ तत्वों की सत्ता (धर्मत्व) की समानार्थक है।

आत्मा, पुद्गल, व्यक्ति तथा व्यक्तित्व आदि का भास विकल्पजन्य है, मिथ्याप्रतीति है। परमार्थसत् वस्तु की प्रतीति नहीं होती, अपितु विभिन्न धर्मों के समुदाय अथवा धारा का ही यह नाम है। ५८-५६

बौद्धदर्शन का सारांश है कि- रूप आदि स्कन्धों के समुदाय में विकल्प जन्य यह आत्मा है इस प्रकार की प्रतीति होती है। इससे आत्मा की बाह्य जगत में सत्ता सिद्ध नहीं होती, विज्ञान आदि की धारा में ही आत्मा या पुद्गल की मिथ्या प्रतीति होती है वस्तुतः आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है, यही अनात्मवाद या नैरात्म्यवाद है।

संदर्भ-विवरण

१. न्यायवार्तिक पृ.- ३३६ - वाचस्पति मिश्र
२. तत्त्वसंग्रह आचार्यशांतिरक्षित कृत, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी
३. बौद्धदर्शनमीमांसा, डा. देवी प्रसाद
४. लंकावतार सूत्र, बौद्धसंस्कृत ग्रन्थमाला, दरभंगा
५. माध्यमिक कारिका,
६. माध्यमकावतार
७. सद्धर्मपुण्डरीक, बौद्धसंस्कृत ग्रंथमाला, दरभंगा
८. बौद्धन्याय, श्चेरवात्स्की
६. अभिधर्मकोश ३-१८
१०. आत्मवादानुचिन्तनम्- डॉ. किशोरनाथ झा

• • • •

बौद्धदर्शन में निर्वाण

निर्वाण या मोक्ष भारतीय दर्शन का केन्द्र-बिन्दु है। यह भारतीयों के लिए एकमात्र सार और एकमात्र लक्ष्य है। भारतीय दर्शन की उत्पत्ति, विकास जीवन के सबसे कठोर सत्य दुःख से होती है। जीवन के दुःखों को दूर करना दर्शन का लक्ष्य है। मोक्ष और मुक्ति शब्द क्रमशः मोक्ष और मुच् धातु से व्युत्पन्न होते हैं, जिनका अर्थ स्वतंत्र होना या छुटकारा पाना है। इस प्रकार भारतीय दर्शन में मोक्ष का अर्थ जीवन-मरण के चक्र अर्थात् सभी प्रकार के सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाना है।[१]

बौद्धदर्शन में निर्वाण-

बौद्ध परम्परा में इसी परम-लक्ष्य मोक्ष को निर्वाण कहा गया है। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ वाण से बाहर निकलना है।[२] 'वाण' तृष्णा या तन्द्रा को कहते हैं। निर्वाण एक ऐसी स्थिति है, जिसमें सभी तृष्णाओं का अन्त हो जाता है। तृष्णा के निरोध से परम पद निर्वाण की प्राप्ति होती है।[३] पाँच स्कन्ध संस्कृत धर्म है। निर्वाण असंस्कृत धर्म है। निर्वाण को अजात, असमुत्पन्न, अशोक, विरजपद, निरोध, संस्कारोपशम और सुख कहा गया है।[४] निर्वाण नहीं है, ऐसा नहीं कहना चाहिए। भव और जरामरण के अभाव से वह नित्य है, अशिथिल-पराक्रम सिद्ध, विशेष ज्ञान से प्राप्त किए जाने से वह सर्वज्ञ के वचन तथा परमार्थ से निर्वाण है।[५]

सोपाधिसेस निर्वाण-

जिनसे कर्म और क्लेश उत्पन्न होते हैं, जिनमें कर्म और क्लेश आश्रय ग्रहण करते हैं, वे उपाधि हैं। अर्हत् व्यक्ति के पाँच स्कन्ध ही उपाधि शेष है। पुराने कर्मों के विपाक के रूप में उनकी स्थिति तब तक बनी रहती है या उनकी धारा का प्रवाह तब तक चलता रहता है, जब तक आयु का क्षय नहीं होता।[६]

निरुपाधिसेस निर्वाण-

जब अर्हत् व्यक्ति का आयु क्षय, मरण हो जाता है, तब उसके सभी प्रकार के नामधर्मों की सन्तति तथा रूप धर्मों की सन्तति सर्वदा के लिए निरुद्ध हो जाती है। उपाधि कहलाने वाले पांच स्कन्धों का अभाव वह निर्वाणधातु अनुपाधिशेष निर्वाण है।

स्थविरवाद परम्परा में निर्वाण-

स्थविरवादी परम्परा के अनुसार भिक्षुओं की प्रव्रज्या एवं ब्रह्मचर्य पालन का परम उद्देश्य निर्वाण था।[७] निर्वाण या मुक्ति के सम्बन्ध में भारतीय दार्शनिकों में वैमत्य है।[८] बौद्ध परम्परा में भी अनेक विचारधाराएं विकसित हुई हैं।[९]

संयुत्तनिकाय के असंखत संयुत्त में निर्वाण को रागक्षय, द्वेषक्षय एवं मोहक्षय बतलाते हुए असंस्कृत, अन्त, अनास्रव, सत्य, पार, निपुण, सुदुर्दर्श, अजर्जर, ध्रुव, अवलोकित, अनिदर्शन, निष्प्रपंच, शान्त, अमृत, प्रणीत, शिव, क्षेम, तृष्णाक्षय, आश्चर्य, अद्भुत, निर्दुःख, निर्दुःख धर्म, निर्वाण, निर्द्वेष, विराग, शुद्धि, मुक्ति, अनालय, द्वीप, लेण, त्राण एवं शरण कहा है। [१०]

आपणसुत्त में सभी व्याधियों से मुक्ति, तृष्णाक्षय एवं निरोध को निर्वाण कहा है और बतलाया है कि इस संसार का अग्र जाना नहीं जा सकता, पूर्वकोटि मालूम नहीं होती। अविद्या में पड़े तृष्णा के बन्धन से बंधे, आवागमन में संसरण करते जीवों के अविद्या के निरोध से सभी संस्कार दब जाते हैं, सभी उपाधियों से मुक्ति हो जाती है। इस प्रकार मुक्ति-तृष्णाक्षय-विराग-निरोध निर्वाण सिद्ध होता है।[११]

विमोक्खसुत्त में निर्वाण को प्राणियों का विमोक्ख, पमोक्ख, विवेक कहा गया है। इस स्थिति में तृष्णामूलक बन्धनों का बिल्कुल क्षय, संज्ञा और विज्ञान का मिटना, वेदनाओं का निरोध और शान्त स्थिति बतलाई गई है।[१२] निर्वाण को रागक्षय, द्वेषक्षय, मोहक्षय, भव का निरोध,[१३] प्राणियों का विमोक्ख, पमोक्ख, विवेक[१४] एवं अनास्रव कहा है।[१५]

निर्वाण की स्थिति के सम्बन्ध में कहा गया है कि निर्वाण भय से शून्य है।[१६] निर्वाण में जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु प्रतिष्ठित नहीं होते, धारा रुक जाती है, भंवर चक्कर नहीं काटता तथा नाम और रूप दोनों विरुद्ध हो जाते हैं।[१७] ब्रह्मयाचना सुत्त में कहा गया है कि सभी संस्कारों का शमन, सभी उपाधियों से मुक्ति, तृष्णाक्षय, विराग, निरोध वाला 'निर्वाण' है।[१८] निर्वाण के साक्षात्कार के सम्बन्ध में कहा गया है कि चेतन और संकल्प से मुक्ति प्राप्त होती है तथा दुःख समूह रुक जाता है। चेतना और संकल्प से किसी काम में लगने की प्रवृत्ति होती है और लग जाता है। लग जाने से विज्ञान की स्थिति का आलम्बन होता है। विज्ञान के बने रहने, बढ़ते रहने से भविष्य में बार-बार जन्म होता है। भविष्य में जन्म से जरामरण, शोक परिदेव, दुःख दौर्मनस्य उत्पन्न होता है। इसके विपरीत जो चेतना और संकल्प नहीं करता वह किसी काम में नहीं लगता, उसका सारा दुःख समूह रुक जाता है।[१९]

सम्यक् दृष्टि को निर्वाण की ओर ले जाने वाला कहा गया है।[२०] बुद्ध, धर्म एवं संघ में श्रद्धा तथा शील पालन को निर्वाण के लिए उदयगामी मार्ग कहा है।[२१] अनित्यता को समझने से निर्वाण की प्राप्ति बतलाई गई है।[२२]

असंखत संयुत्त में आर्य अष्टांगिक मार्ग, सात सम्बोध्यंग, चार स्मृति प्रस्थान, पांच इन्द्रिय, पांच बल, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद, कायगत स्मृति, शमथ, विपश्यना, समाधि एवं ध्यान को निर्वाण गामी मार्ग बताया गया है।[२३]

वैभाषिक मत में निर्वाण-

निर्वाण को प्रतिसंख्या निरोध कहा है। अर्थात् विशुद्ध प्रज्ञा के सहारे सांसारिक साम्रव धर्मों तथा संस्कारों का जब अन्त हो जाता है तब निर्वाण कहलाता है।[२४] निर्वाण नित्य, असंस्कृत धर्म, स्वतंत्र सत्ता पृथक्भूत सत्यपदार्थ है।[२५] वैभाषिकों के मत में निर्वाण क्लेशाभाव है परन्तु अभाव होने पर भी वह सत्तात्मक पदार्थ हैं। भाव पदार्थ के समान अभाव भी स्वतन्त्र पदार्थ था।

सौत्रान्तिक मत में निर्वाण-

निर्वाण को विशुद्ध ज्ञान के द्वारा उत्पन्न होने वाले भौतिक जीवन का चरम निरोध मानते थे। निर्वाण के अनन्तर कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता। नितान्त अभावात्मक मानते हैं, अर्थात् न कुछ जीवन शेष रहता है न कोई चेतना।[२६]
सौन्दरनन्द में इसे इस प्रकार समझाया गया है -

दीपो यथा निवृत्तिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम्।।
एवं कृती निवृत्तिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम्।।

महायान परम्परा में निर्वाण-

हीनयान में नैरात्म्य के ज्ञान से केवल क्लेशावरण का क्षय होता है। दूसरा आवरण ज्ञेयावरण है।

सर्वज्ञता की प्राप्ति के लिए इन दोनों आवरणों क्लेशावरण तथा ज्ञेयावरण का प्रहाण नितान्त आवश्यक है। शून्यता का ज्ञान होने से दूसरे प्रकार के आवरण का भी नाश होता है। हीनयान में अर्हत् पद की प्राप्ति चरम लक्ष्य है। महायान में बुद्धत्व प्राप्ति जीवन का उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की भिन्नता के कारण निर्वाण की कल्पना में भेद है।

नागार्जुन माध्यमिक कारिका के पच्चीसवें परिच्छेद में निर्वाण की परीक्षा करते हुए कहते हैं कि-यह न उच्छिन्न पदार्थ है न शाश्वत, न तो यह निरुद्ध है न उत्पन्न, यह दोनों से भिन्न है-

अप्रहीणमसम्प्राप्तमनुच्छिन्नमशाश्वतम्।
अनिरुद्धमनुत्पन्नमेतन्निर्वाणमुच्यते।।

अर्थात् न तो राग के समान प्रहाण हो सकता है, न सात्विक जीवन के समान प्राप्ति से सम्भव है।

जैन एवं बौद्ध परम्परा में मोक्ष, निर्वाण एक ही अर्थ में प्रयुक्त है। जैन परम्परा आत्मवादी है बौद्ध परम्परा अनात्मवादी। इस विरोध के बावजूद दोनों परम्पराओं में निर्वाण एवं मोक्ष में बहुत समानता है। मोक्षमार्ग में जैन परम्परा में रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान

एवं सम्यक्चारित्र है वहीं बौद्ध परम्परा में आर्य अष्टांगिक मार्ग है तथा शील, समाधि, प्रज्ञा है।

पात्रों के सन्दर्भ में भी एक विवाद रहा है वह है- स्त्री मुक्ति के सन्दर्भ में। दिगम्बर जैन परम्परा स्त्री पर्याय में मुक्ति नहीं मानती,[२७] जबकि श्वेताम्बर परम्परा में इस तरह का कोई भेद नहीं है। बौद्ध परम्परा में भी साधक की चार अवस्थाएं वर्णित हैं- स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी एवं अर्हत्। इसमें स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं हैं लेकिन संघ में भिक्षुणियों का स्थान भिक्षुओं के समकक्ष कभी नहीं हो सका।

संदर्भ-विवरण

१. भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन, पृ. २ (भूमिका)
२. पालि इंगलिश डिक्सनरी, पृ. ३६२-३६५
३. संयुत्तनिकाय १, पृ. १२१
४. इतिवुत्तक ३७-३८, खुद्दकनिकाय
५. विसुद्धिमग्ग भाग-एक, ११६६-१२१
६. विसुद्धिमग्ग, १६/१७३
७. 'निब्बानं गधं हि राध, ब्रह्मचरियं वुस्सति,
निब्बान परायनं निब्बानं परियोसानं' ति। -संयुत्त. ३, पृ. ४०३
८. द्रष्टव्य- भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन : एक अध्ययन
९. द्रष्टव्य- दि कान्सेप्सन आव बुद्धिस्ट निर्वाण
१०. 'असंखतं अनंतं अनासवं, सच्चं च पारं निपुणं सुद्दसं।
अजज्जरं धुवं अपलोकितं, अनिदस्सनं निप्पंच सन्तं।।
अमतं प्रणीतं च सिवं च खेमं, तण्हाक्खयो अच्छरियं च अब्भुतं।
अनीतिकं अनीतिकधम्मं, निब्बानमेतं सुगतेन देसितं।।
अव्यापज्जो विरागो च, सुद्धि मुत्ति अनालयो।
दीपो लेणं च ताणं च, सरणं च परायनं ति।। संयुत्तनिकाय ४, पृ. ३२०
११. वही ५, पृ. १६५-६७
१२. संयुत्तनिकाय १, पृ. ४
१३. वही, ५, पृ. ६८
१४. वही, १, पृ. ४
१५. परिनिब्बन्ति अनासवा ति।। वही, ४, पृ. ११६
१६. अभया नाम सा दिसा। वही, १, पृ. ३१
१७. यत्थ आपो च पठवी, तेजो वायो न गाधति।
अतो सरा निवत्तन्ति, एत्थ वहं न वत्तति।
एत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झति ति।। वही, १, पृ. १६
१८. इदं पि खो ठानं दुद्दसं यदिदं सब्बसंखारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हाक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। - वही, १, पृ. १३७
१९. संयुत्तनिकाय २, पृ. ५६-५८
२०. सम्मादिट्ठि निब्बानपोणा निब्बानपब्भारा ति। वही, ४, पृ. १६२

२२. वही, ५, पृ. ३०७

२२. वही, ४, पृ. ६६-७०

२३. वही, ४, पृ. ३१२-१४

२४. प्रतिसंख्यानमनास्रवा एव प्रज्ञा गृह्यते तेन प्रज्ञाविशेषेण प्राप्यो निरोधः इति प्रतिसंख्यानिरोधः।
- यशोमित्र-अभिधर्मकोश, व्याख्या पृ. १६

२५. द्रव्यं सत् प्रतिसंख्यानिरोधः- सत्यचतुष्टय-निर्देश-निर्दिष्टत्वात् मार्गसत्यवत् इति वैभाषिकाः।
यशोमित्र-अभिधर्मकोश व्याख्या पृ. १६

२६. बल्देव उपाध्याय, बौद्धदर्शन मीमांसा पृ. १३०

२७. "मोक्षहेतुर्ज्ञानादिपरमप्रकर्षः स्त्रीषु नास्ति।" स्त्रीणां मायाबाहुल्यमस्ति सचेलसंयमत्वाच्च न स्त्रीणां संयमः मोक्षहेतुः। बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहवत्वाच्चन स्त्रियो मोक्षहेतुसंयमवत्यः। नास्ति स्त्रीणां मोक्षः उत्कृष्टध्यानविकलत्वात्।।"
- प्रमेयकमलमार्तण्ड २/३२८-३३४

• • • •

नालन्दा में उपदिष्ट महत्त्वपूर्ण सुत्त

(संयुत्तनिकाय के सन्दर्भ में)

मगध जनपद का बौद्धधर्म के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः इसी जनपद में धम्म का अविर्भाव हुआ। वर्णित है कि मगध में मलिन चित्त वालों के पहले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ था। अब अमृत के घट को खोलने वाले विमल द्वार जाने गए– इस धर्म को लोग सुनें-

पातुरहोसि मगधेसु पुब्बे धम्मो असुद्धो समलेहि चिन्तितो
अपापुरेतं अमतस्स द्वारं सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं।।

– महावग्ग, पठमो भागो

नालन्दा के गौरव पूर्ण इतिहास से सब परिचित हैं हम नालन्दा में दिए गए भगवान बुद्ध के महत्वपूर्ण उपदेशों को उपस्थित कर, पूर्व स्मृतियों को उपस्थित करना चाहते हैं। मात्र संयुत्तनिकाय के सन्दर्भों तक यहाँ सीमित किया गया है। नाला ग्राम में भगवान बुद्ध ने वर्षावास भी किया था। भगवान ने अन्तिम यात्रा राजगृह से कुशीनगर तक थी। उसके पड़ाव थे- राजगृह, आवलट्टिका, नालन्दा, पाटलिग्राम, कोटिग्राम, नादिका वैशाली, भण्डग्राम, हत्थिग्राम, आवग्राम, जम्बूग्राम, भोगनगर, पावा और कुसीनगर।[1] भौगोलिक स्थिति का चित्रण करते हुए भगवान के विचरण स्थल में निम्न स्थानों को मगध जनपद का माना गया है। १. अन्धकविन्द्र (ग्राम), २. अम्बलट्ठिका, ३. अम्बसण्ड, ४. एकनाला, ५. कलन्दकनिवाप, ६. खाणुमत ब्राह्मण-ग्राम, ७. जीवकम्बवन, ८. तपोदाराम, ९. दक्खिणागिरि, १०. नालंदा, ११. पंचशील, १२. मणिमालक चेतिय १३. मातुला, १४. मोरनिवाप परिब्राजकाराम, १५. लट्ठिवन, १६. सीतवन, १७. सूकरखता (सूकररवतलेन)।

संयुत्तनिकाय के सुत्तों से पता चलता है कि महावीर एवं बुद्ध का शिष्यों के माध्यम से वाद-विवाद भी होता था, जिसमें तार्किक ढंग से एक दूसरे को पराजित करने एवं अपने मत की पुष्टि करने का ध्येय रहता है।

सङ्खधम्मसुत्त-

भगवान् बुद्ध और निगण्ठ श्रावक असिबन्धक पुत्र ग्रामणी के साथ हुई वार्ता काफी रोचक है। (इस सुत्त में) जिसमें भगवान् बुद्ध ग्रामणी से निगण्ठ की शिक्षा के सम्बन्ध में पूछते हैं[2]। जिसके उत्तर स्वरूप ग्रामणी-हिंसा, चोरी, काममिथ्याचार, झूठ को नरकगामी बतलाते हुए कहता है कि जो-जो अधिक करता है वैसी ही उसकी गति होती है–

यं बहुलं यं बहुलं विहरति तेन तेन नीयतीति।

ग्रामणी द्वारा इस प्रकार निगण्ठ की शिक्षा प्रतिपादित करने पर भगवान् बुद्ध उसके आखिरी शब्द को पकड़ लेते हैं कि 'जो-जो अधिक करता है वैसी ही उसकी गति होती है' तो कोई भी व्यक्ति पाप कर्म से नरक में नहीं जायेगा, क्योंकि व्यक्ति के रात-दिन में पाप कर्म न करने का ही समय पाप करने के समय से अधिक है। चूंकि निगण्ठों के अनुसार अधिकता के आधार पर नीच गति होती है, इसलिए हिंसा न करने का समय अधिक हुआ और उसके आधार पर वह कम हिंसा के फल से मुक्त हो गया। इस प्रकार व्याख्या को सापेक्षता के आधार पर मोड़कर निगण्ठों की शिक्षा को उलटा सिद्ध कर देते हैं।

यहाँ पर भगवान बुद्ध ने निगण्ठों की शिक्षा को गलत ढंग से लिया है। ग्रामणी के कहने का जो तात्पर्य था, वह पाप न करने के समय-सापेक्ष से नहीं था कि जिसका समय अधिक होगा उसकी वैसी गति होगी, बल्कि सापेक्षता पाप कर्म की अधिकता से थी कि जो अधिक समय तक हिंसा या कोई पाप करेगा, उसको कम समय वाले से अधिक पाप लगेगा। इस प्रकार इस सुत्त में गलतफहमी से या बात को अनावश्यक रूप से घुमाकर निगण्ठनाटपुत्त की शिक्षा को उलटा सिद्ध किया गया है।[२]

कुलसुत्तं-

इस सुत्त में बतलाया गया है कि एक बार जब नालन्दा में दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था। निगण्ठनाटपुत्र ने अपने शिष्य असिबन्धक-पुत्रग्रामणी से कहा कि जाकर वह श्रमण गौतम के साथ वाद करे। जिसमें निगण्ठनाटपुत्त ने ग्रामणी को लाभ यह बतलाया कि उसका नाम प्रसिद्ध होगा कि उसने इतने बड़े महानुभाव श्रमण गौतम के साथ वाद किया है। दूसरा लाभ दो तरफा प्रश्न पूछने से होगा। जिसे श्रमण गौतम न तो निगला सकेगा न उगला सकेगा अर्थात् दोनों उत्तर में वे फँस जाएँगे। ग्रामणी का यह दोतरफा प्रश्न इस प्रकार था- क्या आप श्रमण गौतम अनेक प्रकार से कुलों के उदय, रक्षा अनुकम्पा का वर्णन करते हैं? भगवान के हाँ कहने पर ग्रामणी कहता है कि यदि आप कुलों की रक्षा के लिए वर्णन करते हैं तो क्यों इस दुर्भिक्ष में जब लोगों के प्राण निकल रहे हैं, मरे हुए मनुष्यों की उजली-उजली हड्डियाँ बिखरी हुई हैं, लोग सूखकर सलाई बन गये हैं, फिर भी आप इतने बड़े संघ के साथ चारिका कर रहे हैं? क्यों कुलों के नाश और अहित के लिए तुले हुए हैं ? जिसके उत्तर में भगवान बुद्ध कुलों के नाश के ८ कारण बताते हैं। वे इक्यानवे कल्प की बात स्पष्ट करते हैं लेकिन उनको ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता कि कोई भिक्षा देने से नष्ट हुआ हो, इसमें तो वह सम्पत्तिशाली होता है।[३]

देसनासुत्तं-

वही असिबन्धकपुत्त ग्रामणी जिसे निगण्ठ का शिष्य बतलाया गया है, गौतम बुद्ध के पास आकर दोतरफा प्रश्न पूछता है क्या आप सभी प्राणियों के प्रति शुभेच्छा और दया से विहार करते हैं? भगवान् के हाँ कहने पर पुनः पूछता है कि फिर वे किसी को बहुत अधिक प्रेम से और किसी को कम प्रेम से उपदेश क्यों करते हैं।

जिसके उत्तर में भगवान् गौतम बुद्ध अपनी बात कृषक के तीन खेतों की उपमा से समझाते हैं कि जिस प्रकार कोई कृषक पहले (प्रथम) अच्छे वाले, फिर मध्यम एवं उसके बाद बुरे खेत में बीज बोता है, उसी प्रकार उनके भी भिक्षु-भिक्षुणियाँ प्रथम खेत के समान, उपासक-उपासिकाए मध्यम खेत के समान एवं दूसरे मतवाले श्रमण, ब्राह्मण और परिव्राजक अन्तिम बुरे खेत के समान हैं। दूसरी उपमा तीन प्रकार के मटकों से भी दी हैं जिससे असिबन्धक पुत्त ग्रामणी संतुष्ट हुआ।[४]

असिबन्धकपुत्तसुत्तं -

इस सुत्त में असिबन्धक पुत्त ग्रामणी भगवान् गौतम बुद्ध से कहता है कि पश्चिम वाले ब्राह्मण मरे लोगों को बुलाकर स्वर्ग भेज देते हैं फिर भगवान् गौतम सम्यक् सम्बुद्ध हैं ऐसा क्यों नहीं करते कि सारा लोक मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो। जिसके उत्तर में भगवान् उपमा देकर समझाते हैं कि कोई पत्थर जलाशय में छोड़ दे और फिर बुलाये (हाथ जोड़कर पूजाकर आदि) कि ऊपर आ जा, लेकिन वह पत्थर ऊपर नहीं आता उसी प्रकार बुरे कर्मों का बुरा फल अवश्य मिलेगा। किसी की गति बदली नहीं जा सकती।[५] यद्यपि इन दो सुत्तों में निगण्ठ का नाम किसी भी प्रकार से नहीं आया है। लेकिन असिबन्धक पुत्त ग्रामणी निगण्ठों का श्रावक था तथा उसके प्रश्न भी कुछ तो टेढ़े ही हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि दूसरे मतावलम्बी उलझाने वाले प्रश्न ही पूछते थे।[६]

नालन्दा के पास **नालकग्राम** है जिसे मगध प्रदेश में वर्णित किया गया है। जम्बूखादक नाम परिव्राजक ने सारिपुत्र के पास आकर निर्वाण के सन्दर्भ में जिज्ञासा प्रकट की जिसके उत्तर में भगवान् बुद्ध कहते हैं-राग, द्वेष एवं मोह को हटा देना निर्वाण है, तथा आर्य अष्टाङ्गिकमार्ग को निर्वाण प्राप्ति एवं साक्षात्कार का उपाय बतलाया गया है सम्यग्दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कार्य, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि– इसे भद्रमार्ग बतलाया गया है तथा कहा गया है साधक को प्रमाद नहीं करना चाहिए।[७] नालक ग्राम के कई सुत्त हैं।

भरतसिंह उपाध्याय के अनुसार भ. महावीर का जन्म वैशाली में होने के कारण उन्हें वैशालिक कहकर पुकारा जाता था, वैशाली में उनके १२ वर्षावास भी व्यतीत हुए थे, लेकिन निगण्ठनाटपुत्त को अधिकतर नालन्दा में ही निवास करते देखते हैं।[८]

यहाँ पर मात्र संयुत्तनिकाय के कुछ सुत्तों के आधार पर नालन्दा में उपदिष्ट सुत्तों के विषय की चर्चा की गई है जो महत्वपूर्ण एवं रोचक है। यदि समस्त त्रिपिटक में प्राप्त इसी प्रकार के सन्दर्भों को एकत्रित किया जाय तो इसमें नालन्दा का गौरव बढ़ेगा तथा हजारों वर्ष पूर्व दिए गए उपदेशों का साक्षात्कार प्रत्यक्ष हो सकेगा। विशाल योजना में तो इन महत्त्वपूर्ण सुत्तों को (उपदेशों को) शिलालेखों में भी उत्कीर्ण कराया जा सकता है।

संदर्भ-विवरण

१. बौद्धकालीन भारतीय भूगोल, डॉ. भरत सिंह उपाध्याय -प्रकाशक-हिन्दी साहित्य सम्मेलन;प्रयाग, संवत् २०१८, पृ. ६३
२. संयुत्तनिकाय, सङ्खधम्मसुत्तं, नवनालन्दा महाविहार संस्करण, ४२/८ IV, पृ. २८१
३. संयुत्तनिकाय, कुलसुत्तं, नवनालन्दा महाविहार संस्करण, ४२/६ IV, पृ. २८५
४. संयुत्तनिकाय, सेतूपम्मसुत्तं, नवनालन्दा महाविहार संस्करण, ४०/७ VI, पृ. २७८
५. संयुत्तनिकाय, असिबन्धकसुत्तं, नवनालन्दा महाविहार संस्करण, ४०/६ IV, पृ. २७६
६. संयुत्तनिकाय, निगण्ठनाटपुत्तसुत्तं, नवनालन्दा महाविहार संस्करण, ४१/८ IV, पृ. २६५
- संयुत्तनिकाय में जैन सन्दर्भ, लेख-डॉ. विजयकुमर जैन, श्रमण, अक्टूबर-१६८२, श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू युनिवर्सिटी, बनारस
७. संयुत्तनिकाय, जम्बूखादकसुत्त, नवनालन्दा महाविहार संस्करण, ३८/१
८. बौद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ. ३६३

बौद्ध-धर्म एवं उड़ीसा

उड़ीसा भारत का पूर्वी समुद्रीय तटवर्ती प्रदेश है। प्रारंभ से लेकर (ईसा पूर्व छठी शती) आज तक यह धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। वर्तमान उड़ीसा को उत्कल, कलिंग आदि नाम से पालि एवं बौद्ध साहित्य में उद्धृत किया गया है। संस्कृत परम्परा में इसे उत्कल कहा गया है। बुद्धकालीन जम्बूद्वीप उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में समुद्रतट तक, पूर्व और दक्षिण में गंग सुह्म/सुहिय (सुम्भ) उत्कल कलिंग से लेकर पश्चिम में सिन्धु सौबीर और उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान और काश्मीर तक फैला हुआ प्रदेश था। गोदावरी नदी से लेकर महानदी तक का प्रदेश कलिंग जनपद कहलाता था, इस जनपद के दक्षिण में आन्ध्र (अन्धक) राष्ट्र था और उत्तर में उत्कल (उक्कल) प्रदेश। अर्थात् उड़ीसा का उत्तरी भाग उक्कल (उत्कल) कहलाता था और दक्षिण भाग कलिंग।

पालि साहित्य में विभिन्न सन्दर्भ-

पालि साहित्य भारतीय भौगोलिक इतिहास का प्रामाणिक कोश है जिसमें भौगोलिक स्थिति, राष्ट्रों के नाम, जनपद, गांव की स्थिति का चित्रण तथा विभिन्न नदियों, उपवन, जंगल, नदियों आदि भौगोलिक सामग्री का महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। त्रिपिटक में १६ जनपदों का उल्लेख मिलता है।

अंगुत्तरनिकायपालि में सोलह महाजनपदों की नामावली इस प्रकार दी गई है-

१. अंग, २. मगध, ३. काशी, ४. कोशल, ५. वज्जी, ६. मल्ल, ७. चेदि, ८. वंस, ६. कुरू, १०. पांचाल, ११ मत्स्य, १२ सूरसेन, १३. अस्सक, १४. अवन्ती, १५. गन्धार, १६. कम्बोज।

दीघनिकाय के महागोविन्द सुत्त में इस महापृथ्वी को सात भागों में विभाजित इस प्रकार किया गया है।

१. कलिंग, २ अश्वक, ३ अवन्ती, ४. सौवीर, ५ विदेह, ६ अंग और काशी।

सोलह जनपदों में ये आठ जोड़ियां गिनी जाती थी-

१. अंग-मगध	२. काशी-कौशल
३. चेदि-वत्स	४. वज्जि-मल्ल
५. मत्स्य-शूरसेन	६. कुरु-पंचाल
७. गान्धार-कम्बोज	

महागोविन्दसुत्त में भगवान् को राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते हैं। इस सुत्त में अतिप्राचीनकालीन राजा रेणु के समय के जम्बूद्वीप के राजनैतिक भूगोल का वर्णन है। इस सुत्त के अनुसार राजा रेणु के ब्राह्मण मंत्री महागोविन्द ने सम्पूर्ण जम्बूद्वीप

को सात राजनैतिक भागों मे बांटकर प्रत्येक राज्य की अलग-अलग राजधानी स्थापित की थी।

राज्य	राजधानी
१. कलिंग	दन्तपुर
२. अस्सक	पोतन
३. अवन्ती	महिस्सति
४. सोवीर	रोरूक
५. विदेह	मिथिला
६. अंग	चम्पा
७. काशी	वाराणसी

रायचौधरी-दन्तपुरी को ही पुरी मानते हैं।

अनेक जातक-कथाओं में भी कलिंग और उसकी राजधानी दन्तपुर का उल्लेख है तथा निद्देस में भी। इन सबसे मालूम पड़ता है कि दन्तपुर काफी प्राचीन और सुविदित नगर था। महापरिनिब्वाणसुत्त में भगवान बुद्ध की दाढ़ (दाठा) के कलिंग देश के राजा के राज्य में पूजित होने का उल्लेख है। सिंहली वंस-ग्रन्थों से पता चलता है कि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद ही उनका दन्त-धातु कलिंग देश ले जाया गया था, जहाँ के राजा ब्रह्मदत्त ने उस पर एक चैत्य की स्थापना की थी। उत्तरकालीन "दाठावंस" के अनुसार लंका के राजा कीर्तिश्री मेघवर्ण के शासनकाल में यह दन्त-धातु चतुर्थ शताब्दी में दन्तपुर से लंका अनुराधपुर नगर में ले जाया गया और आज वह काण्डी के एक भव्य चैत्यालय में सुरक्षित बताया जाता है। दन्तपुर की आधुनिक पहचान अभी पूर्ण निश्चित ढंग से नही की जा सकती है। कनिंघम ने इसे गोदावरी के तट पर स्थित राजामहेन्द्री नामक स्थान से मिलाया था। कुछ विद्वानों के मतानुसार दन्तपुर सम्भवतः मेदिनीपुर जिले के आधुनिक दाँतन नामक स्थान है। गजाम जिले के दन्तवकम् नामक जिले के रूप में प्राचीन दन्तपुर नगर की स्मृति सुरक्षित है, ऐसा डा. हेमचन्द्र रायचौधरी का अभिमत है।[१]

उक्कल- उक्कल जनपद भगवान बुद्ध के जीवनकाल में सुविदित जनपद था। इस जनपद के वत्स और भज्जि नामक दो नास्तिकवादियों (नात्थिवादिओं) का उल्लेख संयुत्तनिकाय के निरुत्तिपथसुत्त में किया है। विनयपिटक[२] और जातक[३] में भी इसके उल्लेख पाए जाते हैं। अपदान में उक्कल जनपद के दो भाग ओडड (ओड्र) और ओक्कल (उत्कल) का वर्णन है। श्री भरतसिंह उपाध्याय ने अपने बौद्धकालीन भारतीय भूगोल[४] में माना है कि यह ओड्ड जनपद उड़ीसा में ही था।

लामा तारानाथ के ओडविश नामों से तात्पर्य उत्तरकालीन इतिहास में पूरे उड़ीसा से लिया जाने लगा। युआन् चुआड का वु तु प्रदेश भी उड़ीसा के उत्तर में ही

था। क्योंकि उसके दक्षिण पश्चिम १२००ली की यात्रा के पश्चात् चीनी यात्री ने अपना आना कुंग यु तो अर्थात् कोङ्गोद नामक देश में दिखाया है। फिर १४०० या १५०० ली दक्षिण पश्चिम चलने के पश्चात् उसने कलिंग पहुंचना दिखाया है जिसे उड़ीसा को दक्षिण माना हैं।

लामा तारानाथ के इतिहास से वर्णित है कि राजा विगताशोक के समय-ओडिवश देश में राघव नाम का ब्राह्मण हुआ। वह भोगसम्पन्न और त्रिरत्न के प्रति गुरुकार करने वाला था। उसको स्वप्न में देवता ने प्रेरित किया-

'प्रातः तुम्हारे घर में एक भिक्षु भिक्षा ग्रहण करने के लिए आयेगा। वह बड़ा प्रभावशाली और महान् ऋद्धिमान होने से सर्वदिशाओं के आर्य (संघ) को एकत्रित करने में समर्थ है। (तुम) उससे प्रार्थना करना प्रातःकाल अर्हत् पोषण उनके घर में आए तो उनसे प्रार्थना की और लगभग ८०,००० आर्य के एकत्र होने पर (उसने) तीन वर्षों तक (धार्मिक) उत्सव मनाया। फलतः शासन में श्रद्धा वाले देवताओं ने उनके घर में रत्नों की वर्षा की। वह जीवन पर्यन्त १,००,००० भिखारियों को प्रतिदिन दान देकर सन्तुष्ट करता रहा। राजा विगताशोक कालीन आठवीं कथा- (लामा तारानाथ कृत बौद्धधर्म का इतिहास पृ. ३१)

पाद टिप्पण में कहा गया है कि- (उत्तरी आख्यानों के अनुसार विगताशोक राजा अशोक का भ्राता था।)

ज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान समाधि से उठ मुचलिन्द के नीचे से गए, जहां राजायतन वृक्ष था, वहां पहुंचकर राजायतन के नीचे सप्ताह भर विमुक्ति का आनन्द लेते हुए एक आसन में बैठे रहे। उस समय तपस्सु और भल्लिक (दो) व्यापारी उत्कल देश से उस स्थान पर पहुंचे।

उनकी जात विरादरी के देवता ने तपस्सु मल्लिक वनजारों से कहा-मार्ष-बुद्धपद को प्राप्त हो भगवान राजायतन के नीचे विहार कर रहे है, जाओ, उन भगवान् को मट्ठे और लड्डू (मधुपिंड) से सम्मानित करो। यह दान तुम्हारे लिए चिरकाल तक हित और सुख का देने वाला होगा।

तब तपस्सु और भल्लिक वनजारे मट्ठा और लड्डू लेकर जहां भगवान थे, वहां गए। पास जाकर अभिवादन कर एक तरफ खड़े हो गए भगवान से कहा- भन्ते! हमारे मट्ठे और लड्डू को स्वीकार कीजिए जिससे चिरकाल तक हमारा हित और सुख हो।

भगवान ने सोचा- तथागत हाथ में ग्रहण नहीं करते, मैं मट्ठा और लड्डू किस पात्र में ग्रहण करूं? तब चारों महाराजा भगवान के मन की बात जान चारों दिशाओं से चार पत्थर के पात्र भगवान के पास ले गए और भोजन किया और तब तपस्सु और भल्लिक वनजारों ने भगवान् से कहा भन्ते! हम दोनों भगवान् तथा धर्म की शरण जाते

हैं। आज से भगवान् हम दोनों को साञ्जलि शरणागत उपासक जानें।

संसार में वहीं दोनों दो वचन से (बुद्ध एवं धर्म) प्रथम उपासक हुए (महावग्ग)

कलिंग

सातवीं शताब्दी ईस्वी में चीनी यात्री यूआन् चुआङ् ने कलिंग देश की यात्रा की थी। उसने इस प्रदेश में "कुग्-यु-तो" (गंजाम) से १४०० या १५०० 'ली' (करीब २३३ से लेकर २५० मील तक) घने जंगल में यात्रा करते हुए प्रवेश किया था। कलिंग देश का विस्तार यूआन् चुआङ् ने, जैसा उसने उसे उस समय देखा, ५००० 'ली' (करीब ८३३ मील) और उसकी राजधानी का २० 'ली' (करीब ३ मील) बताया है। यूआन् चुआङ् ने कलिंग देश को अधिकतर एक उजड़े हुए प्रदेश के रूप में पाया था। एक महायानी सूत्र के आधार पर यूआन् चुआङ् ने कहा है एक पूर्वकालीन ऋषि के क्रोधपूर्वक शाप देने के कारण दण्डकारण्य, कलिंगारण्य और मातंगारण्य उजाड़ हो गये थे। इसी प्रकार की अनुश्रुति मज्झिमनिकाय के उपालि-सुत्त में, मिलिन्दपञ्हपालि में तथा मातंग जातक में भी निहित है। कलिंगारण्य गोदावरी और महानदी के बीच का वन था।

वेस्सन्तर (महावेस्सन्तर) जातक में कलिंग राष्ट्र के एक दुन्निवित्थ या दुन्निवट्ठ नामक गांव का उल्लेख है। इसी जातक में दुन्निवित्थ या दुन्निवट्ठ नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है, जिसे जेतुत्तर नगर से बीस योजन, कोन्तिमार नदी से दस योजन और अरंजगिरि से पांच योजन दूर बताया गया है। जातक के इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ही नाम के ये दो गॉव भिन्न-भिन्न थे। दुन्निविट्ठ ब्राह्मण-ग्राम को हमें जेतुत्तर और चेत रट्ठ के बीच में मानना चाहिये, जब कि हमारा यह ग्राम निश्चित रूप से कलिंग राष्ट्र में था।

कुम्भवती नामक नगर को भी भरतसिंह ने कलिंग जनपद में ही माना है। यह राजा दण्डकी की राजधानी था। इस राजा की दुष्टता के कारण ही कलिंग जनपद उजाड़ हो गया था, इन्द्रिय जातक के अनुसार ऋषि किसवच्छ ने कुम्भवती नगर में निवास किया था।

डॉ० ओल्डनवर्ग पालि का कलिंग देश की भाषा मानते हैं क्योंकि

– लंका के पड़ोसी होने के कारण कलिंग से ही लंका में धर्मोपदेश का कार्य शताब्दियों के अन्दर सम्पादित किया गया।

–खारवेल के खण्डगिरी अभिलेख से पालि का अधिक साम्य है तथा कलिंग के निवासियों ने लंका में बुद्ध धर्म का प्रचार किया है इसमें कई शताब्दियां लगी।[५]

मैक्स. मूलर भी कलिंग को ही पालि का उद्‌गम स्थल मानते हैं। कारण यहीं से सबसे पहले लोगों का लंका में जाकर बसना और धर्म प्रसार करना अधिक संगत है।[६]

सूनोपरान्त जनपद का उल्लेख पुण्णसुत्त में हैं

संयुत्तनिकाय के ओकिलनी सुत्त में कलिंग राजा का उल्लेख हैं।

चरियापिटक में ......पंचाल और कलिंग देश का भी निर्देश है।[७]

मज्झिमनिकाय के उपालि सुत्त में कलिंगारण्य का उल्लेख है। उपालिसुत्त में वर्णित है कि दंडकारण्य, कलिंगारण्य, मेध्यारण्य, मातंगारण का अरण्य होना मुनियों के कोप का परिणाम है।

दीघनिकाय के महागोविन्द सुत्त में कलिंगराज्य और उनकी राजधानी दन्तपुर का उल्लेख है।

महापरिनिब्बानसुत्त में वर्णित है कि चक्षुमान (बुद्ध) का शरीर (अस्थि) अष्ट द्रोण था। जिसमें से सात द्रोण जम्बूद्वीप में पूजित होते हैं और एक द्रोण राम ग्राम में नागों से पूजा जाता है। एक दाढ़ स्वर्गलोक में पूजित है एक गन्धपुरी में पूजी जाती है एक कलिंगराजा के देश में है और एक नागराज पूजते हैं।

उड़ीसा की नई राजधानी होने के पूर्व भी भुवनेश्वर का इतिहास गौरवमय है। अशोक ने इसके समीप पांच मील की दूरी पर धौली पर्वत पर धर्म शासन अंकित कराया था। राज्यारोहण के आठवें वर्ष में उसने कलिंग पर आक्रमण किया था और इस भूभाग को जीतकर ही धर्मलेख खुदवाया होगा। अन्य स्थानों पर अशोक के चौदह लेख अंकित हैं। धौली पहाड़ी पर ११, १२, तथा १३वें शिलालेखों के स्थान पर अन्य दो लेखों को स्थान दिया गया। अशोक ने (ई.पू. तीसरी सदी) दूसरे लेख में तोमली (धौली की प्राचीनता के महामंत्री को सम्बोधित करते हुए यह घोषणा की कि समस्त प्रजा मेरी संतान है।

भुवनेश्वर के समीप विशुपाल गढ़ की खुदाई से कलिंग नामक नगर की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है वही खारवेल की राजधानी थी।[८]

उड़ीसा शैली के मंदिरों की बाह्य दीवार पर खुदे आकार, कलाकार के मस्तिष्क के विचारों को व्यक्त करते हैं। दीवारों पर ताख या गहरे स्थान पर मूर्तियों को खोदा गया है, जो मंदिर के आगे सदृश है। इस तरह के श्रृंगारिक प्रदर्शनों के तीन कारण हो सकते हैं– १. तन्त्र मंत्र का प्रभाव २. मिथुनयुग्म का सर्वोपरि स्थान, ३. उपासकों को उपदेश। मध्ययुग में तंत्रयान या मन्त्रयान का प्रसार पूर्वी भारत में हो गया था। तंत्रमार्ग में शक्ति पुरुष के मेल को महासुख कहते हैं।[६]

उत्तरकालीन बौद्धतांत्रिक धर्म में 'ओडियान' नामक स्थान या प्रदेश की ख्याति एक सिद्ध पीठ के रूप में अधिक रही विद्वानों ने उसे उड़ीसा, बंगाल या असम में ही स्थित माना है। उड़ीसा प्रदेश की राजधानी भुवनेश्वर के समीप उदयगिरि तथा खण्डगिरि को खोदकर कई गुफाएं तैयार की गई, जो ईस्वी सन् पूर्व में उत्कीर्ण हुई थी। उड़ीसा की गुफाएं जैनधर्म से सम्बन्ध रखती हैं। पूर्वी भारत की गुफा निर्माण प्रथा में चैत्य का अभाव है।

खण्डगिरि में अनन्त गुफा, उदयगिरि में रानी गुफा- रानी गुफा में ज़ैन लेख निम्न प्रकार हैं-

अरहंत पसादाय कलिंगानसमनानं
लेन कारितं कलिंग चक्रवतिनो
सिरि खारबेलस अगमहिसि या कारितं।।

कलिंग राजा खारवेल की रानी (महिषि) ने मुनि महावीर की कृपा से कलिंग के जैन भिक्षुओं के लिए यह लेख (गुहा) निर्मित करायी।

पूर्वी भारतीय समुद्रीय लट पर उड़ीसा प्रदेश है इसमें एक स्थान पर मंदिरों का विकास हुआ। भुवनेश्वर को मंदिरों का शहर कहा जाता है। सातवीं सदी से तेरहवीं शताब्दी तक उड़ीसा में असंख्य मन्दिरों का निर्माण हुआ। शासकों ने स्थापत्य कला को प्रोत्सहित किया तथा इस्लाम का प्रवेश न हो सका।

भगवान बुद्ध को जब ज्ञान प्राप्त हुआ, उसके पूर्व सुजाता की खीर जगत में प्रसिद्ध है लेकिन ज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान बुद्ध को आहार देने वाले उत्कल प्रदेश के तपस्सु एवं भल्लिक का भी जन सामान्य में जो सम्मान व प्रचार होना चाहिए, नहीं है। तपस्सु एवं भल्लिक का श्रेष्ठ उपासक के रूप में तथा आदर्श के रूप में इनका प्रचार होना चाहिए।

भारतीय इतिहास में कलिंग युद्ध के बाद राजा अशोक के हृदय परिवर्तन की घटना कलिंग की जनता की गाथा दुहराती है तथा बौद्ध शिक्षाओं के प्रभाव भी दिखलाती है।

न हि वैरेन वैरानि सम्मन्तीध कुदाचन।
अवैरेन च सम्मन्तीध एस धम्मो सनन्तनो।।

कलिंग युद्ध के बाद मौर्य सम्राट की सम्पूर्ण युद्धनीति ही परिवर्तित हो गई। उस समय का सम्पूर्ण वातावरण ही मानवता विनाशक मुद्दों से विमुख हो गया। युद्धों से भयभीत समाज शान्त और सुखी रहने लगा। श्री रायचौधरी का विचार है कि कलिंग विजय भारत और मगध के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है इसके पश्चात राजा और सम्राटों की राज्य विस्तार की लालसा और संघर्ष की नीति लुप्त हो गई। - - एक नवीन दृष्टिकोण अपना लिया। जिसके फलस्वरूप सारे राज्य में सामाजिक संगठन धार्मिक प्रचार और शांति स्थापित हो गई।

"पत्थरों पर खुदे हुये सम्राट् अशोक के ये आदेश एक राजा के हृदय परिवर्तन के स्मारक तो हैं ही एवं इतिहास के लिये उनकी लिपि और भाषा की उपयोगिता भी कुछ कम नहीं है। भारतीय वाङ्मय और धर्म के विकास में उनका अपना एक स्थान है।" भगवान् बुद्ध की वाणी को भारत से बाहर प्रचारित करने वाला एवं भगवान् बुद्ध को

एशिया का प्रकाश स्तम्भ बताने वाला यदि सचमुच देखा जाये तो सम्राट् अशोक ही इस कार्य को करने वाला प्रथम व्यक्ति था। अशोक ने इतिहास को अपने अभिलेखों (धर्म लेखों) के माध्यम से वास्तविक प्रमाण दिये हैं और बौद्ध धर्मको स्थायित्व दिया है। कलिंग का युद्ध ने ही सम्राट अशोक को बौद्धधर्म की ओर प्रवृत्त किया। भगवान् बुद्ध के त्यागमय जीवन का भी उस पर प्रभाव पड़ा। [१०]

सम्राट् अशोक स्वयं भी हिंसावृत्ति के कार्यों से आत्मिक शान्ति न पा सका था। अतः उसने सर्वप्रथम बौद्धधर्म के सिद्धान्तों के अनुरूप अपने जीवन को बनाने की सोची। अशोक का प्रथम अभिलेख इसका प्रमाण है।

संदर्भ-विवरण

१. बौद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ. ४६८
२. विनयपिटक, हिन्दी पृ. २१२
३. जातक, प्रथम खण्ड पृ. १०३
४. बौद्धकालीन भारतीय भूगोल, ४६५-४६६
५. ओल्डनवर्ग द्वारा रोमन में सम्पादित विनयपिटक पहली जिल्द, १-५६ भूमिका)
६. भरतसिंह उपाध्याय - पालि साहित्य का इतिहास से उद्धृत, पृ १४
७. बौद्धधर्म और विहार पृ. ३३०
८. प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मंदिर पृ. २२०
६. बौद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ. ४८२
१०. प्राचीन राजवंश और बौद्धधर्म पृ. १६३-१६४

• • • •

बौद्ध धर्म में अहिंसा एवं पर्यावरण

बौद्धधर्म में अहिंसा को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। '**धर्म समासतोऽहिंसा वर्णयन्ति तथागताः**' के अनुसार समस्त धर्म का सार अहिंसा हैं भगवान बुद्ध एवं महावीर के कारण भारतीय धार्मिक परम्पराओं में व्याप्त याज्ञिक हिंसा पर लगाम लगी एवं वैदिक परम्परा में इतने परिवर्तन हुए कि वहाँ पर भी '**अहिंसा परमो धर्मः**' का जयघोष हुआ। भगवान् बुद्ध ने अहिंसामयी वातावरण के आधार पर सामाजिक पर्यावरण को शुद्ध करने का सफल प्रयास किया।

संस्कृति एवं सभ्यता के इतिहास को देखने से पता चलता है कि पहले जहाँ '**जीवो जीवस्य भोजनम्**' '**देवो दुर्बल घातकः**' बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है- की मान्यताएं प्रचलित थीं, वहीं पर '**परस्परोपग्रहो जीवानाम्,**' '**वसुधैव कुटुम्बकम्**', '**अहिंसा परमोधर्मः**' '**मिलबाट कर खाओ**' के सिद्धान्तों की मान्यता मिली। प्रसिद्ध विदेशी विद्वान रोम्यांरोलां का कहना है कि जिन महर्षियों ने हिंसा के बीच अहिंसा के सिद्धान्त को चुना उनकी खोज को मैं न्यूटन जैसे बुद्धिमान, विलिंगटन जैसे योद्धा की खोजों से विशिष्ट मानता हूँ।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में जब भगवान् बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय मुख्य समस्या आन्तरिक पर्यावरण की थी। धार्मिक एवं दार्शनिक जगत में व्याप्त बुराइयों को भगवान ने अतियों के रूप में देखा, अत्यधिक कामसेवन एवं कठोर तपस्या के त्यागपूर्वक आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की शिक्षा दी गई। शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद के विचार को त्याग के साथ 'प्रतीत्यसमुत्पाद' के मनन करने की सलाह दी गई।

मध्यममार्ग में दो अन्तों के त्याग की बात कही गई-अत्यधिक कठोर तपस्या और अत्यधिक काम-सेवन का त्याग। यह जो अत्यधिक काम सुख-सेवन का त्याग है-इसमें आधुनिक पर्यावरण-संरक्षण के बीज मिलते हैं क्योंकि इच्छा और भोग ने सुखवादी और सुविधावादी दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया है और पर्यावरण-संतुलन को विनष्ट किया है। अहिंसा का सिद्धान्त आत्मशुद्धि का है और पर्यावरण-शुद्धि का भी है।

तृष्णा के वशीभूत होकर आज मानव प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रहा है, जिससे पर्यावरण-संतुलन बिगड़ रहा है। इसीलिए भगवान बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं में तृष्णा को समूल नाश करने की शिक्षा दी है।[1] भगवान् बुद्ध द्वारा स्थापित संघ में भी इस बात का पूरा प्रयास किया गया है कि तृष्णावान, लालची या भोगियों को संघ में कोई स्थान नहीं मिले। इस प्रकार संघ में आन्तरिक प्रदूषण तो दूर किया ही गया, बाह्य प्रदूषण

को भी दूर करने का प्रयास किया, जिसे आज हम 'पर्यावरण' कहते हैं। प्राकृतिक संसाधनों के सन्दर्भ में भी भगवान ने संघ के नियमों में स्थान दिया। भगवान बुद्ध ने 'हिंसा' को संघ में सबसे बड़ा अपराध घोषित किया। पाराजिकों में से प्रथम पाराजिक दण्ड इसी से सम्बन्धित हैं।

पाराजिक- सबसे कठिन अपराध पाराजिक है। एक समय भिक्षुओं ने जंगल से बिना दी हुई लकड़ियां लाकर कुटी बनाई। राजा ने इस दुष्कृत्य की निन्दा की। भगवान के पूछने पर भिक्षुओं ने कहा- यह ग्राम से नहीं, जंगल से लाई हुई है। भगवान ने उनकी निन्दा कर शिक्षाप्रद प्रतिपादित किया कि जो भिक्षु ग्राम अथवा जंगल से चोरी समझी जाने वाली वस्तु को ग्रहण करे, उसे पाराजिक का दोष होता है।[२]

संघादिसेस- १३ संघादिसेस है। पर्यावरण से सम्बन्धित इसमें नियम हैं। छठवें संघादिसेस में कहा गया है कि कुटी बनवाते समय प्रमाणयुक्त बनवाना चाहिए, प्रमाण से अधिक या जीवहिंसायुक्त स्थान में कुटी बनवाने में यह दोष है। सातवें संघादिसेस में वर्णित है कि छन्न नामक भिक्षु ने कुटी बनवाने के लिए नगरवासियों द्वारा पूजित चैत्यवृक्ष कटवा दिया। जनपदवासियों ने इस दुष्कृत्य पर दुःख व्यक्त किया तब भगवान ने नियम बनाया कि हिंसायुक्त स्थान पर कुटी निर्माण में दोष है।[३]

निस्सग्गिय पाचित्तिय- आवश्यकता से एक कम चीवर रखना चाहिए। जब षड्वर्गीय कौषेय वस्त्र से निःसृत आसन की कामना करने लगे जिससे बहुत से सूक्ष्म जीवों का घात होता है तब भगवान ने यह नियम बनाया कि इसमें दोष है। दस दिन से अधिक अतिरिक्त लोहे या मिट्टी के पात्र रखने में यह दोष है।[४]

पाचित्तिय- भिक्षु नवकर्म करवाते थे जिससे एक इन्द्रिय जीवों की विराधना होती थी। तब भगवान ने शिक्षाप्रद प्रतिपादित किए कि जो भिक्षु पृथ्वी खोदें या खुदवाएं, उसे यह दोष है। इसी प्रकार नवकर्म करते करवाते समय वृक्षादि को काटकर फेंकने में भी यह दोष हैं, हरियाली पर चलने में भी दोष है। सूर्यास्त के बाद उपदेश देने में आमिष भोजन में यह दोष हैं, प्रमाण से अधिक चीवर रखने में भी दोष है।[५]

दुक्कट- दुक्कट से अभिप्राय दुष्कृत्य से है। इस सन्दर्भ में प्रमुख नियम इस प्रकार है-एक तल्ले से अधिक जूते धारण करने में, खड़ाऊं पहनने में, तृण, मूज एवं कमल आदि की पादुकाएं पहनने में यह दोष होता है। सिंह, गाय आदि के चर्म को धारण करने में यह दोष है।[६] मनुष्यमांस, घोड़ामांस, गाय आदि के खाने में यह दोष हैं[७]।

थुल्लच्चय- कुश का बना कपड़ा, वल्कल, मृगछालादि पहनने में यह दोष होता है।[८]

वर्षावास- भगवान बुद्ध ने वर्षा के दिनों में तृण एवं एक इन्द्रिय वाले जीवों की पीड़ा को सुनकर वर्षावास का विधान किया था। इस सन्दर्भ में वर्णित है कि भिक्षुओं

ने निवेदन किया है कि दूसरे तैर्थिक जीवों की दया का ध्यान रखकर वर्षावास करते हैं जिससे समाज में उनकी प्रतिष्ठा एवं यश फैलता है। भगवान बुद्ध ने वर्षावास का प्रावधान किया।[१०] वनदेवता भिक्षुओं को जंगल का वैभव बतलाता हैं।[११] एक बार भिक्षुओं के चले जाने पर वनदेवता विलाप करता है और जंगल को सूना बतलाता है।

एक भिक्षु द्वारा मन में बुरे संसारी वितर्कों के लाने पर वनदेवता ने भिक्षु को होश में लाने के विचार से कहा-विवेक की कामना से बैठें, उनका मन भाग रहा है जिस प्रकार पक्षी पंख फड़फड़ा कर पंख से धूल अलग कर देता है उसी प्रकार स्मृतिमान भिक्षु को मन के राग को फड़फड़ा कर झाड़ देना चाहिए।[१२]

भगवान बुद्ध के संघ में उपासक-उपासिकाएं एवं भिक्षु-भिक्षुणियां सम्मिलित है। उपासकों के लिए पंचशीलों का पालन करना अनिवार्य है एवं भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए पातिमोक्ख में वर्णित २२७ एवं ३११ नियम है। पंचशीलों में सभी प्रकार की हिंसा का त्याग, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य एवं नृत्यगीत, माला धारण एवं संगीत, सुवर्ण एवं अमूल्य शय्या का त्याग है।[१३] ये पांच गृहस्थों के लिए हैं और (पूर्व ५ सहित) दस प्रव्रजितों के लिए है। इनमें पर्यावरण संरक्षण के सूत्र मिलते हैं। भगवान बुद्ध ने बौद्ध धर्म में सबसे प्रारंभिक सिद्धान्त के रूप में पंचशीलों का प्रतिपादन किया है जो सामाजिक पर्यावरण को सन्तुलित एवं सुरक्षित रखने वाले है। पंचशीलों में प्रथम चार सामाजिक पर्यावरण के सूत्र हैं। पंचमशील 'माला-गन्धविलेपन का त्याग' में अत्यधिक भोगवादी संस्कृति को दूर कर पर्यावरण-संरक्षण वाले सिद्धान्त हैं।

बौद्ध धर्म में कायिक हिंसा, वाचसिक हिंसा एवं मानसिक हिंसा-तीनों की ओर ध्यान दिया गया है, जिसमें मानसिक हिंसा को विशेष महत्त्व दिया गया है-

मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया'
मनसा च पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।''
ततो नं दुखमन्वेति चक्कं वा वहतो पदम्।।'[१४]

संघ के अन्य नियमों में भी सूक्ष्म अहिंसा के पालन का भी ध्यान दिया गया। वनस्पतियों तक की सुरक्षा की बात कही गई। संयुत्तनिकाय में एक प्रसंग है-भिक्षु के फूल सूंघने पर भी देवता चोरी का आरोप लगाता है। भिक्षु द्वारा कहने पर कि वह न कुछ लेता है, न नष्ट करता है, दूर से ही फूल सूंघता है, जबकि दूसरे लोग पुण्डरीक की पूरी कुहनी उखाड़ देते हैं, उनको क्यों नहीं कहते ? वनदेवता ने कहा- कि मनुष्य धाई के कपड़े जैसा गन्दा है, उसे कहना बेकार है लेकिन भिक्षु निष्पाप पवित्रता के खोजने वाले हैं इसलिए उनको बाल की नोक के बराबर पाप को भी बादल के समान समझना चाहिए। देवता के इस प्रकार कहने पर भिक्षु ने अपनी गलती स्वीकार करते हुए कहा कि वह भविष्य में कोई ऐसी गलती करे तो वनदेवता सचेत करता रहे। उत्तर में वनदेवता ने

कहा कि वह कोई नौकर नहीं है। उन्हें वेतन नहीं मिला। भिक्षु स्वयं जाने और समझें। त्रिपिटक में त्रिकोटिपरिशुद्धिमांस/मच्छीमांस ग्रहण की बात कही गई है लेकिन बौद्ध साहित्य में मांसाहार विरोध के स्वर भी मिलते हैं यद्यपि देश, काल, परिस्थिति के अनुसार बौद्ध अनुयायियों को यह अनुपालनीय नहीं रहा, उन्होंने त्रिकोटि परिशुद्धि तक ही अपनी सीमा या मर्यादा बनाए रखी। लंकावतारसूत्र में विभिन्न तर्कों और दृष्टान्तों के माध्यम से मांस के दोष बतलाए गए हैं।[15] तथा त्रिकोटिपरिशुद्ध मांस को भी बुद्ध वचनों के विपरीत बतलाया गया हैं कुछ तथ्य इस प्रकार हैं-

- आज जो हमारे माता-पिता हैं, वे कल पशु-पक्षी हो सकते हैं। हम उन्ही का मांस खावेंगे। अतः मांस-भक्षण कैसे विहित माना जा सकता है ?

- प्राणि-मात्र पर दया करने वाले बुद्ध मांस-भक्षण की बात कैसे कर सकते हैं ?

- शिकारी को देखकर छोटे-छोटे प्राणी भयभीत होते हैं। उसकी गन्ध से वे ही भाग जाते हैं। मांस-भक्षी को कैसे धार्मिक कहा जा सकता है ?

- मांस-भक्षी को दुःस्वप्न दिखाई देते हैं। वह विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। मांस-भक्षी से समाज सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है।

- पूर्व जन्म में इन्द्र ने मांस-भक्षण किया। फलतः उसे दुःख भोगना पड़ा।

- लोग अभिमान तुष्टि के लिए प्राणी हिंसा करते हैं। यदि कोई मांस-भक्षण न करें तो प्राणी हिंसा क्यों होगी ?

- भिक्षु तथा उपासक को मांस-भक्षण नहीं करना चाहिए। त्रिकोटिपरिशुद्ध मांस भी विहित नहीं माना जा सकता।

- धर्मपालन के लिए मांस-भक्षण का त्याग आवश्यक हैं–

- बुद्ध ने अपने जीवन में मांस-भक्षण किया, यह कहना गलत है। ऐसा कहने वालों को कर्मबन्ध होगा।

- बुद्ध ने धर्म का भोजन माना है, मांस का भोज नहीं।

- मांस-भक्षण अनार्य है, दुर्गन्ध देने वाले हैं, अभक्ष्य है और अकीर्तिकर है।

- स्वयं उत्पन्न नहीं है, व्यभिचारी है। शुक्र खून से उत्पन्न होने के कारण तथा प्राणियों के दुःख देखकर मांस का त्याग करना चाहिए।

- योगी के लिए मांस, पलाण्डु, विविध मद्य और लहसुन त्याजनीय हैं

- मांसाहार से दर्प उत्पन्न होता है, दर्प से संकल्प, संकल्प से राग और राग से मूढ़ता प्राप्त होती है, मुक्ति नहीं।

- जो लाभ के लिए प्राणी की हिंसा करता है और जो मांस के लिए पैसा देता है। दोनों पापकर्मी नरक में दुःख प्राप्त करते हैं।

– जो मुनि के वाक्य का अतिक्रमण कर मांस का भक्षण करता है, वह दोनों लोकों को नष्ट करता है।

–त्रिकोटिपरिशुद्ध, मांस, अकल्पित मांस, अयाति मांस और अनागमिक मांस– ऐसी किसी बात का विधान नहीं किया गया है- इसलिए मांस नहीं खाना चाहिए।

– बुद्ध के द्वारा गर्हित होने के कारण मांस का भक्षण नहीं करना चाहिए।

– मांस-भक्षी कुल में हुए प्राणी एक दूसरे का भक्षण करते हैं। वे दुर्गन्धित, कुत्सनीय, उन्मत्त, चाण्डाल, अधम, डाकिनी और राक्षस कुल में उत्पन्न होते हैं।

– मांस का वर्जन करने से प्राणी उच्चकुल में उत्पन्न होता है, प्रज्ञावान और धनवान होता है।

– प्रत्यक्ष, आगम और अनुमान– सभी प्रकार से मांस वर्जन किया गया है, किन्तु मांस भक्षी उसमें विश्वास नहीं करते।

जिस प्रकार राग मोक्ष में अन्तराय करता है, उसी प्रकार मांस भी मोक्ष में अन्तराय करता है।

– भविष्यकाल में मांस भक्षी, मूढ़वादी, मांस को निर्दोष और बुद्ध के द्वारा कथित कहेंगे।

– मैत्री-बिहारी के लिए मांस भक्षण नित्य और सर्वदा गर्हित है।

– अतः दुःखदायी मांस भक्षण नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से लंकावतार सूत्र में मांस भक्षण का विरोध मिलता हैं असंग ने योगाचार-भूमि में सोलह परवादों का खण्डन किया है, उनमें एक है। 'हिंसा धर्मवाद' जो यज्ञ में मंत्रविधि के अनुसार हिंसा (प्राणातिपात) करता है, हवन करता है या जो इसमें सहायक होता है, सभी स्वर्ग जाते हैं, यह याज्ञिकों और मीमांसकों का मत हिंसाधर्मवाद है। कलियुग के आने पर ब्राह्मणों ने पुराने धर्म को छोड़ मांस खाने की इच्छा से (हिंसाधर्म) का विधान किया। हेतु, दृष्टान्त, व्यभिचार, मंत्र प्रणेता के सम्बन्ध से विचार करने पर यह वाद अयुक्त सिद्ध होता है।[१६]

इस प्रकार बौद्धधर्म में हिंसा का कोई स्थान नहीं हैं इसके विपरीत अहिंसा के विधायक रूप में चार ब्रह्मविहार की शिक्षा दी गई है-मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा। हिंसामयी वातवरण जहां पर प्रदूषण रूप में है, वहीं पर ये चार ब्रह्मविहार स्वच्छ पर्यावरण के रूप में है। संक्षेप में कहा जाय तो भगवान बुद्ध के इस कथन का स्मरण करना पड़ेगा कि सभी लोग दण्ड एवं मृत्यु से डरते है। इस प्रकार अपने से दूसरे की उपमा करके न किसी को चोट पहुंचाए और न मारे। भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित नियमों के पालन से एक अहिंसक समाज एवं स्वच्छ पर्यावरण की दिशा में हम बढ़ते हैं।

सन्दर्भ-विवरण

१. नन्दीसंयोजनो लोको, वितक्कस्स विचारणं।
तण्हाय विप्पहानेन, निब्बानं इति वुच्वती' ति।। - संयुत्तनिकाय प्र. १, पृ.३७

२. क. पातिमोक्ख पृ. ७,
ख. लेख संघ और पर्यावरण द्रष्टव्य आई. बी. सी. प्रोसीडिंग १९९५, पृ. ६६

३. पातिमोक्ख पृ. ११

४. पातिमोक्ख पृ. २१-२५

५. पातिमोक्ख पृ. ३४-६४

६. पातिमोक्ख पृ. ५६

७. चुल्लवग्ग

८. संक्षिप्तविनयपिटक १३४

९. पातिमोक्ख

१०. संयुत्तनिकाय प्रथम पृ. १९९

११. वही पृ. ३२

१२. वही पृ. १९८

१३. खुद्दकपाठ

१४. धम्मपद-यमकवग्ग

१५. 'क. लंकावतारसूत्र, अष्टम परिवर्त ख. लेख-बौद्धसाहित्य में मांसाहार का विरोध द्रष्टव्य-जीवन साहित्य, फरवरी १९८६ पृ. ६४

१६. बौद्धदर्शन, राहुल सांकृत्यायन पृ. ६२ से उद्धृत

• • • •

पालि साहित्य में प्रजातांत्रिक मूल्य

पालि साहित्य (त्रिपिटक) मूलतः बुद्ध वचन है। पश्चात् उसी त्रिपिटक को पोषक साहित्य, अनुपिटक, अट्टकथा साहित्य कहते है। पालि में लिखने वाले आचार्यों के सामने बुद्ध का अनुशासन विद्यमान है। भगवान् बुद्ध के समय भाषा के पक्ष की बात आने पर भगवान ने सकायनिरुत्तिया अपनी-अपनी भाषा में बुद्ध वचन संग्रह करने की बात कही थी। आधुनिक विद्वान प्रजातंत्र का अर्थ जनता का शासन करते हैं। भगवान् बुद्ध की शिक्षाएं **'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'** थी। इस घोषणा में ही प्रजातंत्र की आधारशिला रख दी गई है। 'भगवान ने भिक्षुओं को आदेश दिया था कि भिक्षुओं, एक साथ दो विचरण मत करो, बहुजन के हित एवं सुख के लिए विचरण करो। प्रचलित राजतंत्र में सभी के हित का ध्यान नहीं रखा जाता था, वर्ग विशेष एवं कुल विशेष की प्रधानता रहती है। माना जाता है कि जन्म से ही राजा के कुल में जन्में व्यक्ति का अधिकार हो जाता है, इसकी जड़ को काटते हुए बुद्ध ने यह घोषणा कर दी कि जन्म से कोई महान नहीं होता, कर्म से ही कोई महान होता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि तथागत बुद्ध ने संघ के स्वरूप में प्रजातंत्र का ढांचा विकसित किया था।

यह तो बहुत सामान्य बात है कि पालि ग्रन्थों में गणतंत्र प्रदेशों के नाम मिलते हैं। जैसे शाक्यों का कपिलवस्तु, कोलियों का रामग्राम, मौर्यों का पिप्पलिवन, मल्लों का कुसीनारा पावेय्यक, लिच्छवियों की वैशाली, इसी तरह तीन गणतंत्रों में मिथिला-विदेह, सुषुमारगिरि के भग्ग, कालाम केसपुत्त। शाक्यों के संस्थागार का उल्लेख मिलता है जिसका प्रारम्भ (उद्‌घाटन) भ. बुद्ध ने किया था। हम उन बिन्दुओं पर ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं जिनके कारण प्रजातंत्र का स्वरूप मजबूत होता है- संघ में प्रवज्या देते समय भिक्षुओं से पूछा जाता था, संघ की स्वीकृति के बाद ही प्रवज्या एवं उपसम्पदा का विधान था।

संघ में उपोसथ की व्यवस्था थी, जिसमें 15 दिन में एक निश्चित एरिया में रहने वाले भिक्षु उपस्थित होते थे, पातिमोक्ख का पाठ करते थे। इसमें व्यवस्था थी कि सभी लोग अपने-अपने दोषों का वर्णन करें तदनुसार ही दण्ड की व्यवस्था थी। भिक्षु द्वारा दोष छिपाए जाने पर दूसरा भी प्रकट कर देता था। इस प्रकार सूक्ष्मतया देखने से पता चलता है कि यहाँ के नियमों के विधान में तानाशाही व्यवस्था नहीं थी, तीन-तीन बार अनुमोदना का विधान था बुद्ध के

पश्चात् संगीतियों के माध्यम से जो बुद्धवचनों का संग्रह किया गया, उसमें प्रजातंत्र का स्वरूप प्राप्त होता है। – भगवान् बुद्ध के पश्चात् महाकाश्यप ने अनुभव किया कि बुद्धवचनों का संग्रह होना चाहिए। – इसमें तीन महीने पूर्व सभी विहारों के भिक्षुओं को सूचना दे दी गई, स्थान निश्चित हो गया, अध्यक्ष का निर्णय हुआ। विचार किया गया कि कैसे बुद्धवचनों का संग्रह किया जाय। –आनन्द को सुत्त के लिए तथा विनय के लिए उपालि को चुना गया। प्रत्येक सुत्त के संग्रह के पश्चात् संघ से अनुमोदना करायी गयी। इसमें **आनन्द की सदस्यता** (अर्हतत्व) को लेकर भी रोचक चर्चा है कि पहले आनन्द को प्रायश्चित लेना पड़ा, क्षमा याचना मागनी पड़ी। पश्चात् ही उसको इसके लिए अर्ह माना गया।

प्रथम सङ्गीति के बाद 100 वर्ष में संघ में 10 वस्तुओं के सेवन को लेकर विवाद खड़ा हुआ। कुछ भिक्षु दस वस्तुओं का सेवन करना चाहते थे, कुछ उनके पक्ष में नहीं थे, भगवान् बुद्ध ने कुछ **क्षुद्रक** नियम बना दिए थे जिनके प्रयोग करने पर दोष होता है अपराध नहीं, जैसे संविधान में जहाँ अधि कारों की चर्चा है वहीं नीति निर्देशक सिद्धान्तों का भी उल्लेख है, विवाद होने पर यहाँ पर बटवारा हो जाता है एक प्रकार से बुद्ध की भावना नहीं लागू होती है कि एक होकर निर्णय किया जाय तथा निर्णय होने पर उसे सभी स्वीकार करें। वृद्ध भिक्षु अपना अलग संघ बना लेते हैं जो स्थविरवाद के नाम से जाना गया तथा अधिक संख्या वाले भिक्षु महासांघिक कहलाए, मतभेद इतना बढ़ गया कि दोनों ने बुद्ध वचनों का संग्रह भी अलग-अलग किया। स्थविरवादियों ने जहाँ बुद्धवचनों का संग्रह पूर्व परम्परानुसार किया महासांघिकों ने संस्कृत भाषा में बुद्ध वचनों का संग्रह किया।

तृतीय संगीति सम्राट अशोक के समय सम्पन्न हुई। उसके बुलाने का कारण था कि बौद्ध सम्प्रदाय 18 सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था। अशोक ने मोग्गलिपुत्त तिस्स थेर की अध्यक्षता में यह निर्णय करना आवश्यक समझा कि वास्तविक बुद्धवचन क्या है ? इसमें ही प्रजातांत्रिक पद्धति का प्रयोग किया गया। विभिन्न पक्ष उपस्थित रखने के बाद निर्णय किया गया कि यह यही है शेष समुचित नहीं हैं। इसका विस्तार से प्रतिपादन कथावत्थु नामक रचना में किया गया है जिसे त्रिपिटक में समाहित किया गया है।

जब अशोक निर्णय कर लेते हैं कि स्थविरवाद ही सही है शेष नहीं तब बुद्धवचनों के प्रचार व प्रसार के लिए भी समुचित व्यवस्था की जाती है। बुद्धवचन शिलालेखों में उत्कीर्ण कराए जाते हैं तथा विभिन्न प्रदेशों में भिक्षुओं

को भेजा जाता है। श्रीलङ्का स्वयं उनके पुत्र एवं पुत्री जाते है तथा जाते समय कहते हैं कि **'आपके उपकार के लिए आए हैं, विजय प्राप्त करने के लिए नहीं।'** धर्म प्रचार का भी यह उदाहरण अनुपम है, प्रजातांत्रिक है, तानाशाही नहीं। महापरिनिब्बाणसुत्त दीघनिकाय में सात अपरिहानीय धर्म तो किसी भी राष्ट्र के प्रजातंत्र के लिए मूलमंत्र है। इसीप्रकार इनको संघ में अनिवार्य किया गया। 'महापरिनिब्बाणसुत्त' में यह उल्लेख मिलता है कि भगवान ने वैशाली में लिच्छवियों को सर्वप्रथम सात अपरिहानीय धम्म का उपदेश दिया था और उसी का स्मरण राजगृह में वर्षकार ब्राह्मण के आने पर आयुष्मान आनन्द की उपस्थिति में किया गया। ये सात उन्नतिगामी अपरिहानीय धम्म भी प्रजातंत्र की सफलता में अपना विशेष योगदान देते हैं। ये सात अपरिहानीय धम्म इस प्रकार हैं-

1. सम्मति के लिए बराबर बैठक करना।
2. एक साथ बैठक करना, एक साथ उठना और एक साथ करणीय कार्यों को करना।
3. अवैधानिक कार्यों को न करना और विधान का उल्लंघन न करना।
4. वृद्धों का सत्कार-सम्मान करना, उनकी बातें सुनने योग्य मानना।
5. महिलाओं के साथ जोर जबर्दस्ती न करना, उचित व्यवहार करना।
6. पूजनीय स्थानों की पूजा का लोप न करना।
7. अर्हतों (पूज्यों) की धार्मिक रक्षा करना।[1]

जब शासक और प्रजा एक साथ बैठक करेंगे और करणीय कार्यों को करेंगे तभी प्रजातंत्र की सफलता मान्य होगी। इसी प्रकार अवैधानिक कार्यों को न करने और वैधानिक कार्यों के उलंघन न करने से, वृद्धों का सम्मान करने तथा महिलाओं के साथ उचित व्यवहार करने से भी प्रजातंत्र की सफलता निर्भर करती है, क्योंकि वृद्ध और महिलाओं का एक बड़े समूह की उपेक्षा प्रजातंत्र शासन के लिए घातक सिद्ध होती है।

जिस देश में प्रजा व्यर्थ की बात (बकवास) न करने वाली होगी, निद्रालु न होगी, पापेच्छु (वदनियत) से युक्त न होगी, बुराई की ओर रुझान न रखने वाली हो कर्मठ होगी अर्थात् थोड़े से विशेष (सोग साफल्य) को पाकर बीच में न छोड़ देने वाली होगी, उस देश की प्रजा का नैतिक स्तर समुन्नत होगा। यह प्रजातंत्र शासन की कुंजी है। भगवान् बुद्ध अन्य सात अपरिहानीय धर्मों का उपदेश देते हुए कहते हैं कि अन्य भी सात अपरिहानीय धर्म हैं जो इस प्रकार हैं-

1. जब तक भिक्षु सारे दिन चीवर आदि के काम में लगे रहने वाले कर्मरत युक्त नहीं होंगे तब तक उनकी उन्नति होगी, हानि नहीं।
2. बकवाद से युक्त न होना।
3. निद्रारमता से युक्त न होना।
4. संगणिकारमता युक्त नहीं होना।
5. पापेच्छु के वश में न होना।
6. पाप मित्र पाप सहाय बुराई की ओर रुझान न होना।
7. थोड़े से विशेष को पाकर बीच में न छोड़ देने वाला न होना।[2]

ये अपरिहानीय धर्म भी प्रजातंत्र की सफलता में सहायक हैं।

भगवान बुद्ध ने जो अन्य सात अपरिहानीय धर्मों का उपदेश दिया है, वे इस प्रकार हैं-

1. भिक्षुओं का श्रद्धालु होना।
2. पाप से लज्जाशील होना।
3. पाप से भय खाने वाला होना।?
4. बहुश्रुत होना।
5. उद्योगी होना।
6. याद रखने वाला होना।
7. प्रज्ञावान होना।[3]

इन सात अपरिहानीय धर्मों के विद्यमान रहने पर प्रजातंत्र की सफलता निश्चित है, क्योंकि जनता जब पाप से लज्जा और भय खानेवाली होगी, तो उसका नैतिक स्तर विकसित होगा तथा जनता के बहुश्रुत, उद्योगी एवं प्रज्ञावान होने पर ही योग्य शासक चुना जा सकेगा। अतएव ये सात अपरिहानीय धर्म भी प्रजातंत्र की सफलता के पूरक हैं।

प्रजातंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि जनता में त्याग की भावना हो। यदि त्याग की भावना नहीं होगी, तो शासक (जो जनता में से जनता के द्वारा चुना जाता है, वह) राष्ट्रीय सम्पत्ति को लोभ वश अपने घर लाता चला जायेगा। 'धम्मपद' में त्याग की महत्ता का उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध कहते हैं कि जो अपने लिए या दूसरों के लिए पुत्र, धन और राज्य नहीं चाहता और न धर्म से अपनी उन्नति चाहता है वही शीलवान, प्रज्ञावान और धार्मिक है।[4] प्रजातंत्र के दो भेद क्रिये गये हैं-

1. प्रत्यक्ष प्रजातंत्र
2. अप्रत्यक्ष प्रजातंत्र

इन भेदों का नमूना भी पालि साहित्य में देखने को मिल जाता है। उपोसथ के दिन जब भिक्षु एकत्रित होकर संघ में अपने-अपने पापों का स्वीकरण, क्षमायाचना और कृतसंकल्प होते हैं और इस प्रकार अपने किये हुए

अपराधों से जो मुक्त होते हैं वह प्रत्यक्ष प्रजातंत्र का एक अच्छा उदाहरण है।[5]

अप्रत्यक्ष प्रजातंत्र का उदाहरण हमें 'महावंस' में द्वितीय संगीति के अवसर पर मिलता हैं जब असंख्य भिक्षुओं में से चार-चार पंच अधिकरण शमथ (झगड़े को शान्त करने) के लिए चुना जाता है।[6] विनयपिटक में आपसी झगड़ा सुलझाने के लिए अधिकरण शमथ का विधान है तथा आवश्यकता पड़ने पर शलाका पद्धति से भिक्षुओं को निर्णय जानने का विधान है।

भगवान बुद्ध के समय जब यह विवाद उठता है कि उनका उत्तराधि कारी कौन होगा तथा देवदत्त अपने को उत्तराधिकारी बनवाना चाहता है। भ. बुद्ध स्पष्ट कहते हैं कि उनके बाद बुद्धवचन (37 बोधिपाक्षिक धर्म) ही उनके उत्तराधिकारी होंगे। जब कोई विवाद की स्थिति बने तो इनसे मिला लेना चाहिए इनके अनुकूल हो तो स्वीकार करें अन्यथा छोड़ दे।

प्राय: इतनी व्यवस्था के बाद भी हम देखते हैं कि बौद्ध संघ में भेद प्रभेद होते गए, यह भी प्रजातंत्र की निशानी है कि सभी लोग अपनी व्याख्या के अनुरूप धर्म पालन के लिए स्वतंत्र है। धर्म थोपा नहीं जा सकता। परिणाम स्वरूप मध्यममार्ग की व्याख्या में ही चार दार्शनिक सम्प्रदाय, धार्मिक सम्प्रदाय तथा बोधिसत्व जैसे विश्वोपयोगी धारणा विकसित हुई।

यदा मम परेषां च भयं दुःखं च न प्रियम्
तदात्मनः को विशेषो यत्तं रक्षामि नेतरम्।।

संदर्भ-विवरण

1. द्रष्टव्य- महापरिनिब्बाणसुत्त, पृ. 12-14
2. द्रष्टव्य- महापरिनिब्बाणसुत्त, पृ. 14-16
3. द्रष्टव्य- महापरिनिब्बाणसुत्त, पृ. 16
4. न अत्तहेतु न परस्स हेतु न पुत्तिमिच्छे न धनं न रट्ठं।
   न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो, स सीलवां पञ्ञावा धम्मिको सिया। -धम्मपद, पण्डितवग्ग, पृ. 57
5. महावग्ग, उपोसथ खन्धक ।
6. पाचीनक च चतुरो चतुरो पावेय्यके पि च।
   उब्बाहिकाय तं वत्थु समेतुं निच्छयं अका ।। -महावंस, चतुत्थो परिच्छेदो, गाथा संख्या 47, पृ. 20

आधार ग्रन्थ-

1. दीघनिकाय, विनय पिटक आदि त्रिपिटक के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ।
2. ज्ञानायनी, वर्ष 3, संयुक्तांक 1-2, वर्ष 2005, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ
3. प्राचीन राजवंश और बौद्धधर्म, लेखक-डॉ. अच्युतानन्द घिल्डियाल, प्रका. विवेक घिल्डिया बन्धु, सिमरा, वाराणसी, 1976 ।

• • • •

पालि साहित्य एवं वैदिक परम्परा

पालि साहित्य भगवान् बुद्ध के वचनों एवं बौद्ध साहित्य से सम्बन्धित हैं जिसका समय ईसा पूर्व छठी शताब्दी के बाद का है। वेद भारत के ही नहीं, विश्व के प्राचीन ग्रन्थों में गिने जाते हैं। इस प्रचीनतम साहित्य का श्रमण परम्परा से मौलिक मतभेद होने के कारण इनकी समानता पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। जबकि आज का समय धर्म सहिष्णुता का है। मानव कल्याण के लिए हमको सभी स्थानों से ज्ञान की प्राप्ति करनी है।

वेदों में भी सभी धर्मों का महत्त्व स्वीकार्य है। अथर्ववेद में कहा गया है कि **'नानाधर्माणां पृथ्वी यथौकसम्'** (अ. १.२.१४५) अर्थात् नाना धर्मवालों को पृथ्वी एक परिवार की तरह रखती है।[1]

वेद की अपौरुषेयता पर श्रमण एवं ब्राह्मण परम्परा में मतभेद रहा है, सृष्टिकर्ता ईश्वर तथा हिंसात्मक यज्ञों का विरोध रहा है, जिनके कारण दूरियां इतनी बढ़ गई कि इनकी नजदीकियों पर ध्यान ही हट गया। भ. बुद्ध के समक्ष वर्तमान संस्कृत के स्थान पर वैदिक 'छान्दस' का ही प्रचलन था। भले ही भगवान् बुद्ध ने जनभाषा में ही अपने उपदेशों को संग्रह करने का आदेश दिया लेकिन पालि/प्राकृत भाषा एवं वैदिक भाषा में अद्भुत समानता हैं।

वैदिक परम्परा में बुद्ध को वर्तमान का अवतार स्वीकार करने पर भी यह अद्भुत विडम्बना है कि दोनों परम्पराओं में दूरी बनी हुई है जबकि 'अनेकता में एकता' भारत की विशेषता रही हैं।

त्रिपिटक आदि ग्रन्थों में तीन वेदों का ही उल्लेख है। वैदिक परम्परा भी मानती हैं कि- 'अनन्त वै वेदाः' लेकिन मानव समाज के लिए इतना ही पर्याप्त है- इन्द्र के द्वारा प्रदत्त तीन मुट्ठि ही वेदत्रयी (ऋकः यजुः, साम) के रूप में प्रकट हुई। द्वापर युग की समाप्ति के पूर्व इन तीन शब्द-शैलियों को संग्रहात्मक एवं विशिष्ट अध्ययनीय शब्दराशि ही वेद कहलाती थी।

कलयुग में.... वेदपुरुष भगवान्, नारायण के अवतार कृष्णद्वैपायन श्री वेदव्यास जी ने यज्ञानुष्ठान आदि के उपयोग को दृष्टिगत रखकर एक वेद के चार विभाग कर दिए। ये ही विभाग आजकल ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी क्रमशः २१, १०१; १००० और ६ शाखाएं कुल ११३६ शाखाएं हैं। इन शाखाओं की शब्दराशि चार भागों में प्राप्त हैं- संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद और आरण्यक।[2] वैदिक परम्परा मानती है कि मन्त्रदृष्टा, ऋषियों ने इनका प्रणयन नहीं अपितु

साक्षात्कार किया- **ऋषयः मन्त्रा द्रष्टारः न तु कर्तारः।** मौखिक परम्परा (श्रुति) से सहस्राब्दियों तक चले आने के बावजूद वेदों का पाठ बहुत शुद्ध रहा।

पालि परम्परा भी मानती है कि भगवान् बुद्ध के उपदेश उनके भिक्षु मौखिक परम्परा के द्वारा ही सुरक्षित रखते थे, जिसे भाणवार परम्परा भी कहते हैं, बाद में संगीतियों के माध्यम से इनका संकलन किया गया इसका प्राचीन विभाजन भी अंगों में है। बुद्धवचनों को 'सुत्त' कहा जाता है जो प्रायः संस्कृत सूत्र समझ लिया जाता है, सूत्र की विशेषता होती है कि वह अल्पाक्षर वाला होता है। जबकि पालि सुत्त 'विस्तार' कथन शैली वाले हैं अतः विद्वानों ने इसे 'सूक्त' के नजदीक माना है। ज्ञातव्य है कि वेदों में भी सूक्त ही पाए जाते हैं।

त्रिपिटक में हम देवताओं आदि के माध्यम से वैदिकों एवं बुद्ध में अच्छा संवाद प्राप्त करते हैं। आज यह संवाद रुक गया है। बुद्ध के समक्ष दान के प्रसंग में चर्चा चल रही थी- विभिन्न देवता आकर दान की प्रशंसा करते हैं। उस समय भगवान् बुद्ध कहते हैं कि सभी देवताओं के कथन उचित ही हैं, तब भी सुनो, जो बुद्धिमान धर्म का सूक्ष्म विश्लेषण पूर्वक आचरण करता है और अपनी थोड़ी सी कमाई में अपनी स्त्री तथा बच्चों का पोषण करता हुआ उचित पात्र को कुछ न कुछ दान करता है वही वस्तुतः धर्माचारी है।

धम्मं चरे यो पि समुज्जकं चरे, दारुं च पोसं ददमप्पकस्मिं।
सतं सहस्सयागिनीं, कलम्पि नाग्घन्ति तथाविधस्स' तें' ति।

-देवता संयुत्त (१.४.२) - संयुत्त०

दान और युद्ध में कभी अल्प मात्रा में भी बड़ी सफलता की बात कही गई है।

वैदिक परम्परा में दान की महिमा अपरम्पार है-

'हिरण्यं ज्योतिः पचतो वभूव'। - अ. १२.३.५०

(दान के लिए) पकाने वाले को ऐश्वर्य मिलता है।

शतहस्त समाहार सहस्रहस्तं सं किर। अ. ३.२४.५

सौ हाथों से कमाओ भी, हजार हाथों में बांटो। (वही, पृ. १७५)

पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय। पृ. ७५.६

दानी मनुष्य को बहुत अधिक यश मिलता है। (पृ. १७२)

भद्रा भद्रस्य रातयः। ऋ. १.१३२.२

पवित्र व्यक्ति का दान पवित्र होता है। (पृ. १७२)

दक्षिणावन्तः प्रतिरन्तः आयुः। ऋ. १.१२५.६

दान देने वाले दीर्घ आयु को भोगते हैं। (पृ. १६६)

ददामीत्येव ब्रूयात्। अ. १२.४१

मैं दे रहा हूँ, सदा ऐसा ही बोले। (पृ. १६६)

केवलाघो भवति केवलादी। ऋ. १०.११७.६

अकेला खाने वाला केवल पाप का भागी होता है।

बौद्धों के धम्मपद में एक ब्राह्मणवग्ग ही हैं जिसमें गुणों के आधार पर ब्राह्मण का महत्त्व बतलाया गया है।

सुभाषितों, दान का महत्त्व, अतिथि सत्कार जैसे सैकड़ों सन्दर्भों में समानता देखी जा सकती है।

कहा गया है कि प्राचीन काल में ब्राह्मण शीलवान् होते थे, जो धर्माराधन करते हुए इन्द्रिय-संयत, क्रोध-विजयी, हमेशा धर्मध्यान में रत रहते थे, यही ब्राह्मण धर्म था। भगवान् बुद्ध के समय में ब्राह्मण सत्कर्मो को छोड़ जाति-गोत्र की रट लगाते हुये विपरीत आचरण करने लगे थे।[३]

मनु के कथन से भी इसकी पुष्टि होती है-

योऽनधीव्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।

स जीवन्नेव शूद्रात्वमाशु गच्छति सान्वयः।। (मनु. २.१६८)

भारद्वाज ब्राह्मण के कहने पर कि तीन वेदों का ज्ञाता, ऊँची जाति का भारी विद्वान्, विद्या और आचरण से सम्पन्न ब्राह्मण हव्य का अधिकारी होता है। भगवान् ने कहा कि- बहुत बोलने वाला, मलिन मन, ढोंगी, चालबाज कोई व्यक्ति जाति से ब्राह्मण नहीं होता। जो पूर्वजन्म की बातों को जानता है, स्वर्ग और अपाय को देखता है, आवागमन से छूट गया है, वही परमज्ञानी मुनि, त्रैविद्य और ब्राह्मण होता है, वही विद्या और आचरण से सम्पन्न है।[४]

सुन्दरिक-भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से जाति पूछते हैं। भगवान् कहते हैं कि जाति मत पूछो, कर्म पूछो। लकड़ी से भी आग पैदा होती है, नीच कुल वाले भी धीर मुनि होते हैं। सत्य से दान्त, संयमी, दुःखों के अन्त को जानने वाले ब्रह्मचर्य के फल को पाते हैं।[५]

ब्राह्मण के विषय में भगवान् का मत था कि ब्राह्मण क्षीणास्रवी, चतुरध्यानी जन्म और मृत्यु को पार कर चुका होता है। ब्राह्मण को कुछ भी करना शेष नहीं रहता। प्राणी जब तक नदियों में रहते हैं, तैरने का प्रयत्न करते हैं, जमीन पर आने के बाद कोशिश समाप्त हो जाती हैं, यही बात ब्राह्मण के विषय में है, उसे जो करना था सो कर लिया।[६]

ब्राह्मण धर्म प्राप्ति के मार्ग के रूप में बतलाया गया है कि सुसमाहित चित्त पूरी तरह प्रसन्न और निर्मल तथा सभी जीवों पर दया रखना ही ब्राह्मण प्राप्ति का मार्ग है।[७]

भारतीय धार्मिक परम्परा में सदैव ही अलौकिक शक्तियों का महत्व रहा है। बौद्ध-धर्म में इन अलौकिक शक्तियों का समावेश हुआ है, जिनके अन्तर्गत ब्रह्मा, शक्र, देवता, देवपुत्र, यक्ष, मार, नाग और सुपर्ण आदि अलौकिक शक्तियों का वर्णन मिलता है। भगवान् बुद्ध ने अपने लिए देवताओं, मार, ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मणों में अनुत्तर घोषित किया था।[८] संयुत्तनिकाय का प्रथम सगाथवग्ग अलौकिक शक्तियों के चित्रण से परिपूर्ण है।

ब्रह्मा :- ब्रह्मा हिन्दू धार्मिक परम्परा में सृष्टिकर्ता के रूप में प्रसिद्ध है। पालि साहित्य में यह सद्धर्म के सहायक रूप में वर्णित है। संयुत्तनिकाय में ब्रह्मा का विस्तृत परिचय मिलता है।

संयुत्तनिकाय में छः ब्रह्माओं के नाम मिलते हैं- सहम्पति ब्रह्मा[९], बक ब्रह्मा[१०], सुब्रह्मा, शुद्धावास-प्रत्येक-ब्रह्मा, तुदुप्रत्येक-ब्रह्मा[११] एवं सनतकुमार ब्रह्मा[१२] । बक ब्रह्मा सुत्त में बहत्तर ब्रह्माओं की संख्या बतलाई गई है।[१३] सहम्पति-ब्रह्मा को बौद्ध धार्मिक परम्परा में अधिक सम्मान दिया गया है। उपदेश देने के प्रति भगवान् बुद्ध के उदासीन होने पर सहम्पति-ब्रह्मा ने ही उपदेश के लिए उन्हें प्रेरित किया था।[१४] भगवान् द्वारा धर्म के प्रति गौरव मानकर विहार करने की बात सोचने पर सहम्पति-ब्रह्मा ने आकर भगवान् की बात का समर्थन करते हुए कहा था कि यही बुद्धों की परम्परा है।[१५]

सहम्पति-ब्रह्मा सद्धर्म में सहायक था। कोकालिक पापेच्छु भिक्षु की मृत्यु होने पर सहम्पति-ब्रह्मा उसकी निन्दा करते हुए पद्म नरक में उत्पन्न हुआ बतलाता है।[१६] इसी प्रकार पापेच्छु देवदत्त के विषय में कहता है कि जिस प्रकार केला, वेणू और नरकट का फल स्वयं उस वृक्ष को नष्ट कर देता है उसी प्रकार अपना सत्कार खोटे पुरुष को नष्ट कर देता है।[१७] सहम्पति-ब्रह्मा संघ के प्रति श्रद्धालु था। वह भिक्षुओं के शान्त चित्त और एकाग्र रहने की पुष्टि करते हुए कहता है कि एकान्त सेवन करना चाहिए यदि मन न लगे तो संघ में मिलकर संयत और स्मृतिमान् होकर विहार करना चाहिए।[१८]

भगवान् के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर सहम्पति-ब्रह्मा का मत संगृहीत है कि-संसार के सभी जीव एक दिन बिदा होंगे, लेकिन तथागत बल प्राप्त सम्बुद्ध लोक में अनुपम बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।[१९]

देवता :- संयुत्तनिकाय का प्रथम संयुत्त देवता संयुत्त है। इसमें देवताओं की भगवान् बुद्ध के साथ वार्ता बतलाई गई है।

देवताओं के अन्तर्गत सतुल्लपकायिक[२०], शुद्धावास[२१], घटीकार[२२], त्रायस्त्रिंश[२३], एवं उज्झानसञ्ञी[२४] नामक देवताओं के नाम मिलते हैं। देवताओं की विशेषता बतलाई गई है कि देवता रात्रि के अन्तिम प्रहर में अपनी चमक से चमकते हुए (अधिकांशतया जेतवन में) जाते थे। आते ही देवता भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़े हो जाते थे। पुनः वे प्रश्न पूछते थे। भगवान् द्वारा प्रश्न का उत्तर देने पर वे अभिवादन कर चले जाते थे। कई प्रसंगों में देवता बिना अभिवादन किए सीधे आकर अपनी बात कहते हैं।[२५] वार्ता के विषय विभिन्न सांसारिक समस्याओं से सम्बन्धित होते थे, जिनका भगवान् उत्तर देते थे। कई प्रसंगों में देवता आकर अपनी सांसारिक मान्यताओं से सम्बन्धित बात कहते हैं, लेकिन भगवान् उसका खण्डन करते हुए उसका उचित उत्तर देते हैं। जैसे देवता के कहने पर कि पुत्रों वाला पुत्रों से, गायों वाला गायों से तथा सांसारिक वस्तुओं वाले को सांसारिक वस्तुओं से आनन्द आता है, जिसके पास कोई वस्तु नहीं उसे कोई आनन्द नहीं। भगवान् इसके उत्तर में कहते हैं कि इन वस्तुओं से इनकी चिन्ता बनी रहती है, जिसके पास कोई वस्तु नहीं उसे कोई चिन्ता नहीं।[२६] कुछ प्रश्न भिक्षुओं को विचलित करने वाले भी हैं जैसे देवता आकर भिक्षु से कहता है कि अभी आप नई उम्र वाले हैं। सामने के सुख को छोड़कर परलोक के पीछे क्यों पड़े हैं।[२७] इसी प्रकार देवता और भगवान् के मध्य हुए वार्तालाप के अन्य विविध प्रसंग संयुत्तनिकाय के देवता-संयुत्त में संगृहीत हैं।

देवपुत्र :- संयुत्तनिकाय का दूसरा संयुत्त देवपुत्त संयुत्त है, जिसमें देवपुत्रों का वृत्तान्त वर्णित हैं।

देवपुत्रों की विशेषता देवताओं के समान ही बतलाते हुए कहा है कि वे अपनी चमक से पूरे जेतवन को चमकाते हुए आते थे। आकर भगवान् से विभिन्न प्रश्न पूछते थे। इनके अधिकांश प्रश्न भिक्षुओं के अनुशासन से सम्बन्धित हैं। देवपुत्रों को भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धालु बतलाया गया है, कुछ देवपुत्र अन्य तैर्थिकों को मानने वाले भी थे।

देवपुत्रों के नाम इस प्रकार हैं- काश्यप, माघ, मागध, दामलि, कामद, पंचालचण्ड, तायन, चन्द्रमा, सूर्य, चन्दिमस, वेण्हु, दीघयस्टि, नन्दन, चन्दन, सुदत्त, सुब्रह्मा, ककुध, उत्तर तथा अनाथपिण्डिक।[२८] ककुध-देवपुत्त को यक्ष इस नाम से सम्बोधित किया गया है।[२९] सुवीर देवपुत्त की चर्चा देवेन्द्रशक्र के साथ वर्णित है।[३०]

चन्द्रमा देवपुत्त एवं सूर्य देवपुत्त के ग्रहण का भी उल्लेख है। जिसमें बतलाया गया है कि इनको असुरेन्द्र राहु ने पकड़ लिया था। इन्होंने भगवान् बुद्ध से शरण देने की प्रार्थना की थी। भगवान् ने इनके गुणों को याद दिलाते हुए असुरेन्द्र राहु को इन्हें छोड़ने का आदेश दिया था तब असुरेन्द्र राहु ने इनको छोड़ने का वचन दिया।[३१] इसी

प्रसंग में सूर्य के सम्बन्ध में भगवान् कहते हैं कि वह काले अन्धकार में प्रकाश देता है, चमकने वाला, उग्र तेज वाला, मण्डल वाला, आकाश में चलने वाला भगवान् का शरणागत है।[३२] अनाथपिण्डिक गृहपति को मृत्यूपरान्त देवपुत्त के रूप में उत्पन्न हुआ बतलाया गया है।[३३]

शक्र :- संयुत्तनिकाय में शक्र के सात नामों का उल्लेख मिलता है- मघवा, पुरिन्दद, शक्र, वासव, सहस्राक्ष, सुजम्पति एवं देवेन्द्र। शक्र के नामकरण के सम्बन्ध में कहा गया है कि इन्द्र मनुष्य योनि में मघ नामक ब्राह्मण था इसलिए मघवा, पुर शहर में दान देता था इसलिए पुरिन्दद, सत्कारपूर्वक दान देता था इसलिए शक्र, आवास का दान देता था इसलिए वासव, सहस्र बातों को एक बार में स्मरण कर लिया करता था इसलिए सहस्राक्ष, सुजा नामक उसकी असुर कन्या थी इसलिए सुजम्पति तथा देव लोक में राज्य करने से देवेन्द्र नाम से अभिहित हुआ।[३४]

देवेन्द्र शक्र के सात व्रत बतलाये गये हैं, जिसके कारण वह इस पद पर आरूढ़ हुआ था।[३५]

१. उसने निश्चय किया था कि जीवन पर्यन्त माता-पिता का भरण पोषण करेगा।
२. ज्येष्ठों का सम्मान करेगा।
३. मधुर-भाषण करेगा।
४. चुगली नहीं करेगा।
५. संकीर्णता और कंजूसी से रहित दान देते हुए धर्म का पालन करेगा।
६. सत्यवादी रहेगा तथा
७. क्रोध नहीं करेगा।

शक्र को क्षमाशील, क्रोध रहित, शान्ति का प्रतीक, सुभाषित बोलने वाला, छलकपट से रहित, धर्म से विजय प्राप्त करने वाला, उत्साही एवं वीर्य का प्रशंसक कहा गया है। शक्र अहिंसा प्रिय था, क्योंकि जब शक्र इन्द्र राक्षसों से हारकर भागते हुए राक्षसों द्वारा खदेड़े जाते हुए की स्थिति में था। उस समय इन्द्र मातलि से कहता है कि-सेंमर वृक्ष में लगे घोंसले रथ के धुरे में नुचने न पायें, भले ही उसकी असुरों के हाथों मृत्यु हो जाय।[३६] यह कथा जातकमाला में भी वर्णित हैं।[३७]

भगवान् बुद्ध ने देवेन्द्र शक्र को पुण्य के प्रताप से त्रायस्त्रिंश लोक में ऐश्वर्य पाकर राज्य करते हुए सौजन्य का प्रशंसक बतलाया है। भिक्षुओं को भगवान् शिक्षा देते हैं कि इन्द्र आरब्ध पूरे करने में अनुकरणीय है।[३८] देवेन्द्र शक्र का विभिन्न प्रसंगों में असुरों से युद्ध का वर्णन मिलता है।[३९] देवेन्द्रशक्र के अतिरिक्त देवराज-प्रजापति, देवराज-वरुण, देवराज-ईशान का भी उल्लेख संयुत्तनिकाय में मिलता है।[४०]

भगवान् के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर देवेन्द्र शक्र ने कहा था कि सभी संस्कार अनित्य है, उत्पन्न और निरुद्ध होना उनका स्वभाव है, उत्पन्न होकर निरुद्ध हो जाते हैं, बिल्कुल शान्त हो जाना ही सुख है।[४१]

यक्ष :- यक्ष पालि साहित्य में असुरों के अन्तर्गत माना जाता है।[४२] संयुत्तनिकाय में यक्षों के भवन होने का भी उल्लेख है। भगवान् को गया में टंकितमंच पर सूचिलोम यक्ष के भवन में एवं आलवक यक्ष के भवन में विहार करते बतलाया गया है।[४३]

यक्षों के विभिन्न नाम मिलते हैं- इन्द्रक-यक्ष, शक्र-यक्ष, सूचिलोम-यक्ष, खरयक्ष, मणिभद्र-यक्ष, शीवम-यक्ष, आलवक-यक्ष एवं प्रियंकर-माता-यक्षिणी तथा पुनर्वसु-माता- यक्षिणी।[४४] यक्षों के अच्छे बुरे दोनों रूप मिलते हैं। यक्षों को मायावियों की तरह वर्णित किया गया है।[४५] वे मनुष्यों के पुत्रों को पकड़ लिया करते थे।[४६]

यक्ष भगवान् बुद्ध का अपमान करता हुआ तीन बार कहता है कि-बाहर निकल जा, बाहर निकलने पर कहता है कि अन्दर आ जा। अन्त में भगवान् के कहने पर कि वे न अन्दर जायेंगे न बाहर, उसे जो इच्छा हो करे। यक्ष भगवान् से कहता है कि वह उनसे प्रश्न पूछेगा यदि श्रमण (भगवान्) उत्तर देंगे तो ठीक है, अन्यथा वह छाती चीर देगा या पैर पकड़कर गंगा के उस पार फेंक देगा। उत्तर में भगवान् कहते हैं कि वे किसी को ऐसा नहीं देखते हैं कि कोई इस प्रकार कर सके, लेकिन यक्ष की जो इच्छा हो वह पूछे। अन्त में यक्ष भगवान् से कहते हैं कि दूसरों को उपदेश क्यों देते हो, श्रमण को यह उचित नहीं कि दूसरों को उपदेश दे।[४७]

विभिन्न यक्ष भगवान् के उपासक एवं उनके प्रति श्रद्धालु भी बतलाये गये हैं। सानुसुत्त में वर्णित है कि उपोसथ व्रत पालन करने वालों को यक्ष पीड़ित नहीं करता।[४८] प्रियंकर माता-यक्षिणी अपने पुत्र से कहती है कि वह चुप रहे। भिक्षु धर्म पद पढ़ रहा है, धर्मपद के अनुसार आचरण करने से हित तथा पिशाचयोनि से मुक्ति होती है।[४६] इसी प्रकार पुनर्वसु माता यक्षिणी धर्म की खोज को पुत्र और पति से भी प्यारा बतलाती है, क्योंकि धर्म दुःखों से मुक्ति दिलाता है।[५०] गृहपति अनाथपिण्डिक जब भगवान् के प्रथम दर्शन को जाते हैं, तब शीवक-यक्ष गृहपति को उत्साहित करता है।[५१] एक यक्ष शुक्रा-भिक्षुणी के उपदेश को राजगृह के लोगों द्वारा न सुनने पर कहता है कि वे (राजगृहस्वामी) मद्य-पान कर सो रहे हैं। उपदेश नहीं सुनते, भिक्षुणी जिस अमृतपद का उपदेश कर रही है उसे ज्ञानी लोग उसी प्रकार ग्रहण करते हैं, जिस प्रकार राही मेघ के जल को।[५२] एक उपासक द्वारा भिक्षुणी को भोजन एवं चीवर देने पर यक्ष प्रशंसा करते हुए पुण्य कमाने की बात कहता है।[५३]

नाग :- नाग की चार जातियां बतलाई गई हैं- अण्डज-नाग, पिण्डज-नाग, संस्वेदज-नाग एवं औपपातिक-नाग। इन चारों को क्रमशः एक दूसरे से श्रेष्ठ बतलाया गया है।

नागों का इस योनि में उत्पन्न होने का कारण -

१. शरीर, मन और वचन से पुण्य-पाप

२. अन्नपान, वस्त्र, सवारी, माला-गन्ध-विलेपन, शय्या, घर और प्रदीप का दान तथा

३. इन योनियों में उत्पन्न होने की अभिलाषा है।

नाग उपोसथ व्रत रखते थे। उपोसथ व्रत रखने का कारण उनका यह विचार था कि वे सोचते हैं कि पहले के अच्छे व्रत रखने के कारण वे नाग योनि में उत्पन्न हुए एवं अब भी अच्छे कर्म करेंगे तो और अच्छी गति में उत्पन्न होंगे।[५४]

सुपर्ण :- नाग से ऊँची जाति सुपर्ण बतलाई गई है, इसके चार भेद बतलाये गये हैं- अण्डज-सुपर्ण, पिण्डज-सुपर्ण, संस्वेदज-सुपर्ण एवं औपपातिक-सुपर्ण। इनको क्रमशः एक दूसरे से श्रेष्ठ बतलाया गया है। सुपर्ण नागों का हरण कर लेते थे। तथा सुपर्ण भी अपने से हीन सुपर्ण का हरण कर लेते थे।

सुपर्णो का इस योनि में उत्पन्न होने का कारण पाप-पुण्य, दान एवं इस योनि में उत्पन्न होने की अभिलाषा बतलाई गई है।[५५]

देव :- देवों के रूप में बलाहक देव एवं गन्धर्वकाय देवों का परिचय मिलता है।

बलाहक देव- बलाहक देवों के पांच प्रकार बतलायें गये हैं-शीतबलाहक-देव, उष्णाबलाहक-देव, अभ्रबलाहक-देव, वातबलाहक-देव तथा वर्षा-बलाहक-देव।[५६]

बलाहक देवों के इन जातियों में उत्पन्न होने का कारण, शरीर, मन और वचन से सदाचरण व दान तथा इस योनि में उत्पन्न होने की अभिलाषा है।[५७] देवों की शीतलता-उष्णता आदि होने का कारण उनकी रति के साथ रमण करने की इच्छा है जिसके कारण वे अमुक-अमुक स्वभाव वाले होते हैं।[५८]

गन्धर्वकाय देव- गन्धर्वकाय देव गन्ध में वास करने वाले होने से गन्धर्वकायिक देव कहे जाते हैं। ये दस प्रकार के होते हैं- मूल गन्ध में वास करने वाले, सारगन्ध में वास करने वाले, कच्ची लकड़ी की गन्ध में वास करने वाले, छाल की गन्ध में वास करने वाले, पपड़ी की गन्ध में वास करने वाले, पत्तों की गन्ध में वास करने वाले, फूल की गन्ध में वास करने वाले, फल के रस, रस के गन्ध एवं गन्ध के गन्ध में वास करने वाले देव।

इस योनि में उत्पन्न होने का कारण भी शरीर, मन और वचन से सदाचरण, दान एवं इस योनि में उत्पन्न होने की अभिलाषा है। गन्धर्वकायिक-देवों के दस प्रकार से उत्पन्न होने का कारण उनके द्वारा तत् तत् गन्धों का दान देना कहा है।

हम मार के दो रूप पाते हैं- मूर्तरूप (लौकिक) तथा अमूर्त रूप (अलौकिक)। यद्यपि मार के लौकिक रूप का स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि उसके अलौकिक रूप के आधार पर विभिन्न लौकिक रूपों की कल्पना की गई है। उस समय सद्धर्म विरोधी जो विभिन्न व्यक्ति थे, उनमें मार की कल्पना की गई होगी।

बौद्ध साहित्य में मार का विशद वर्णन इस बात की पुष्टि करता है कि धार्मिक परम्परा में सद्धर्म विरोधियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

नरक का चित्रण :- संयुत्तनिकाय के कोकालिक सुत्त में नरक के विभिन्न प्रकार एवं उनकी अवधि का वर्णन है- अब्बुद-नरक, निरब्बुद-नरक, अबब-नरक, अटट-नरक, अहह-नरक, कुमुद-नरक, सौगन्धिक-नरक, उत्पल-नरक, पुण्डरीक-नरक एवं पद्म-नरक।

नरक की अवधि के सम्बन्ध में कहा गया है कि बीस खारी (कोसल के नाम से) बिल के भार से कोई सौ साल, हजार साल पर एक तिल का दाना निकाले तब भी तिल का भार समाप्त हो जायगा लेकिन एक अब्बुद नरक पूरा नहीं होगा।

बीस अब्बुद नरक का एक निरब्बुद-नरक, बीस-निरब्बुद नरक का एक अबब-नरक, बीस-अबब नरक का एक अटट-नरक, बीस अटट-नरक का एक अहह-नरक, बीस अहह- नरक का एक कुमुद-नरक, बीस कुमुद-नरक का एक सौगन्धिक-नरक, बीस सौगन्धिक- नरक का एक उत्पल-नरक, बीस उत्पल-नरक का एक पुण्डरीक-नरक तथा बीस पुण्डरीक- नरक का एक पद्म-नरक बतलाया गया है।

कोकालिक भिक्षु को पद्म-नरक में उत्पन्न बतलाया गया है क्योंकि वह सारिपुत्त और मौद्गल्यायन की निन्दा करता था।[५९] संयुत्तनिकाय के विभिन्न प्रसंगों में नरकगति के कारण बतलाये गये हैं। पालि साहित्य में नरक के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा मिलती है।[६०]

यज्ञ आदि के सन्दर्भ में स्वाभाविक मतभेद रहा है। इनको वैज्ञानिक ढंग से परिवर्तित करने का प्रयास किया गया है। सिंगालोवाद सुत्त इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

मोक्ष, दान, ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, सत्संगति, कर्म, गुरु आदि का महत्त्व दोनों परम्परा स्वीकार करती हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समग्र भारतीय परम्पराओं के अध्ययन से हम इनमें पूरकता पाते हैं।

यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यातिव अन्तलिक्खे।

सब्बे व भूता सुमना भवन्तु, अथो पि सक्कच्च सुणन्तु भासितं।।

यजुर्वेद में भी कहा गया है कि-

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्ति सर्वं शान्तिः।

संदर्भ-विवरण

१. संस्कृत सूक्तिसमुच्चय, वैदिक खण्ड-१, पृ.१८०

२. वेद कथा का वैशिष्ट्य - एक परिचय - श्री राधेश्याम खेमका

३. "सीलुत्तमा पुब्बतरा अहेसुं, ते ब्राह्मणा ये पुराणं सरन्ति।
गुत्तानि द्वारानि सुरक्खितानि, अहेसुं तेसं अभिभुय्यं कोधं।।
धम्मे च झाने च रता अहेसुं, ते ब्राह्मणा ये पुराणं सरन्ति।
इमे च बोक्कम्म जपामसेति, गोत्तेन मत्ता विसमं चरन्ति।। - संयुत्त. ४, पृ. १०८-६

४. वही, पृ. १६६

५. "मा जाति पुच्छ चरणं च पुच्छ, कट्ठा हवे जायति जातवेदो।
नीचाकुलीनो पि मुनि धितिमा, आजानीयो होति हिरीनिसेधो।।
सच्चेन दन्तो दमसा उपेतो, वेदन्तगू वुसितब्रह्मचरियो।
यञ्ञोपनीतो तमुपव्हयेथ, कालेन सो जुहति दक्खिणेय्ये"ति।। -वही, १, पृ. १६७

६. "नत्थि किच्चं ब्राह्मणस्स, कतकिच्चो हि ब्राह्मणो। -संयुत्त. १, पृ. ४४

७. वही, पृ. १०६

८. सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय तथागतो अरियो।
-संयुत्त. ५, पृ. ३७३

६. वही, १, पृ. १३७

१०. वही, पृ. १४३

११. वही, पृ. १४७

१२. वही, पृ. १५३

१३. वही, पृ. १३७

१४. संयुत्त. ५, पृ. १३६

१५. वही, पृ. १५१

१६. वही, पृ. १५०-१५३

१७. वही, १, पृ. १५४

१८. वही, पृ. १५७

१६. वही, पृ. २६

२०. वही, पृ. २५

२१. वही, पृ. ३३

२२. वही, पृ. ७

२३. वही, पृ. २३

२४. वही, पृ. ३-४२

२५. संयुत्त. १, पृ. ७-८

२६. वही, पृ. २०

२७. वही, पृ. ४३-६६

२६. ''अनघो वे अहं यक्ख, अथो नन्दी न विज्जति। -संयुत्त. १, पृ. ५२
३०. वही, पृ. २१८
३१. ''सत्तधा में फले मुद्धा, जीवन्तो न सुखं लभे।
बुद्धगाथाभिगीतोम्हि, नो चे मुञ्चेय्य सुरियं''ति। -वही, १, पृ. ४६
३२. ''यो अन्धकारे तमसि पभंकरो, बेरीचनो मण्डली उग्गतेजो।
मा राहु गिली चरमन्तलिक्खे, पजं ममं राहु पमुंच सुरियं''ति।।
३३. वही, पृ. ४७-४०
३४. संयुत्त. १, पृ. २३०-२३१
३५. वही, पृ. २३०
३६. कुलावका मातलि सिम्बलिस्मिं, ईसामुखेन परिवज्जयस्सु।
कामं चजाम असुरेसु पाणं, मायिमे दिजा विकुलावका अहेसु'ति।। -संयुत्त. १, पृ. २२६
३७. जातकमाला, पृ. ८७
३८. संयुत्त. १, पृ. २२४
३६. वही, पृ. २२२, २२४, २२६
४०. वही, पृ. २२०-२२१
४१. वही, पृ. १५८
४२. डि. आफ पा. प्रा. नेम्स, भाग १, पृ. २१३
४३. संयुत्त १, पृ. २०६, २१५
४४. वही, पृ. २०७ से २१७
४५. वही, पृ. २१२-१३
४५. वही, पृ. २१०
४७. ''सब्बगन्थप्पहीनस्स, विप्पमुत्तस्स ते सतो। समणस्स न तं साधु, यदञ्ञमनुसासती''ति।।
-संयुत्त. १, पृ. २०७
४८. ''उपोसथं उपवसन्ति, ब्रह्मचरियं चरन्ति ये। न तेहि यक्खा कीलन्ति, इति मे अरहतं सुतं। -वही, पृ. २१०
४६. वही, पृ. २१०-२११
५०. ''पियो लोके सको पुत्तो, पियो लोके सको पति।
ततो पियतरा मय्हं, अस्स धम्मस्स मग्गना।। -वही, पृ. २११
५१. अभिक्कम गहपति, अभिक्कम गहपति।
अभिक्कमनं ते सेय्यो, नो पटिक्कमनं''ति। - वही, पृ. २१२
५२. ''किं मे कता राजगहे मनुस्सा, मधुपीता व सेयरे। ये सुक्कं न पयिरूपासन्ति देसेन्ति अमतं पदं।।
''तं च पन अप्पटिवानीयं, असेचनकमोजवं।
पिवन्ति मञ्ञेसप्पञ्ञा, वलाहकमिव पन्थगू''ति।। -संयुत्त. १, पृ. २१४
५३. वही, पृ. २१५
५४. वही, ३ पृ. ४५६-४६०
५५. संयुत्त. ३, पृ. ४६१-४६३
५६. वही, वृ. ४६८
५७. वही
५८. वही, पृ. ४६६-७०
५६. संयुत्त. १, पृ. १५२
६०. द्रष्टव्य- हेवन एण्ड हेल इन बुद्धिस्ट पर्सपेक्टिव, पृ. ६३-१२६

• • • •

संयुत्तनिकाय में प्रतिपादित ब्राह्मण का स्वरूप

संयुत्तनिकाय पालित्रिपिटक के सुत्तपिटक का तीसरा ग्रन्थ है। इसमें विषय वस्तु के आधारसूत्रों का संग्रह छप्पन संयुत्तों में है। उनमें एक ब्राह्मण संयुत्त है, जिसमें ब्राह्मणों के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है और उनका स्वरूप स्पष्ट होता है। संयुत्तनिकाय में 'ब्राह्मण' शब्द का प्रयोग दो रूपों में हुआ है-एक ब्राह्मण जाति के विषय में, दूसरा श्रमण ब्राह्मण के विषय में।

ब्राह्मण का परिचय-

वर्णित है कि प्राचीन काल में ब्राह्मण शीलवान होते थे, जो धर्माराधन करते हुए इन्द्रिय संयम, धर्म विजयी, हमेशा धर्म ध्यान में रत रहते थे। यही ब्राह्मण धर्म था। लेकिन भगवान् बुद्ध के समय ब्राह्मण सत्कर्मों को छोड़ गोत्र-जाति की रट लगाने लगे और उल्टा आचरण करने लगे थे। वे विरोध से तमतमाये रहते, घमण्ड में ऐठें रहते, स्थावर और जंगम प्राणियों को सताते थे। इस तरह असंयत हो गये। स्वप्न में धन प्राप्त करने की भांति व्यर्थ के उपवास में विश्वास करते थे। उनकी क्रियाएं थीं-कड़ी जमीन में सोना, प्रातः स्नान करना, तीन वेद का पाठ, चर्म वस्त्र ओढ़ना, जटा रखना और भस्म लगाना। शील, व्रत, तपस्या, पाखण्ड, आड़ा तिलक, जल आचमन आदि करते थे। इनको ब्राह्मणों का भण्ड (सामग्री) कहा गया है। इनके आधार पर ये विभिन्न प्रकार से जोड़ने बटोरे में लगे रहते थे।[१]

पश्चिम भूमि वाले ब्राह्मणों के सम्बन्ध में वर्णित है कि वे कमण्डल रखते थे। शेवाल की माला पहनते थे और सुबह शाम पानी में बैठे, अग्नि की परिचर्या करते थे। मृतात्माओं को बुलाकर उनको स्वयं भेजने का प्रलोभन देते थे।[२]

ब्राह्मण संयुत में ३१ सुत्त हैं जिनमें विभिन्न ब्राह्मणों का भगवान् के साथ वाद-विवाद वर्णित है। अधिकांश ब्राह्मणों के नाम उनके कर्म व स्वभाव के अनुरूप हैं। उक्कोस भारद्वाज ब्राह्मण को क्रोध करते हुए, बताया गया है। अहिंसक भारद्वाज ब्राहमण को अहिंसक बताया गया है। सुद्धिक भारद्वाज शुद्धि के सम्बन्ध में चर्चा करता है। जटा भारद्वाज ब्राह्मण जटा के सम्बन्ध में **'अन्तो जटा वहि जटा जटाय जटिता पजा'** वाली प्रसिद्ध गाथा प्रश्न के रूप में पूछता है, जो संयुत्तनिकाय में पहले देवता द्वारा पूछी गई वर्णित हैं। कृषि भारद्वाज ब्राह्मण है। अभिमान अकड़ ब्राह्मण को अभिमानी बताया गया है। झगड़ालु ब्राह्मण को मलिन चित्त, झगड़े के लिए सन्नद्ध बताया गया है नवकार्मिक ब्राह्मण शाल के वृक्ष कटवा रहा हैं मातृपोषक ब्राह्मण अपने माता-पिता का सेवक है। भिक्षु ब्राह्मण भिक्षावृत्ति से जीवन यापन करता हैं-

यह उल्लेखनीय है कि उक्त सभी प्रकार के ब्राह्मण पहले वाद-विवाद करने एवं भगवान् बुद्ध को पराजित करने के लिए आते हैं लेकिन अन्त में भगवान् से प्रभावित होकर उपासक बने या प्रव्रजित हो गए।

भारद्वाज ब्राह्मण के कहने पर कि तीन वेदों का ज्ञाता ऊँची जाति का भारी विद्वान, विद्या और आचरण से सम्पन्न ब्राह्मण हव्य का अधिकारी होता है। इसके उत्तर में भगवान ने कहा कि बहुत बोलने वाला, मलिन मन, ढ़ोंगी, चालबाज कोई व्यक्ति जाति से ब्राह्मण नहीं होता। जो पूर्व जन्म की बातों को जानता है, स्वर्ग और अपाय को देखता है, आवागमन से छूट जाता है, वही परम ज्ञानी मुनि 'त्रैविद्य और ब्राह्मण होता है। वही विद्या और आचरण से सम्पन्न है।[३]

सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से जाति पूछते हैं। भगवान् कहते हैं कि जाति मत पूछो, कर्म पूछो, लकड़ी से भी आग पैदा होती है, नीच कुल वाले भी धीर मुनि होते हैं। सत्य से दान्त, संयमी, दुःखों के अन्त को जानने वाला, ब्रह्मचर्य के फल को पाते हैं।[४]

ब्राह्मण के विषय में भगवान का मत था कि ब्राह्मण क्षीणास्रवी, चतुर ध्यानी जन्म और मृत्यु को पार कर चुका होता है। ब्राह्मण को कुछ भी करना शेष नही रहता। प्राणी जब तक नदियों में रहते हैं तैरने का प्रयत्न करते हैं, जमीन पर आने के बाद कोशिश समाप्त हो जाती है, वह पार कर चुका होता है। यही बात ब्राह्मण की है उसे जो करना था, सो कर लिया।[५]

ब्राह्मण धर्म प्राप्ति के मार्ग के रूप में बताया गया है कि सुसमाहित चित्त, पूरी तरह प्रसन्न और निर्मल तथा सभी जीवों पर दया रखना- यही ब्राह्मण प्राप्ति का मार्ग है।[६]

श्रमण और ब्राह्मण-

संयुत्तनिकाय में कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिनमें श्रमणों और ब्राह्मणों की समान रूप से चर्चा है। आर्यआष्टांगिक मार्ग श्रामण्य और ब्राह्मण के रूप में वर्णित है तथा स्रोतापति सकृदागामी, अनागामि एवं अर्हत् को श्रामण्य और ब्राह्मण का फल कहा गया है।[७] इस प्रकार पांच इन्द्रिय, पांच बल, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद आदि के प्रत्यय ज्ञान, छह इन्द्रिय, पांच स्कन्ध, आस्वाद, दोष और मोक्ष के जानने वाले श्रमणों और ब्राह्मणों में श्रमण और ब्राह्मण भाव बतलाया गया है।[८]

ऐसे श्रमणों और ब्राह्मणों की संख्या कम बताई गई है जिनमें श्रमण और ब्राह्मण भाव था उन श्रमण और ब्राह्मणों की संख्या अधिक बताई गई है जिनमें श्रमण और ब्राह्मण भाव का अभाव था।[९] राग, द्वेष, मोह के क्षय प्राप्त श्रमण और ब्राह्मणों को श्रमण ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी कहा गया है।[१०]

विभिन्न प्रसंगों में भगवान् बुद्ध को ब्राह्मण कहा गया है।[11] ब्राह्मण संयुत्त में अधिकांश ब्राह्मणों ने अपने-अपने विषयों की चर्चा करने के बाद चिन्तन करके अनुभव किया कि भगवान बुद्ध वास्तव में ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी हैं। ब्राह्मण अपना हव्य (भिक्षान्न) स्वीकार करने के लिये भी भगवान् से कहते हैं, लेकिन भगवान् उसे अस्वीकार कर देते हैं क्योंकि उपदेश से ग्रहण किया गया भिक्षान्न ब्राह्मण धर्म के योग्य नहीं है।[12]

ब्राह्मण शब्द पवित्रता का प्रतीक रहा है, लेकिन इसे काम के आधार पर इसका महत्व प्रतिपादित कर ब्राह्मण कुलोत्पन्न लोगों ने इसका लाभ उठाना चाहा। भगवान बुद्ध ने जिसका विरोध किया।

भगवान् बुद्ध ने गुणों के आधार पर वास्तविक ब्राह्मणत्व की प्रशंसा की। यद्यपि अपने अनुयायियों को 'श्रमण' कहा क्योंकि वर्ग या जाति जैसा भेद उनकी व्यवस्था में नहीं था। लेकिन उन्होंने ब्राह्मण को पर्यायवाची के रूप में भी प्रयुक्त किया तथा श्रमण के तुल्य उसकी नई परिभाषा दी।

संदर्भ-विवरण

१. संयुत्तनिकाय पालि (३५/१३२) चौथा भाग, पृ. १०८

२. ब्राह्मण, भन्ते, पच्छाभूमका कामणलुका सेवालमालिका उद्कोरोहका अग्गि परिचारका।
ते मतं काल कतं उरुयापेन्ति नाम सगां नाम आकामेन्ति। - वही चौथा भाग पृ. २७६

३. वही (७/८) प्रथम भाग, पृ. १६६

४. मा जाति पुच्छ चरणं च पुच्छ, कट्ठा हवे जायति जातवेदां।
नीचाकुलीनो पि मुनि धितिमा, आजानीयो होति हिरी निषेधो।।
सच्चेन दन्तो दसमा उपेतो, वेदन्तग्गं वुसित ब्रह्मचरियो।
य पनीतो मतुपव्हयेथ, कालेन सो जुहति दक्खिणेयेति।।
- संयुत्तनिकाय १, पृ. १६७, एवं सुत्तनिपात ४१८

५. नत्थि किच्चं ब्राह्मणस्स, कत किच्चोहि ब्राह्मणो। -संयुत्तनिकाय १ पृ. ४४

६. वही ४, पृ. १०६

७. वही ५, पृ. २-२३

८. वही २, ३ एवं ४ भाग

९. वही ५ पृ. ३६८

१०. वही, पृ. २२-२३

११. चिरसं वत पस्सामि ब्राह्मणं परिनिब्बुतं।
अधतिट्ठं अनायूहं, तिण्णं लोके दिसन्ति ति।। - वही १, पृ. ३

१२. गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।
गाथाभिगीतं पनुदन्तिं बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्ति रेसा।।
- वही १ पृ. १६६-१६७, एवं सुत्तनिपात ४१२६।

• • • •

पालि संघभेदस्कन्धक एवं मूलसर्वास्तिवादी विनयवस्तु

पालि विनयपिटक के अन्तर्गत चुल्लवग्ग में संकलित संघभेद स्कन्धक एवं मूलसर्वास्तिवाद विनयवस्तु के अन्तर्गत संग्रहीत संघभेदवस्तु भिक्षु देवदत्त से सम्बन्धित है, जिसका तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है-

पालि संघभेद स्कन्धक-संघभेद स्कन्धक देवदत्त की प्रव्रज्या से प्रारम्भ होती है। देवदत्त भगवान का चचेरा भाई था। भगवान बुद्ध के बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् प्रथम बार कपिलवस्तु आगमन पर देवदत्त की प्रव्रज्या हुई थी। उसने ऋद्धि लाभ किया। पश्चात् देवदत्त को लाभ सत्कार एवं प्रशंसा की इच्छा उत्पन्न होती हैं वह अपनी ऋद्धि के प्रभाव से कुमार अजातशत्रु को अपना सहायक बनाता हैं। अजातशत्रु भी उसको यथेष्ट सहायता एवं सम्मान प्रदान करता है। जैसे ही देवदत्त भिक्षुसंघ को हथियाने की बात सोचता है, उसकी ऋद्धि चली जाती है। एक दिन वह भगवान से कहता है अब आप वृद्ध हो गए हैं, अच्छा हो कि भगवान संघ उसे सुपुर्द कर दें। तीन बार उसके निवेदन एवं भगवान के मना करने पर वह कुपित होकर चला जाता है। भगवान घोषणा करवा देते हैं कि देवदत्त अब विपरीत प्रकृति का हो गया है, इसलिए् बुद्ध, धर्म एवं संघ के अनुकूल नहीं है।

देवदत्त अजातशत्रु से जाकर कहता है कि पहले मनुष्य अधिक आयु वाले होते थे, अब कम आयु वाले हैं, हो सकता है कि तुम कुमार अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाओ, इसलिए अच्छा यह है कि तुम पिता का बध कर राज्य ले लो एवं मैं भगवान को मारकर बुद्ध हो जाऊं। देवदत्त की बात मानकर अजातशत्रु पिता की हत्या करने के प्रयास में पकड़ लिया जाता है, लेकिन राजा बिम्बसार उसे माफकर स्वेच्छा से राज्य दे देता है। अन्त में देवदत्त स्वयं गृद्धकूट पर्वत पर चढ़कर पत्थर लुढ़का देता है, जिससे भगवान के पैर में चोट लगती है एवं खून भी बहता है। पुनः अजातशत्रु भगवान के वध के लिए मदमत्त चण्ड हाथी को छुड़वाता है, लेकिन हाथी भी भगवान के सामने नतमस्तक हो जाता है, जिससे भगवान का प्रभाव और बढ़ जाता है। फिर देवदत्त को कालिक आदि पाजी भिक्षुओं के साथ पांच वस्तुओं को लेकर विवाद करता है। यह कंहकर कि भगवान अल्पेच्छु, सन्तुष्ट, धुतपायी कहते हुए पांच नियमों का पालन नहीं करते, मैं मानता हूँ ५०० भिक्षुओं को फोड़कर ले जाने में सफल हो जाता है। लेकिन सारिपुत्र एवं मोद्गल्यायन के समझाने पर वे भी वापस आ जाते हैं। यह जानकर देवदत्त को गरम खून की उल्टी होती है। भगवान उसे नरकगामी कहते हैं। पश्चात् भगवान धर्म का उपदेश देते हैं[1]।

मूलसर्वास्तिवादी विनयवस्तु और संघभेद वस्तु[२]– संघभेद वस्तु के प्रारम्भ में भगवान मगधराज अजातशत्रु को मनोमयकाय के सम्बन्ध में नानाप्रकार के दृष्टान्तों द्वारा उपदेश देते हैं। प्रसन्न होकर अजातशत्रु घोषणा करता है कि अब उसका राजप्रासाद भगवान एवं संघ के लिए खुल गया एवं देवदत्त के लिए बन्द हुआ। जब देवदत्त राजप्रासाद में जाता है तो द्वारपाल द्वारा द्वार पर रोक दिया जाता हैं उसी समय उत्पलवर्णा भिक्षुणी भिक्षान्न लेकर निकलती है। देवदत्त सोचता है कि इसी भिक्षुणी ने ही राजा से भेद किया है और क्रुद्ध होकर उसे मार डाला है, जिससे भिक्षुणी का प्राणान्त हो जाता है। भगवान उसे नरक का बन्ध बतलाते हैं एवं पूर्व जन्म में भी उत्पलवर्णा भिक्षुणी का हन्ता कहते हैं।

स्वयं देवदत्त भी सोचता है कि उसने भगवान पर शिला फेंककर, भिक्षु संघ में फूट डालकर तथा उत्पलवर्णा भिक्षुणी का प्राणघात कर नरक का बन्ध किया हैं लेकिन पूरण (पूरणकाश्यप)[३] आकर समझाते हैं कि परलोक, पुण्य-पाप, नरक आदि कुछ नहीं है, एवं देवदत्त को कपिलवस्तु में जाकर राज्य करने के लिए प्रेरित किया। देवदत्त भी सन्तुष्ट होकर पात्र वस्तुओं को लेकर संघभेद के ख्याल से अपना उपदेश देता रहता है।

एक समय जब भगवान श्रावस्ती में थे, देवदत्त कपिलवस्तु उनकी पत्नी को हथियाने के ख्याल से जाता है। जाकर गोपा से कहता है कि गौतम ने अब प्रबज्या ले ली है, मैं तुम्हारे लिए आया हूँ। 'गोपा' ने कहा– बोधिसत्त्व उसका हाथ ग्रहण करने में समर्थ थे, क्या वह भी समर्थ है ? जैसे ही निर्लज्ज भाव से उसका हाथ छूता है, देवदत्त बहुत दूर फेंका हुआ दिखाई देता है और वह भागकर निकल जाता है, उसके वस्त्र फट जाते हैं, लेकिन देवदत्त सोचता है ठीक है, इन पर भी उनके शिष्य उस पर श्रद्धा करेंगे[४]। पुनः दूसरी बार शाक्यों के पास जाता है एवं कहता है कि मुझे राजा के रूप में प्रतिष्ठापित करो। उनके कहने पर कि पहले अन्तःपुर से स्वीकृति लें, तुरन्त देवदत्त अन्तःपुर में जाकर कहता है कि मैं कपिलवस्तु में राज्य करूंगा, तुम मेरी अग्रमहिषी बनकर रहो। यशोधरा दोनों हाथों से लेकर फेंक देती है। देवदत्त कष्ट से क्रन्दन करता है। यशोधरा कहती है कि तुम मेरा हाथ ग्रहण करने में भी समर्थ नहीं हो और मुझे चाहते हो। मेरे स्वामी तो बोधिसत्त्व है। पुनः शाक्य कहते हैं कि यदि वह भगवान बुद्ध से क्षमालाभ करे तो राज्य करेगा। देवदत्त यह सोचकर कि यदि भगवान क्षमालाभ नहीं देंगे तो नख से छेदकर विष लगा दूंगा। लेकिन भगवान उनके प्रयास को असफल कर देते हैं, अपने पैर को स्फटिक मणि में बदल देते हैं। उल्टे उसके नष्ट ही नष्ट हो जाते हैं।

देवदत्त अब बदल जाता है, वह भगवान से कहता है कि आपकी शरण में जाता हूँ एवं आपका कथन है कि जो भगवान की शरण में जाता है वह दुर्गति में नहीं पड़ता। यदि अब भी मैं दुर्गति में जाऊँगा तो आपका वचन मिथ्या हो जायेगा। इस प्रकार कहता हुआ देवदत्त अवीथि नरक में जाता है।

भगवान द्वारा प्रेरित सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन समाधि बल से देवदत्त के पास नरक में जाते हैं एवं देवदत्त को उसके कर्म याद दिलाते हैं जिसके फलस्वरूप उसे नरक भोगना पड़ा।

१. भगवान के वध के लिए गृद्धकूट पर्वत शिला का फेंकना।

२. श्रावकसंघ में भेद डालना।

३. उत्पलवर्णा भिक्षुणी की हत्या।

४. भगवान के वध के लिए हस्तिनाग का छोड़ना।

सारिपुत्र भगवान् की भविष्यवाणी भी उसे सुनाते हैं जिसमें कहा गया है कि देवदत्त अल्पकाल अवीथि नरक में अवस्थान करने के पश्चात् अस्थिमान नामक प्रत्येक बुद्ध हो जायेगा एवं अवशेष में निरूपाधिशेष निर्वाण धातु में परिनिर्वाण लाभ करेगा[५]। सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन ने पूरण एवं कोकालिक को भी नरक में देखा। भगवान ने और भी कई वृतान्त बताए जिनमें पूर्वजन्म में देवदत्त ने पापाचरण किया था। अन्त में भगवान ने संघ सामग्री एवं संघ भेद का उपदेश दिया।

तुलनात्मक विवेचन– संघ भेदवस्तु का प्रथम अंश उपलब्ध नहीं है[६]। पालि संघ में स्कन्धक में आए देवदत्त से सम्बन्धित प्रारम्भिक विवरण इसमें नहीं है जैसे देवदत्त की प्रव्रज्या, ऋद्धिलाभ, प्रशंसा की चाह, कुमार अजातशत्रु को वश में करना, भगवान से संघ की महन्ताई मांगना, पांच वस्तुओं को लेकर भगवान से विवाद, पत्थर एवं हाथी के द्वारा भगवान के प्राणघात का प्रयास। संघभेद वस्तु में देवदत्त की इन सब चर्चाओं की पुष्टि एवं सूचना मात्र मिलती है[७]।

संघभेद वस्तु में ऐसी कई घटनाएं हैं जो पालि संघभेद स्कन्धक में नहीं हैं जैसे–देवदत्त द्वारा उत्पलवर्णा भिक्षु की हत्या, गोपा–यशोधरा को अग्रमहिषि बनाने एवं कपिलवस्तु का राज्य लेने का प्रयास। पूरण की मित्रता एवं प्रेरणा, विष एवं नख के द्वारा भगवान की हत्या का एक और प्रयास। सारिपुत्त एवं मौद्गल्यायन के द्वारा नरक में उसके कर्मों का विवेचन एवं उसके सम्बन्ध में भगवान द्वारा कही गई भविष्यवाणी।

दोनों में पांच वस्तुओं की जो बात कही गई है, उसमें अन्तर हैं पालि संघभेद स्कन्धक में जो पांच वस्तुएं हैं उनमें चार प्रत्ययों का कठोरता से पालन, तथा मछली मांस का त्याग समाहित है[८]। जबकि मूलसर्वास्तिवादी विनयवस्तु के संघभेद के विनयवस्तु में कुछ भिन्न है जो इस प्रकार है। देवदत्त पांच वस्तुओं का वर्जन करता है– १. दधिक्षीर भोजन, २. मांस भोजन, ३. लवण भोजन, ४. दश वस्त्र तथा ५. अरण्यवास।

इसके त्याग के कारण भी बतलाए हैं एवं गौतम को इन वस्तुओं का सेवन करते हुए बतलाया गया है[९]।

तुलनात्मक विवेचन किया जाय तो पता चलता है कि विनयवस्तु में मछली-मांस की जगह मांस की बात कही गई है। दधिक्षीर एवं लवण ये दो प्रत्यय पिण्डपातिक एवं दक्खमूलिक की जगह आ गये है। पंसुकूलिक एवं दशवस्त्रों में समानता है लेकिन अरण्यवास के सम्बन्ध में ठीक उल्टा भाव है।

पालि साहित्य के अनुसार देवदत्त कहता है कि भिक्षु जीवन भर अरण्यवास करे, ग्राम में रहना वर्जित है, जब कि विनयवस्तु में कहा गया है गौतम अरण्य हैं, हम ग्रामवासी। यह पाठ दोष प्रतीत होता है[१०]।

दोनों के अन्त में संघभेद एवं संघ सामग्री से सम्बन्धित उपदेश दिया गया है। अन्त में कहा जा सकता है कि देवदत्त के सम्बन्ध में दोनों परम्पराओं में एक ही मान्यता है। सद्धर्म के विरोधी के रूप में। जैसा कि पालि एवं बौद्ध संस्कृत साहित्य में मार। दोनों के कथानक अलग-अलग होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं। विनयवस्तु में दर्पकाय एवं मनोमयकाय आदि के सम्बन्ध में जो दृष्टान्त दिए गए हैं वे पालि स्कन्धक में नहीं.है। इसकी शैली पालि जातकों के समान है।

संदर्भ-विवरण

१. विनयपिटके चुल्लवग्ग-पधान संसोधको-भिक्खु जगदीसकस्सपो, विहार राजकीयेन पालि प्रकाशन मण्डलेन प्रकाशिता, १९५६, पृ. २७९-३४५।

२. मूलसर्वास्तिवाद विनयवस्तु (द्वितीय खण्ड) श्री शीतांशु शेषनागशर्मणा सम्पादितम्।
मिथिला विद्यापीठ प्रधानेन प्रकाशितः, १९७० पृ. १८०-२०३।

३. तुलनीय-संयुत्तनिकाय भाग ३, पृ. ४२०-४२१। दीघनिकाय भाग १, पृ. ४५-४६।

४. तत्थ वस्त्रं पाटितं द्विखण्ड जातग। स संलग्नयति। शोभनम्। अलेन कल्पन्त मे श्रावका निवर्सननिवासमिति।
-मूलर्स्वास्तिवाद विनयवस्तु (द्वि.खं.) पृ. १९१

५. वही पृ. १९२, १९३।

६. वही, सारांश, पृ. ३२

७. वही, पृ. १८०-२०३।

८. भिक्खू यावजीवं आरज्जिका अस्सु, यो गामन्तं ओसरेथ, वज्जं नं फुसेय्य।
यावजीवं पिण्डपातिका अस्सु, यो निमन्तनं सादिसेव्य, वज्जे न सेयूय।
यावजीवं पंसुकूलिका अस्सु, यो गहपतिचीवरं सादिसेयूय, वज्जं न फुसेयूथ।
यावजीवं दक्खमूलिका अस्सु, या छभं उपगझछेयूय, वज्जं नं फुसेयूय।
यावजीवं मच्छमंसे न खादेय्युं, यो मच्छनं सं खादेयूय, वज्जं नं फुसेयया ति। - चुल्लवग्ग, पृ. २९८।

९. श्रमणो भवन्तो गौतमों दधिक्षीरं परिभुक्ते। अस्याभिरयाग्रेण न परिभोक्तव्यम्। यत् कारणम्। अतो निदानं वत्सकाः क्लाम्यन्ति। श्रमणो गौतमों मांसं परिभुक्ते। आत्माभिन्नं परिभोक्तव्यम् यत्कारणम्। अतो निदानं प्राणिनों घात्यन्ते।
श्रमणो गौतमों लवणं परिभुक्ते। अस्माभिर्न परिभोक्तव्यम्। रेणुसभूतमिति कृत्वा श्रमणो गौतमश्छिन्न दशानिप वस्त्राणि धारयति। भत्साभिर्दीर्घदशानि वस्त्राणि धारयितव्यानि। यत्कारणम् अतो निदाने कुविन्दानां पुरुषकारी ध्वंस्यते। श्रमणों गौतमोऽरण्ये प्रतिवसति। अतो निदानं मनुष्याणां देयधर्मा न परिभुज्यन्त इति। अन्तरोद्धानम्। धीरं मांसे लवणं वसामारण्यकेन च। - मूल सर्वास्तिवादी विनयवस्तु (भाग-१) पृ. १९०।

१०. चुल्लवग्ग, पृ. २९८, विनयवस्तु, पृ. १९०

• • • •

धम्मपद की सार्वभौमिकता

धम्मपद पालि त्रिपिटक के अन्तर्गत खुद्दकनिकाय का एक ग्रन्थ है। धम्मपद से बौद्धधर्म का तो ज्ञान होता ही है मानव कल्याण की विश्वोपयोगी सार्वकालिक शिक्षाएं प्राप्त होती हैं। यही कारण है कि इसे बौद्धधर्म के प्रतिनिधि ग्रन्थ का दर्जा दिया जाने लगा है जैसे बाइविल, गीता आदि को ईसाई एवं हिन्दू परम्परा में दिया जाता है। इस धम्मपद का पाठ बुद्ध के समय ही किया जाने लगा था। भगवान बुद्ध की 'वाणी' के रूप में सर्वाधिक प्रामाणिक एवं लोकप्रिय रचना है। इसे कई भाषाओं में अनूदित भी किया गया है। प्राकृत धम्मपद भी मिलता है, संस्कृत छाया भी की गई है।

धम्मपद को बुद्धवचन मानने में किसी को आपत्ति नहीं है। त्रिपिटक के खुद्दकनिकाय में सम्मिलित होने के कारण यह बुद्धवचन तो है ही, स्वयं भगवान बुद्ध ने धम्मपद की प्रशंसा की थी।

'धम्मपद' शब्द का अर्थ है धर्म-सम्बन्धी पद या शब्द। 'पद' शब्द का अर्थ वाक्य या गाथा की पंक्ति भी होता है। अतः 'धम्मपद' का अर्थ धर्म-सम्बन्धी वाक्य या गाथा भी है। बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म-सम्बन्धी शब्दों, वाक्यों या गाथाओं को भिक्षु उनके जीवन-काल में ही कण्ठस्थ करने लगे थे। सुत्त-निपात के अट्ठक-वग्ग को बुद्ध के एक शिष्य ने उनके सामने सस्वर सुनाया था । इसी प्रकार दूसरे बुद्ध-वचन भी भिक्षुओं के द्वारा कण्ठस्थ किये जाते थे और उनका किसी न किसी रूप में संकलन भी उस समय विद्यमान था। 'धम्मपद' ऐसा ही एक संकलन है। स्वयं 'धम्मपद' की दो गाथाओं में धर्मपदों के अर्थ में 'धम्मपद' शब्द का प्रयोग मिलता है। यह उसकी प्राचीनता का सूचक है। ये दोनों गाथाएँ इस प्रकार हैं-

को इमं पठविं विजेस्सति यमलोकं च इमं सदेवकं ।
को धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति।। ४४ ।।
सेखो पठविं विजेस्सति यमलोकं च इमं सदेवकं।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति।। ४५ ।।

''कौन इस पृथ्वी तथा देवताओं के सहित यम-लोक को जीतेगा ?
कौन कुशल पुष्प के समान इस सुन्दर रूप से उपदिष्ट 'धम्मपद' को चुनेगा?
''शैक्ष्य पुरुष इस पृथ्वी तथा देवताओं के सहित यम-लोक को जीतेगा।

शैक्ष्य पुरुष पुष्प के समान इस सुन्दर रूप से उपदिष्ट 'धम्मपद' को चुनेगा।।"

(-धम्मपद, पुप्फवग्गो)

संयुत्तनिकाय में भी 'धम्मपद' शब्द का प्रयोग धर्म-पदों के रूप में हुआ है और उससे यह और भी अच्छी तरह प्रमाणित हो जाता है कि बुद्ध के काल में ही उनके द्वारा उपदिष्ट गाथाओं का एक संकलन धर्म-पदों के रूप में विद्यमान था और भिक्षु उन्हें कण्ठस्थ करके अपने उपदेशों में प्रयुक्त करते थे। पियंकर-सुत्त में कहा गया है कि एक बार भिक्षु अनुरुद्ध (अनिरुद्ध) श्रावस्ती के जेतवनाराम में प्रातःकाल कुछ 'धर्मपदों' का पाठ कर रहे थे और उन्हें सुनने की आतुरता में एक स्त्री अपने शोर करते हुए पुत्र को चुप करती हुई कहती है, "मेरे प्रियंकर ! चुप हो जा ! शोर मत कर। देख, यह भिक्षु धर्मपदों को पढ़ रहा है। यदि हम धर्मपदों को जानेंगे तो हमारा कल्याण होगा। इसी प्रकार संयुत्तनिकाय के ही सज्झाय-सुत्त में एक भिक्षु का उल्लेख आया है जो पहले 'धर्मपदों' को पढ़ा करता था, परन्तु अधिक विकसित आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त कर अब उसने उनका पाठ करना छोड़ दिया है। यह पूछे जाने पर कि "भिक्षु! अब आप धर्मपदों का पाठ क्यों नहीं करते?" वह कहता है, "पहले जब तक मुझे वैराग्य नहीं हुआ था, मैं धर्मपदों को पढ़ा करता था, अंगुत्तर-निकाय में भी हमें ज्ञात होता है कि एक बार भगवान् बुद्ध ने सप्पिनी या सप्पिनिका (वर्तमान पंचान, बिहार में) नदी के तीर पर स्थित एक परिव्राजकाराम में वहाँ के परिव्राजकों के समक्ष चार धर्मपदों का उपदेश दिया था। इस प्रकार धर्म के-बुद्ध के उपदेशों के-'पदों' या गाथाओं को भिक्षु बुद्ध के जीवन-काल में कण्ठस्थ करते थे। आज जो 'धम्मपद' हमें मिलता है, वह उन्हीं गाथाओं का मूल संकलन है। 'धम्मपद' की कई गाथाओं के उद्धरण 'निद्देस' और 'कथावत्थु' में दिये गये हैं और ईस्वी सन् के आसपास की रचना 'मिलिन्दपञ्हो' में "**भासितं पेतं भगवता देवातिदेवेन धम्मपदे**" ('उन देवातिदेव भगवान् (बुद्ध) ने 'धम्मपद' में ऐसा कहा है") ऐसा कहते हुए दो विभिन्न स्थलों पर 'धम्मपद' की दो गाथाओं (३२वीं और ३२७वीं) को उद्धृत किया गया है[1]। इस प्रकार बुद्ध-वचन के रूप में धम्मपद की प्रतिष्ठा अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है। धम्मपद में कुल मिलाकर ४२३ गाथाएँ हैं, जो २६ वर्गों में बंटी हुई हैं। इसके मुख्यतः चार संस्करण उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम प्राकृत धम्मपद है। खोतन में खंडित खरोष्ठी लिपि में यह प्राप्त हुआ हैं यह बिल्कुल अपूर्ण अवस्था में है और यह नहीं कहा जा सकता कि इसका मौलिक स्वरूप क्या है। इस ग्रन्थ का सम्पादन पहले फ्रेंच विद्वान् ई. सेना ने किया था। बाद में इसका सम्पादन डा. वेणीमाधव बरुआ और सुरेन्द्रनाथ मित्र ने किया। प्रस्तुत ग्रन्थ में १२ अध्याय हैं, जिनकी अनुरूपता पालि-धम्मपद के साथ इस प्रकार है[2]-

प्राकृत धम्मपद वर्ग-क्रम वर्ग-नाम और गाथाओं की संख्या	पालि धम्मपद इनके अनुरूप क्रम, नाम और गाथाओं की संख्या जो पालि धम्मपद में पाई जाती है
१ मग-वग ३०	२० मग्ग-वग्ग १७
२ अप्रमाद-वग २५	२ अप्पमाद-वग १२
३ चित्त-वग (अपूर्ण)	३ चित्त-वग्ग ११
४ पुष-वग १५	४ पुप्फ-वग्ग १६
५ सहस-वग १७	८ सहस्स-वग्ग १६
६ पनित-वग या	६ पंडित-वग्ग १४
धमठ-वग १०	१९ धम्मट्ठ-वग्ग १७
७ बाल-वग ७ (अपूर्ण)	५ बाल-वग्ग १६
८ जरा-वग २५	११जरा-वग्ग ११
९ सुह-वग २०	१५ सुख-वग्ग १२
१० तष-वग ७ (अपूर्ण)	२४ तण्हा-वग्ग २६
११ भिक्षु-वग ४०	२५ भिक्खु-वग्ग २३
१२ ब्राह्मण-वग ५०	२६ ब्राह्मण-वग्ग ४१

जिन वर्गों के नामों में समानता है, उनके भी क्रमों और गाथाओं की संख्या के सम्बन्ध में काफी असमानता है। अधिकतर पालि धम्मपद की अपेक्षा प्राकृत-धम्मपद के वर्गों में ही गाथाएँ अधिक हैं। इस गाथा-वृद्धि का कारण श्री भरतसिंह उपाध्याय ने बतलाया है कि धम्मपद की गाथाओं का संग्रह पूरे सुत्त-पिटक के ग्रन्थों से ही किया गया है, अतः उनके चुनने में विभिन्न सम्प्रदायों के ग्रन्थों में विभिन्नता आ गई है।[3] अन्य संस्करणों के बारे में भी यही बात है। एक बड़ी विशेषता प्राकृत धम्मपद की भाषा के सम्बन्ध में यह है कि उसकी आश्चर्यजनक समानता अशोक के शाह-बाज़गढ़ी और मनसेहरा के अभिलेखों से है। इससे यही विदित होता है कि प्राकृत-धम्मपद उत्तर-पश्चिम भारत या मध्य-एशिया की बोलचाल की भाषा में लिखा गया था। उसमें कुछ संस्कृतीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। धम्मपद का दूसरा संस्करण, जिसका भी स्वरूप अभी अनिश्चित ही है, उसका गाथा संस्कृत या मिश्रित संस्कृत में लिखा हुआ रूप है। इसका साक्ष्य हमें 'महावस्तु' से मिलता है, जो स्वयं गाथा-संस्कृत में लिखी हुई रचना है और जिसने 'धर्मपद का एक अंश मानते हुये 'सहस्र वर्ग' नाम २४ गाथाओं के समूह को उद्धृत किया है- **तेषां भगवान् जटिलानां धर्मपदेषु सहस्रवर्गं भासति 'सहस्रमपि वाचानां अनर्थपदसंहितानां, एकार्थवती श्रयो यं श्रुत्वा उपशाम्यति'** किन्तु वहाँ केवल १६ गाथाएँ हैं। 'महावस्तु में उद्धृत 'सहस्रवर्ग' के अतिरिक्त गाथा संस्कृत में लिखे धर्मपद के पूरे स्वरूप के बारे में

हमें कुछ अधिक ज्ञान नहीं है। धम्मपद के 'च ह-खि-उ-थिङ्' नामक चीनी अनुवाद से जो २२३ई० में किया गया था, यह अवश्य ज्ञात होता है कि उसका मूल प्राकृत धम्मपद था, किन्तु उसके भी आज अनुपलब्ध होने के कारण प्राकृत-धम्मपद के वास्तविक स्वरूप की समस्या उलझी ही रह जाती है। धम्मपद का तीसरा रूप विशुद्ध संस्कृत में है, जो अपने खंडित रूप में तुर्फान में पाया गया है। इस ग्रन्थ में ३६ अध्याय हैं, अर्थात् पालि धम्मपद से ७ अधिक। इसी संस्करण का तिब्बती भाषा में अनुवाद भी मिलता है, जो ८१७-८४२ ईस्वी में किया गया था। रॉकहिल ने इसका अनुवाद 'उदान वर्ग' शीर्षक से किया है और उसे संस्कृत धर्मपद का प्रतिरूप माना है। धम्मपद का चौथा रूप फ-ख्यू-किङ् नामक चीनी अनुवाद में पाया जाता है। यह अनुवाद मूल संस्कृत धर्मपद से २२३ ई० में किया गया। मूल आज अनुपलब्ध है। इस चीनी अनुवाद में पालि धम्मपद के २६ वर्गों या अध्यायों की जगह ३९ तो अध्याय हैं और ४२३ गाथाओं की जगह ७५२ गाथाएँ हैं। इनका तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है-

चीनी धम्मपद (फ-क्ष्यू-किङ)	**पालि धम्मपद**
१. अनित्यता	(२१) अनुपलब्ध
२. ज्ञान-दर्शन	(२९) अनुपलब्ध
३. श्रावक	(१९) अनुपलब्ध
४. श्रद्धा	(१८) अनुपलब्ध
५. कर्तव्य-पालन	(१६) अनुपलब्ध
६. विचार	(१२) अनुपलब्ध
७. मैत्री-भावना	(१९) अनुपलब्ध
८. संलाप	(१२) अनुपलब्ध
९. यमक-वग्ग	(२२) १. यमक-वग्ग (२०)
१०. अप्रमाद-वग्ग	(२०) २. अप्पमाद-वग्ग (१२)
११. चित्त-वग्ग	(१२) ३. चित्त-वग्ग (११)
१२. पुप्फ-वग्ग	(१७) ४. पुप्फ-वग्ग (१६)
१३. बाल-वग्ग	(२१) ५. बाल-वग्ग (१६)
१४. पंडित-वग्ग	(१७) ६. पंडित-वग्ग (१४)
१५. अरहन्त-वग्ग	(१०) ७. अरहन्त-वग्ग (१०)
१६. सहस्र-वग्ग	(१६) ८. सहस्स-वग्ग (१६)
१७. पाप-वग्ग	(२२) ९. पाप-वग्ग (१३)
१८. दंड-वग्ग	(१४) १०. दंड-वग्ग (१७)
१९. जरा-वग्ग	(१४) ११. जरा-वग्ग (११)

२०. अत्त-वग्ग	(१४) १२. अत्त-वग्ग (१०)
२१. लोक-वग्ग	(१४) १३. लोक-वग्ग (१३)
२२. बुद्ध-वग्ग	(२१) १४. बुद्ध-वग्ग (१८)
२३. सुख-वग्ग	(१४) १५. सुख-वग्ग (१२)
२४. पिय-वग्ग	(१२) १६. पिय-वग्ग (१२)
२५. क्रोध-वग्ग	(२६) १७. क्रोध-वग्ग (१४)
२६. मल-वग्ग	(१६) १८. मल-वग्ग (२१)
२७. धम्मट्ठ-वग्ग	(१७) १६. धम्मट्ठ-वग्ग (१७)
२८. मग्ग-वग्ग	(२८) २०. मग्ग-वग्ग (१७)
२६. पकिण्ण-वग्ग	(१४) २१. पकिण्ण-वग्ग (१६)
३०. निरय-वग्ग	(१६) २. निरय-वग्ग(१४)
३१. नाग-वग्ग (१८)	२३. नाग-वग्ग (१४)
३२. तण्हा-वग्ग (३२)	२४. तण्हा-वग्ग (२६)
३३. सेवा (२०)	---
३४. भिक्खु-वग्ग (३२)	२५. भिक्खु-वग्ग (२३)
३५. ब्राह्मण-वग्ग (४०)	२६. ब्राह्मण-वग्ग (४१)
३६. निर्वाण (३६)	---
३७. जन्म और मृत्यु (१८)	---
३८. धर्म-लाभ (१६)	---
३६. महामंगल (१६)	---

ऊपर चीनी अनुवाद के वर्गों के नाम जहाँ उनकी पालिं धम्मपद के साथ समता है, पालि में सुविधा के विचार से दे दिये गए हैं। चीनी अनुवादों में उनके स्वभावतः चीनी भाषा में ही शीर्षक हैं।

भरतसिंह उपाध्याय का मत है कि इन सब का मूलाधार पालि धम्मपद ही है, जिसकी गाथाओं को अक्सर बढ़ा कर और कहीं-कहीं घटाकर भी भिन्न-भिन्न बौद्ध सम्प्रदायों ने अपने अलग-अलग संग्रह बना लिए। इस प्रकार पालि धम्मपद का महत्व बौद्ध जगत में शिक्षाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

'यमकवग्ग' (वर्ग १) में अधिकतर ऐसे उपदेशों का संग्रह है, जिनमें दो-दो बातें जोड़े के रूप में आती हैं। "मुझे गाली दी'; 'मुझे मारा'; 'मुझे हरा दिया', 'मुझे लूट लिया', ऐसा जो मन में बांधते हैं, उनका वैर कभी शान्त नहीं होता। (१/१४) अहिंसा का यह सनातन सन्देश भी कितना मार्मिक है यहाँ वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता। अवैर से ही वैर शान्त होता है, यही सनातन धर्म है।" (१/५), बड़ी-बड़ी संहिताओं का भाषण

करने वाले किन्तु उनके अनुसार आचरण न करने वाले व्यक्ति की 'धम्मपद' में उस ग्वाले के समान कहा गया है जिसका काम केवल दूसरों की गायों को गिनना है। (१/१९), बौद्ध चिन्तकों ने शारीरिक संयम के मूल को सदा मन के अन्दर देखा था, इसीलिए धम्मपद की प्रथम गाथा मन की महिमा का वर्णन करती हुई कहती है, "मन ही सब धर्मों (कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों) का अग्रगामी है, मन ही उनका प्रधान है। सभी धर्म मनोमय हैं।" आत्म-संयम, वास्तविक श्रामण्य और सत्संकल्प के स्वरूप के महत्त्व के वर्णन इस वर्ग के अन्य विषय हैं। 'अप्पमाद-वग्ग' में प्रमाद की निन्दा और अ-प्रमाद की प्रशंसा की गई हैं अप्रमाद के द्वारा ही अनुपम योग-क्षेम रूपी निर्वाण को प्राप्त किया जाता है। (२/३), अप्रमाद के कारण ही इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना है। (२/१०), अप्रमाद में रत भिक्षु को ही यहाँ 'निर्वाण के समीप' **निब्बाणस्सेव सन्तिके** कहा गया है। (२/१२), 'चित्तवग्ग' (वर्ग ३) में चित्त-संयम का वर्णन हैं 'जितनी भलाई न माता-पिता कर सकते हैं, न दूसरे भाई-बन्धु, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।' पुप्फवग्ग (वर्ग ४) में पुष्प को आलम्बन मान कर नैतिक उपदेश दिया गया है। सदाचार रूपी गन्ध की प्रशंसा करते हुए कहा गया है, तगर और चन्दन की जो यह गन्ध फैलती है, वह अल्पमात्र है। किन्तु यह जो सदाचारियों की गन्ध है। वे देवताओं में फैलती है। 'बालवग्ग' में मूर्खों के लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि उनके लिये संसार (आवागमन) लम्बा है। इसी वर्ग में सांसारिक उन्नति और परमार्थ के मार्ग की विभिन्नता बतलाते हुए कहा गया है लाभ का मार्ग दूसरा है और निर्वाण को ले जाने वाली दूसरी, इसे जानकर बुद्ध का अनुयायी भिक्षु सत्कार का अभिनन्दन नहीं करता, बल्कि एकान्तचर्या को बढ़ाता है।" पंडितवग्ग' (वर्ग ६) में वास्तविक पंडित पुरुषों के लक्षण बतलाये गये हैं। जो अपने लिये या दूसरों के लिये पुत्र, धन और राज्य नहीं चाहते, न अधर्म से अपनी उन्नति चाहते हैं, वही सदाचारी पुरुष, प्रज्ञावान् और धार्मिक हैं। अरहन्त वग्ग (वर्ग ७) में बड़ी सुन्दर काव्य-मय भाषा में अर्हन्तों के लक्षण कहे गये हैं। जिसका मार्ग-गमन समाप्त हो चुका है, जो शोक-रहित तथा सर्वथा मुक्त है, जिसकी सभी ग्रन्थियां क्षीण हो गई हैं, उसके लिये सन्ताप नहीं है। सचेत ही वह उद्योग करते हैं। गृह-सुख में रमण नहीं करते! हंस जैसे क्षुद्र जलाशय को छोड़ कर चले जाते हैं, वैसे ही अर्हत् गृह को छोड़ चले जाते हैं। जो वस्तुओं का संचय नहीं करते, जिनका भोजन नियत है, शून्यता-स्वरूप तथा कारण-रहित मोक्ष जिनको दिखाई पड़ता है, उनकी गति आकाश में पक्षियों की भांति अज्ञेय है। गाँव में या जंगल, नीचे या ऊँचे स्थल, जहाँ कही अर्हत् लोग विहार करते हैं, वही रमणीय भूमि है। सहस्सवग्ग (वर्ग ८) की मूल भावना यह है कि सहस्रों गाथाओं के सुनने से एक शब्द का सुनना अच्छा है, यदि उससे शान्ति मिले। सिद्धान्त के मन भर से अभ्यास का कण भर अच्छा है। सहस्रों यज्ञों से सदाचारी जीवन

श्रेष्ठ है। पापवग्ग (वर्ग ९) में पाप न करने का उपदेश दिया गया है, क्योंकि 'न आकाश में, न समुद्र के मध्य में, न पर्वतों के विवर में प्रवेश कर-संसार में कोई स्थान नहीं है जहाँ रह कर, पापकर्मों के फल से प्राणी बच सके। दंडवग्ग (वर्ग १०) में कहा गया है कि "जो सारे प्राणियों के प्रतिदंड त्यागी है, वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है, वही भिक्षु है। 'जरावग्ग'(वर्ग ११) में वृद्धावस्था के दुःखों का दर्शन है। इसी वर्ग में संसार की अनित्यता की याद दिलाते हुए यह मार्मिक उपदेश दिया गया है, जब नित्य ही आग जल रही है तो क्या हँसी है, क्या आनन्द मनाना है! अन्धकार से घिरे हुए तुम दीपक को क्यों नहीं ढूंढ़ते हो ? इसी वर्ग में भगवान् के उद्‌गार भी सन्निहित हैं, जो उन्हें सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करने के अनन्तर ही किये थे, अनेक जन्मों तक बिना रुके हुए मैं संसार में दौड़ता रहा। इस (काया-रूपी) कोठरी को बनाने वाले (गृहकारक) को खोजते-खोजते पुनः पुनः मुझे दुःख-मय जन्मों में गिरना पड़ा। आज हे गृहकारक ! मैंने तुझे पहचान लिया। अब फिर तू घर नहीं बना सकेगा। तेरी सारी कड़ियां भग्न कर दी गईं। गृह का शिखर भी निर्बल हो गया। संस्कार-रहित चित्त से आज तृष्णा का क्षय हो गया। अत्तवग्ग (वर्ग १२) में आत्मोन्नति का मार्ग दिखाया गया है। इसी वर्ग की प्रसिद्ध गाथा है "पुरुष आप ही अपना स्वामी है, दूसरा कौन स्वामी हो सकता है ? अपने को भली प्रकार दमन कर लेने पर वह दुर्लभ स्वामी को पाता है।" लोक-वग्ग (वर्ग १३) में लोक सम्बन्धी उपदेश हैं। बुद्धवग्ग (वर्ग १४) में भगवान् बुद्ध के उपदेशों का सर्वोत्तम सार दिया हुआ है-"सारे पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना-यही बुद्धों का शासन है। निन्दा न करना, घात न करना, भिक्षु-नियमों द्वारा अपने को सुरक्षित रखना, परिमाण जानकर भोजन करना, एकान्त में सोना-बैठना, चित्त को योग में लगाना- यही बुद्धों का शासन है।" "सुख-वग्ग" (वर्ग १५) में उस सुख की महिमा गाई गई है, जो धन-सम्पत्ति के संयोग से रहित और केवल सदाचारी और अकिंचनमय एवं मैत्रीपूर्ण जीवन से ही लभ्य है। भिक्षु कहते हैं, वैर-बद्ध प्राणियों के बीच अवैरी होकर विहरते हुए अहो ! हम कितने सुखी हैं। वैर-बद्ध मानवों में हम अवैरी होकर विहरते हैं ! भयभीत प्राणियों के बीच में अभय होकर विहरते हुए अहो ! हम कितने सुखी हैं! भयभीत मानवों में हम अभय होकर विहरते हैं। आसक्ति-युक्त प्राणियों के बीच में अनासक्त होकर विहरते हुए अहो ! हम कितने सुखी हैं! आसक्ति-युक्त मानवों में हम अनासक्त होकर विहरते हैं। पियवग्ग (वर्ग १६) में यह कहा गया है कि जिसके जितने अधिक प्रिय हैं,उसको उतने ही अधिक दुःख हैं। प्रेम से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है, प्रेम से मुक्त को कोई शोक नहीं, फिर भय कहाँ से? कोधवग्ग (वर्ग १७) की मुख्य भावना है अक्रोध से क्रोध को जीतो, असाधु को साधुता से जीतो, कृपण को दान से जीतो, झूठ बोलने वाले को सत्य से जीतो। मल्लवग्ग (वर्ग १८) में भगवान् ने

कहा है कि अविद्या ही सबसे बड़ा मल है। भिक्षुओं ! इस मल को त्याग कर निर्मल बनो ! धम्मट्ठ वग्ग (वर्ग १९) में वास्तविक धर्मात्मा पुरुष के लक्षण बतलाये गये हैं, बहुत बोलने से धर्मात्मा नहीं होता। जो थोड़ा भी सुन कर शरीर से धर्म का आचरण करता है और जो धर्म में असावधानी नहीं करता, वास्तव में धर्मधर है। इसी प्रकार मौन होने से मुनि नहीं होता। वह तो मूढ़ और अविद्वान् भी हो सकता है। जो पापों का परित्याग करता है, वही मुनि है। चूँकि वह दोनों लोकों का मनन करता है, इसीलिये वह मुनि कहलाता है।'' इसी वर्ग में भगवान् का यह उत्साहकारी मार्मिक उपदेश भी है, ''भिक्षुओं! जब तक चित्त-मलों का विनाश न कर दो, चैन मत लो''- **भिक्खू! विस्सासमापादि अप्पत्तो आसवक्खयं।** 'मग्गवग्ग'' (वर्ग २०) में निर्वाण-गामी मार्ग का वर्णन हैं सभी संस्कारों को अनित्य, दुःख और अनात्म समझते हुए मनुष्य को चाहिये कि ''वाणी की रक्षा करने वाला और मन से संयमी रहे तथा काया से पाप न करे। इन तीनों कर्म-पथों की शुद्धि करे और ऋषि (बुद्ध) के बताये धर्म का सेवन करे। 'पकिण्णक-वग्ग' (वर्ग २१) में अहिंसा और शरीर के दुःखदोषानुचिन्तन आदि का वर्णन हैं निरय-वग्ग (वर्ग २२) में बतलाया गया है कि कैसे पुरुषनरक-गामी होते हैं। नाग-वग्ग (वर्ग २३) में नाग (हाथी) के समान अडिग रहने का उपदेश दिया गया है। ''जैसे युद्ध में हाथी धनुष से गिरे वाण को सहन करता है, वैसे ही मैं वाक्यों को सहन करूँगा। संसार में तो दुःशील आदमी ही अधिक हैं। तण्हा वग्ग (वर्ग २४) में तृष्णा को समूल खोद डालने का उपदेश है। अपने पास दर्शनार्थ आये हुए आदमियों को सम्बोधित करते हुए भगवान् कहते हैं, इसलिए तुम्हें कहता हूँ, जितने यहाँ आये हो, तुम्हारा सब का मंगल हो जैसे खस के लिए लोग उषीर को खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ को खोदो। भिक्खु वग्ग (वर्ग २५) में भिक्षुओं के लिए लोमहर्षक उपदेश है। हे भिक्षु! इस नाव को उलीचो। उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हल्की हो जाएगी। राग और द्वेष का छेदन कर फिर तुम निर्वाण को प्राप्त कर लोगे। पुनः हे भिक्षु ! ध्यान में लगो। मत असावधानी करो। मत तुम्हारा चित्त भोगों के चक्कर में पड़े। प्रमत्त हो कर मत लोहे के गोले को निगलो। 'हाय दुःख!' कह कर दग्ध होते हुए मत तुम्हें पीछे क्रन्दन करना पड़े। भिक्षुओं ! जैसे जूही कुम्हलाये हुए फूलों को छोड़ देती है, वैसे तुम राग और द्वेष को छोड़ दो'' ''ब्राह्मण-वग्ग'' (वर्ग २६) में ब्राह्मणों के लक्षण गिनाये गए हैं २६/१३-४१ गाथाएँ तो बड़ी ही काव्यमय हैं। भगवान् की दृष्टि में वास्तविक ब्राह्मण कौन है, इस पर कुछ गाथाएँ देखिए-

माता और योनि में उत्पन्न होने से मैं किसी को ब्राह्मण नहीं कहता। वह तो 'भोवादी' ('भो' 'भो' कहने वाला, जैसा, ब्राह्मण उस समय एक दूसरे को सम्बोधन करते समय कहते है और संग्रही है। मैं तो ब्राह्मण उसे कहता हूँ, जो अपरिग्रही और लेने की इच्छा न रखने वाला है।

जो बिना दूषित चित्त किये गाली, वध और बन्धन को सहन करता है, क्षमा बल ही जिसकी सेना का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

कमल के पत्ते में जल और आरे के नोक पर सरसों की भाँति जो भोगों में लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ!

जो विरोधियों के बीच विरोध-रहित रहता है, जो दंडधारियों के बीच दंड-रहित रहता है, संग्रह करने वालों में जो संग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जिसने यहाँ पुण्य और पाप दोनों की आसक्ति को छोड़ दिया, जो शोक-रहित, निर्मल और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जिसके आगे, पीछे और मध्य में कुछ नहीं है, जो सर्वत्र परिग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ" आदि।

यहाँ धम्मपद की विषय-वस्तु के स्वरूप का जो परिचय दिया गया है, उससे स्पष्ट है कि उसमें नीति के वे सभी आदर्श संगृहीत हैं, जो भारतीय संस्कृति और समाज की सामान्य सम्पत्ति हैं।[४]

चित्त का महत्त्व- कायानुस्मृति से बौद्ध साधना का आरंभ होता है। कायानुस्मृति के साथ साधक चित्तानुस्मृति में भी लगा रहता है। चित्तानुस्मृति में लगा साधक अपने चित्त को देखता है कि उसका चित्त "राग के कारण मलिन तो नहीं है, द्वेष के कारण कुचेष्टा तो नहीं करना चाहता, स्वार्थ परायण तो नहीं है, परहित विमुख तो नहीं है। यों चित्त की अवस्था देखते हुए, चित्त सुप्रसन्न, शान्त तथा परोन्मुखी रहता है।" प्रसन्न चित्त की महिमा अपार है। प्रसन्नचित्त के द्वारा किये गये कार्य तथा बोले गये वचन से सुख ही सुख होता है और वह सुख मनुष्य के पीछे परछाईं की भांति चलता है, कभी भी अलग नहीं होता। तथागत का वचन है-

मनोपुब्बंगमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति छाया व अनपायिनी।। - धम्मपद २

चित्त को निर्मल बनाने के साथ वेदना में अर्थात् सुख दुःख की अवस्थाओं में तथा अन्य धर्मों का मानसिक अवस्थाओं में साधक जागरूक रहता है। वेदनानुस्मृति तथा धर्मानुस्मृति के प्रसंग में चित्त की ही प्रधानता रहती है।" चित्त की साधना से ही उनका विक्षेप शान्त होता है"। वस्तुतः चित्त के रास्ते पर लाना ही साधक का प्रधान कार्य है। चित्त की साधना के प्रधान फल की ओर तथागत ने संकेत किया है-

दिसो दिसं यं तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छापणिहितं चित्तं पापियो नं ततो करे।। - धम्मपद ४२

यदि चित्त बुराई में पड़ गया तो वह, एक वैरी दूसरे वैरी के प्रति जितना अपकार करता है, उससे कहीं अधिक अपकार करेगा। किं च-चित्त यदि अच्छाई में लग गया, तो माता पिता तथा अन्य स्वजन जितना कल्याण करते हैं, उनसे कहीं अधिक कल्याण करेगा।

न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे।। - धम्मपद ४३

आत्मकल्याण-आत्मकल्याण की बहुत प्रशंसा की गयी है। धम्मपद में तथागत का वचन है-

अत्तदत्थं परत्थेन बहुनापि न हापये।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय सदत्थपसुतो सिया।। - धम्मपद १६६

परार्थ बहुत हो तो भी आत्मार्थ नहीं त्यागना चाहिए। आत्मार्थ क्या है, इसे जानकर अपने कल्याणार्थ में लगे रहना चाहिए।

यह मानव समाज, जो पृथग्जनों तथा कल्याणपृथग्जनों से व्याप्त है, उसमें आर्यता का संचार करना बौद्ध साधना का उद्देश्य है। यह बौद्ध आर्यता वैदिक आर्यता से भिन्न रही है। यज्ञों के द्वारा आर्यता प्राप्त करना वैदिक मार्ग था तथा इस मार्ग में पशुबलि बहुत आवश्यक वस्तु थी। पशुओं में अश्व, गो, अवि (मेष) तथा अज (बकरे) ही नहीं, पुरुष का भी समावेश रहता था। यह आर्यता तथागत को मान्य न थी। उन्होंने स्पष्ट कहा है-

न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियो ति पवुच्चति।। - धम्मपद २७०

प्राणियों की जिस (भाव) से (आदमी) हिंसा करता है, उससे कोई आर्य नहीं होता। सब प्राणियों की हिंसा न करना ही एक (ऐसा भाव) है जिससे कोई आर्य होता है यह आर्यता क्या है? यह आर्यता बन्धन से मुक्ति का नाम है- **"इयर्ति स्वच्छन्दं गच्छति इति आर्यः"**। इस निर्वचन के अनुसार वह आर्य होता है, जो बन्धन हीन है, जो दास नहीं है। वह श्रेष्ठ है। जिन बन्धनों में बंधकर मनुष्य आर्यभाव को खो देता है तथा दासभाव में फंस जाता है, उन बन्धनों का छिन्न भिन्न करने का मार्ग दिखाना तथागत का काम था। जो आर्यता के प्रवाह में बहने लगता है, उसकी प्रशंसा करते हुए तथागत ने कहा है-

पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा।
सब्बलोकाधिपच्चेन सोतापत्तिफलं वरं।। - धम्मपद १७८

पृथ्वी के सम्पूर्ण राज्य से अथवा स्वर्ग के आरोहण से अथवा सब लोकों के ऊपर स्थापित प्रभुत्व से स्रोत में-आर्यता के प्रवाह में पहुँचने का फल श्रेष्ठ होता है। बन्धन

में बंध व्यक्ति आर्यता के प्रवाह तक पहुँच नहीं सकता। बन्धन अनेक हैं। अहंता तथा ममता का बन्धन बहुत ही कठिन है। तथागत ने स्वयं कहा है-

न तं दळहं बंधनमाहु धीरा यदायसं दारुजं बब्बजं च।
सारत्तरत्ता मणिकुंडलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा।।
एतं दळहं बंधनमाहु धीरा ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं।।

-धम्मपद ३४५ से ३४६

"बुद्धिमान लोग उस बन्धन को कठिन नहीं मानते जो लोहे का, लकड़ी का एवं तृण का बना होता है। पर रत्नों में और कुंडलों में जो परम अनुराग होता है तथा जो पुत्रों एवं भार्याओं में आसक्ति होती है, इसे बुद्धिमान लोग कठिन बन्धन मानते हैं। वह यदि ढीला ढाला हो तो भी नीचे की ओर खींच ले जाता है, उससे अपने को छुड़ा पाना एक बहुत कठिन काम है।" इसके साथ काय की ममता तो सबको रहती ही है। यद्यपि सब लोग जानते हैं कि-

अचिरं वत यं कायो पठविं अधिसेस्सति।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो निरत्थं व कलिङ्गरं।। - धम्मपद ४१

बिना बहुत देर किये ही यह शरीर धरती पर लुढ़क जाएगा, ज्ञानहीन हो जाएगा, और बेकार के काष्ठ-खंड के समान फेंक दिया जाएगा। इस अहंता तथा ममता को बौद्ध परिभाषा में सत्कायदृष्टि कहते हैं। सत् शब्द का अर्थ है, विशीर्ण होने वाला, बिखर जाने वाला तथा काय का अर्थ है चय, संघात, या स्कन्ध। ये तीनों शब्द समूहवाचक हैं। अभिधर्मकोश (५/७) में भाष्य में विवरण करते हुए आचार्य वसुबन्धु ने यही कहा है-सीदतीति सत्। चयः कायः संघातः स्कन्ध इत्यर्थः।

पोराणमेतं अतुल नेतं अज्जत्तनामिव।
निन्दन्ति तुण्हिमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं।
मितभाणिं पि निन्दन्ति नत्थि लोके अनिन्दितो।। - धम्मपद २२७

हे अतुल, यह पुराना मामला है, यह आज की (ही) बात नहीं है। जो चुप रहता है, उसे भी बुरा भला कहा जाता है, जो बहुत बोलता है, वह भी रगड़ा जाता है, जो थोड़ा बोलता है, उसकी भी शिकायत की जाती है। दुनिया में किसी को दूध का धोया नहीं कहा जाता।

अनात्मवाद-तथागत ने आत्मवाद के आरोप के विपरीत एक नई बात कही। उन्होंने कहा-

सब्बे धम्मा अनत्ता ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया।।

- धम्मपद २७६

अर्थात् सब धर्म अनात्मक हैं इनमें आत्मा कहीं नहीं है, इस बात को जब प्रज्ञा से देखता है तब दुःख (दुःख-मय संसार) के विषय में वह विरक्त होता है। यह विशुद्धि का मार्ग है। सब धर्म अनात्मक हैं।

लक्षणों के द्वारा तथा वर्गीकरण की विधि से संवृतिसत्य तथा परमार्थसत्य को समझने का यत्न बुद्धकालीन है। तथागत सत्त्व को अर्थात् आत्मा, जीव, जन्तु, पुद्गल, पुरुष आदि शब्दों से संकेतित पदार्थ को सम्मुति (=संवृति) कहते थे। भदन्त नागसेन ने तथागत की एक गाथा उद्धृत की है-

यथा हि अंगसंभारा होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तोति संमुति।। (मिलिन्दप्रश्न)

जैसे रथ शब्द का प्रयोग अंग-सामग्री के कारण-पहिए, बल्लियों, जुए तथा ढांचे को संगठित होकर एक यान का रूप धारण करने के कारण होता है; वैसे ही स्कन्धों के होने पर-स्कन्धों के विशेष प्रकार के संगठन में प्रकट होने पर सत्त्व की, जीव की संवृति होती है। अभिप्राय यह हुआ कि आत्मा या जीव एक पदार्थ है, जो संवृतिसत्य है, परमार्थसत्य नहीं है। यह संवृति सत्य स्कन्धों के कारण होती है, अतः विवेकी यदि कुछ भी असावधान हुआ, तो वह स्कन्धों में ही आत्मा या जीव को खोजने लगेगा अथवा स्कन्धों को ही आत्मा या जीव समझ लेगा। विवेकपरायण कहीं ऐसा न कर बैठे, इसलिए तथागत ने कहा है-

सब्बे धम्मा अनत्ता ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया।। - धम्मपद २७९

सब धर्म अनात्मक हैं-आत्मरहित हैं। यह बात जब विवेकी प्रज्ञा से देखता है अर्थात् श्रेयावरण-मुक्त स्कन्धों को जान लेता है तब दुःख के प्रति-दुःखमय लोक के प्रति उसमें वैराग्य होता है-राग नामक क्लेशावरण क्षीण होता है। यह विशुद्धि का-ज्ञेयावरण तथा क्लेशावरण से रहित तत्त्व का, निर्वाण का मार्ग है।

बुद्धत्व का महत्त्व-

बोधिसत्त्व होकर बुद्धत्व तक पहुंचना ही साधना मार्ग का लक्ष्य था। अर्हत् एक क्षेत्र में एक समय बहुत हो सकते हैं पर बुद्ध एक क्षेत्र में एक समय एक ही होते हैं। तथा साधारण लोगों की तरह सब जगह उत्पन्न नहीं होते-

दुल्लभो पुरसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति।। - धम्मपद १९३

पूर्ण रूप से उत्तम पुरुष दुर्लभ होता है, उसका जन्म सब जगह नहीं होता। जहाँ उसका जन्म होता है, उस कुल की सुखवृद्धि होती है।

धम्पद में जहां सामान्य जन के लिए सुगम एवं सरल भाषा में उपदेश हैं वहीं साधक के लिए गूढ अर्थों वाली गाथाएं भी भरी पड़ी हैं।

इन गाथाओं की व्याख्या करते हुए शांतिभिक्षु शास्त्री ने लिखा है कि-

धर्मचर्या के द्वारा जो सुख प्राप्त होता है, उसमें कायेन्द्रिय की बाह्य स्पर्शों से विमुखता हो जाती है। चित्तेन्द्रिय को दूर-दूर की उड़ान लेना भूल जाता है, वह लगाम ढीली कर लिए गए घोड़े के समान सरपट भाग नहीं पाती, वह अन्तर्मुखी हो जाती है। प्राण भी दक्षिण तथा बाम नासापुटों की राह सदा की भांति नहीं चलते रहते प्रत्युत् मध्यमाप्रतिपदा (बीच की नाड़ी) का आश्रय लेकर अपनी अपूर्व व्याप्ति का अपूर्व क्षेत्र में प्रातिहार्य (चमत्कार) दिखलाने लगते है।। नीचे की ओर बहने वाला स्रोत बन्द होता है तथा उसका प्रवाह ऊपर की ओर हो जाता है। बुद्धवचनों के अनुसार छन्दोत्पाद (अभिलाषोत्पाद) अनख्यात में होता है अर्थात् वाक्प्रपंच द्वारा अप्रकाशनार्ह रहस्य के विषय मे होता है, वह मन के द्वारा स्फुट होता है (और स्फुटन में उस अभिव्यंजना) में चित्त काम विषयों के साथ बांधने वाला बंधन टूट जाता है और वह उर्ध्वस्रोत कहलाने लगता है। इसप्रकार भाव को व्यंजित करने वाली धम्मपद की गाथा को शांतिभिक्षुशास्त्री ने कहा है कि अक्षर अक्षर सुवर्णलिखित से भी अधिक मूल्यवान है।

छन्दजातो अनक्खाते मनसा च फुटो सिया।
कामेसु च अप्पटिबद्धचित्तो उद्धंसोतो ति वुच्चति।।

- धम्मपद, २१८

यह उर्ध्वस्रोत की प्राप्ति धार्मिक चर्या का प्रयोजन है उर्ध्वस्रोतकता की प्राप्ति संवृत्तिविधि चित्त के संस्कार से होती है। संवृत्ति बोधिचित्त शब्द का प्रयोग बौद्ध सिद्धसाहित्य में होता है। शून्यवाद में प्रपंचहीनता ही शून्यता कहा जाता है।

कर्मक्लेशक्षयान्मोक्षः कर्मक्लेश विकल्पतः।
ते प्रपंचात् प्रपंचस्तु शून्यतायां निरुध्यते।।

-माध्यमिक कारिका १८/५

धम्मपद में कह दिया गया था कि प्रपंचरहित अवस्था को पाना कठिन है वह तथागत ही पा सकते हैं इसलिए कहा गया है।

आकासे व पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता।। -धम्मपद, २५४

प्रपंच को व्याख्यायित करते हुए शांतिभिक्षु इसी शब्द और अर्थ की पकड़ करते हैं। तथागत की दो गाथाएं, जिनमें निर्वाण के अनिमित्ताकार के साथ शून्याकार की देशना है, वे शून्य शब्द के प्रयोग में अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। वे गाथाएं ये हैं-

येसं संनिचयो नत्थि ये परिञ्ञातभोजना।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो येसं गोचरो।
आकासे व सकुन्तानं गति तेसं दुरन्नया।। -धम्मपद ९२

जिनके पास संनिचय अर्थात् धन-धान्य संग्रह नहीं है, जो भोजन के विषय में सावधान रहते हैं। शून्य तथा अनिमित्त विमोक्ष जिनका गोचर है-भावना का आलंबन है। उनकी गति (चिह्न) को आकाश में पक्षियों की गति (गति-चिह्न) की भांति खोज पाना असंभव है। (गाथा में शून्यता शब्द शून्य के अर्थ में है, त-प्रत्यय स्वार्थिक है)।

यस्सासवा परिक्खीणा आहारे च अनिस्सितो।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे व सकुन्तानं पदं तस्स दुरन्नयं।। - धम्मपद ९३

जिसके (चित्त-) मल पूर्णतया क्षीण हो चुके हैं, जो आहार में आसक्त नहीं है। शून्य तथा अनिमित्त विमोक्ष गोचर है-भावना का आलंबन है। उसके पद (-चिह्न) को आकाश में पक्षियों के पद (-चिह्न) की भांति खोज पाना असंभव है।

गूढार्थ-

यद्यपि तथागत में आचार्य-मुष्टि नहीं थी, वे तत्त्व को अपने शिष्यों से नहीं छिपाते थे, फिर भी गूढ़ शैली में भी उन्होंने कहीं कहीं कहा है। आचार्य असंग ने अभिधर्मसमुच्चय में ऐसे कुछ स्थलों की ओर संकेत किया है, जिनमें दो गाथाएं धम्मपद में भी मिल गई हैं। आचार्य असंग ने यथोक्तं सूत्रे (जैसा सूत्र में कहा गया) इस अवतरणिका वाक्य के साथ संस्कृत में गाथापाठ यों किया है-

मातरं पितरं हत्वा राजानं (? राजानौ) द्वौ बहुश्रुतौ।
राष्ट्रं सानुचरं हत्वा नरो विशुद्ध उच्यते।

तुलनार्थ धम्मपद के पाठ पर दृष्टि डालनी चाहिए-

मातरं पितरं हन्त्वा राजनो द्वे च खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो।। -धम्मपद २९४

दोनों पाठों में भेद नगण्य है। संस्कृत गाथा में दो राजा बहुश्रुत कहे गए हैं। श्री प्रह्लादप्रधान जी ने जो टिप्पणी दी है, उसके अनुसार भोग रूपान्तर में दो राजा श्रोत्रिय हैं-वेदज्ञ है (द्वौ च श्रोत्रियौ)। ''नरो विशुद्ध उच्यते'' के स्थान में पालिपाठ ''अनीघो याति ब्राह्मणो'' है।

धम्मपद में दूसरी गाथा भी पूर्व गाथा के अनन्तर कही गई है। वह भी इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य है-

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च सोत्थिये।
वेय्यग्घपंचमं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो।। -धम्मपद २९५

इस पाठ में दो राजा श्रेत्रिय कहे गए हैं तथा 'रट्ठं सानुचरं हन्त्वा" के स्थान पर "वेय्यग्घपंचमं हन्त्वा" पाठ है। इस प्रकार की गूढता से युक्त स्थलों को स्पष्ट करना, व्याख्या के द्वारा उनका जो यथार्थ अभिप्राय है-ठीक ठीक तात्पर्य है, उसे बताना व्याकरण है।

यहाँ मातृघात से अभिप्राय तृष्णानिरोध से है। अट्ठकथाकार ने इसे स्पष्ट किया है- "**तण्हा माता**" अर्थात् तृष्णा माता है। पितृघात से अभिप्राय अहंता अहंभाव के निवारण से है। अट्ठकथाकार ने इसे स्पष्ट करते हुये कहा है- "**अस्मिमानो पिता**" अर्थात् मैं "हूँ" इसका मान करना ही यहाँ पिता शब्द से अभिप्रेत है। क्षत्रिय हों चाहे श्रोतिय हों, अथवा बहुश्रुत हों यहाँ राजयुगल के बध से अभिप्राय शाश्वत दृष्टि और उच्छेद दृष्टि को दूर करने से है। अट्ठकथाकार ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है- "**सस्सतुच्छेददिट्ठियो द्वे राजानो**" अर्थात् शाश्वत दृष्टि, नित्य-ध्रुव-कूटस्थवाद की दृष्टि एवं उच्छेद दृष्टि, अन्त-अभाव-विनाश की दृष्टि दो राजा है। सानुचर राष्ट्रघात से अभिप्राय तृष्णा सहित द्वादश आयतनों को दमन कर लेने से है। अट्ठकथाकार ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है- "**द्वादसायतनानि रट्ठं**" अर्थात् बारह आयतन राष्ट्र हैं। आयतन बारह यों हैं-

छह इन्द्रियां-चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय एवं मन।

छह विषय-रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य एवं धर्म।

फिर अनुचर को स्पष्ट करते हुए अट्ठकथाकार ने बताया है- **नन्दिरागो अनुचरो**। तृष्णा, आसक्ति, नन्दिराग आदि पर्यायवाची शब्द हैं। यह सब नष्ट करके संस्कृत गाथा के अनुसार आदमी शुद्ध कहलाने लगा है। पालि में ब्राह्मण (अर्हत्) यह सब कर चुकने पर दुःख रहित होकर विचरता है। अट्ठकथानुसार '**अनीघो निद्दुक्खो**' है।

धम्मपद की जो दूसरी गाथा इस प्रसंग में आई है, उसमें व्याघ्रपंचम के घात की बात आई है- **वेय्यग्घपंचमं हन्त्वा** शब्दार्थ यों हैं, व्याघ्र जिनमें पांचवां है, ऐसे नीवरणों को नष्ट कर। नीवरणों को जिस क्रम से गिना जाता है, उसमें पांचवां नीवरण विचिकित्सा है। यों अभिप्राय यह है कि पांचवां नीवरण जिनमें विचिकित्सा है, उस नीवरण समूह को नष्ट करके, **अनीघो याति ब्राह्मणो**, ब्राह्मण दुःख रहित होकर विचरण करता है। नीवरण ये हैं- १. कामच्छन्द नीवरण, २. व्यापाद नीवरण, ३. स्त्यानमिद्ध नीवरण (थीनमिद्ध नीवरण), ४. औद्धत्य-कौकृत्य नीवरण (उद्धच्च-कुक्कुच्च नीवरण), ५. विचिकित्सा नीवरण (विचिकिच्छा नीवरण, इसी को गाथा में व्याघ्र कहा गया है) ६. अविद्या नीवरण (अविज्जा नीवरण)।

इस प्रकार के गूढार्थों की व्याख्या करना व्याकरण है।

बोधिसत्त्व होकर बुद्धत्व तक पहुँचना भी साधना मार्ग का लक्ष्य था। अर्हत् एक क्षेत्र में एक समय बहुत हो सकते है। पर बुद्ध एक क्षेत्र में एक समय एक ही होते हैं। तथा साधारण लोगों की तरह सब जगह उत्पन्न नहीं होते-

दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति।। धम्मपद, १६३

पूर्ण रूप से उत्तम पुरुष दुर्लभ होता है, उसका जन्म सब जगह नहीं होता जहाँ उसका जन्म होता है, उस कुल की सुखवृद्धि होती है। इस प्रकार शांति भिक्षु शास्त्री ने धम्मपद को गूढ़ार्थों की ओर संकेत किया है।

संदर्भ-विवरण

१. मिलिन्दपञ्हो, अनुपिटक साहित्य का बुद्धवचन के समान मान्य ग्रन्थ।
२. पालि साहित्य का इतिहास, भरत सिंह उपाध्याय, पृ० ८ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाशन, इलाहावाद
३. गाथा-वृद्धि के उदाहरणों और उनके कारणों के अधिक विस्तृत विवेचन के लिये देखिये बरुआ और मित्र : प्राकृत धम्मपद, पृष्ठ ३१, भूमिका)
४. डा० विमलाचरण लाहा ने 'हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर' जिल्द पहली, पृष्ठ २००-२१४ के अनेक पद-संकेतों में उपनिषद्, महाभारत, गीता, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों से उद्धरण देकर धम्मपद की गाथाओं से उनकी समानता दिखाई है। इस विषय का अधिक तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।)
५. बौद्धसिद्धान्त विमर्श, शान्ति भिक्षु शास्त्री, प्रका. बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

• • • •

मानवाधिकार एवं बौद्ध धर्म

मानव-अधिकारों का जन्म पृथ्वी पर मनुष्य के विकास के साथ ही हुआ, क्योंकि इन अधिकारों के बिना वह न तो गरिमा के साथ जीवन-यापन कर सकता था और न सभ्यता तथा संस्कृति का विकास कर सकता था, लेकिन इसके साथ मानव अधिकारों के दमन का सिलसिला भी शुरू हो गया, क्योंकि शक्तिशाली व्यक्ति या समूह दूसरों का शोषण करके ही अपना वर्चस्व बनाए रख सकते थे। पिछले पाँच हजार सालों में एक तरफ इस वर्चस्व का रूप बदलता रहा है, तो दूसरी तरफ इस बात की भी आवश्यकता महसूस की जाती रही है कि मानव अधिकारों को ठीक-ठीक परिभाषित किया जाय तथा उनकी सुरक्षा के उपाय भी किए जाएं। साथ ही मानव-समाज की व्यवस्था में जटिलता के नए-नए तत्त्व लगातार आने-जाने से मानव-अधिकारों के नए-नए रूप भी सामने आने लगे। २५ सितम्बर १६२६ के पूर्व मानव-अधिकारों का मामला मुख्यतः राष्ट्रीय मामला रहा, लेकिन उसके बाद यह एक अन्तर्राष्ट्रीय विषय हो गया और तब से मानव-अधिकारों को समझने तथा उनके प्रति विश्व-प्रतिबद्धता की घोषणा करने का सिलसिला आज तक जारी है।

(क)

मानव अधिकारों के बारे में व्यवस्थित रूप से सोचने और उन्हें संगठित रूप देने का पहला अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास २५ सितम्बर १६२६ को दासता के विरुद्ध हुए विश्व सम्मेलन के रूप में सामने आया। लगभग चार वर्ष बाद २८ जून १६३० को बलात् श्रम पर सम्मेलन हुआ। १६४६ में श्रीमती एलीन रुजवेल्ट की अध्यक्षता में विधिवत् मानवाधिकार आयोग बना। मानव-अधिकारों की पहली सुव्यवस्थित घोषणा १० दिसम्बर १६४८ को सामने आयी। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा की गई यह घोषणा **'मानव अधिकारों'** की **'विश्व घोषणा'** कहलाती है। फिर तो यह सिलसिला कभी नहीं रुका। आज स्त्री-अधिकार, अल्पसंख्यकों के अधिकार आदि अनेक विषयों पर दुनिया भर में चर्चा हो रही है।

समानता का अधिकार मानवाधिकार की नींव हैं 'समानता' शब्द के प्रयोग का प्रेरणा-स्रोत फ्रांस का संविधान है, समानता के अभाव में स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं। उदारवाद के अन्तर्गत समानता का तात्पर्य है कि सभी व्यक्तियों को धर्म, जाति, लिंग, रंग, रूप एवं निवास स्थान आदि के आधार पर समान माना जाए। भगवान बुद्ध ने **'एकैव जातिः'** कहकर समानता का सन्देश दिया। आधुनिक विचार मानवअधिकार की भी कसौटी है कि मनुष्य ही सभी चीजों की कसौटी है।

मानव अधिकारों की विश्व घोषणा

१. सभी मानव प्राणी जन्म से ही स्वतंत्र तथा गरिमा और अधिकारों में बराबर हैं। उनमें विचार शक्ति तथा अन्तश्चेतना होती है और उन्हें एक-दूसरे के साथ भाईचारे की भावना से काम करना चाहिए।

२. इस घोषणा में शामिल सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हक हर किसी को नस्ल, रंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य मत, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल, संपत्ति, जन्म या हैसियत का अन्य कोई आधार जैसे किसी भी तरह के भेदभाव के बगैर है।

इसके अलावा, जिस भी देश या भूखण्ड के किसी भी व्यक्ति का सम्बन्ध है, में ही वह स्वतंत्र हो, गैर स्वशासी या प्रभुसत्ता की किसी भी सीमा के तहत हो, उसके साथ उस देश या भूखण्ड की राजनीतिक, न्यायिक या अन्तर्राष्ट्रीय हैसियत के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा।

३. प्रत्येक व्यक्ति को जीने का, स्वतंत्रता का और व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार है।

४. किसी को गुलाम या बेगार के रूप में नहीं रखा जायेगा, गुलामी और बेगारी प्रथा के सभी रूपों को प्रतिबंधित किया जायेगा।

५. किसी के साथ अत्याचार या निर्दयता अथवा क्रूर,अमानवीय या गरिमाहीन व्यवहार नहीं किया जायेगा, न इस तरह की सजा किसी को दी जायेगी।

६. प्रत्येक व्यक्ति को कानून के समक्ष हर कहीं व्यक्ति के रूप में मान्यता का अधिकार है।

७. कानून के सम्मुख सभी बराबर हैं और सभी को बिना किसी भेदभाव के कानून के समान संरक्षण का अधिकार है। सभी को इस घोषणा-पत्र का उल्लंघन कर किये जाने वाले किसी भी भेदभाव के खिलाफ और ऐसे किसी भेदभाव को प्रोत्साहित करने के खिलाफ समान संरक्षण का अधिकार है।

८. कानून या संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर हर एक को सक्षम राष्ट्रीय न्यायाधिकरण द्वारा प्रभावी उपचार का अधिकार है।

९. किसी को भी निरंकुश ढंग से न गिरफ्तार किया जायेगा, न हिरासत में लिया जायेगा और न निर्वासित किया जायेगा।

१०. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों और दायित्वों के निर्धारण में और अपने खिलाफ किसी भी प्रकार के आपराधिक आरोप पर एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा न्यायपूर्ण सार्वजनिक सुनवाई का पूरी तरह समान अधिकार है।

११.१ प्रत्येक व्यक्ति को किसी दण्ड अपराध के आरोप में तब तक निर्दोष माने जाने का अधिकार है, जब तक उस पर ऐसे किसी सार्वजनिक मुकदमे में कानून के तहत

अपराध साबित न हो जाये, जिससे उसे अपने बचाव के लिए सभी आवश्यक गारंटियां हों।

११.२ किसी को भी ऐसा कोई कार्य करने या न करने के लिए, जो उस घटना के वक्त राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय विधि के तहत दण्ड्य नहीं था, किसी दण्ड्य अपराध का दोषी नहीं माना जायेगा। न ही उस पर, जिस समय वह अपराध हुआ, उस समय लागू जुर्माने से अधिक जुर्माना आरोपित किया जायेगा।

१२. किसी भी व्यक्ति की एकान्तता (प्राईवेसी), परिवार, घर या पत्राचार से मनमाना दखल नहीं दिया जायेगा, नहीं उसकी प्रतिष्ठा और सम्मान को चोट पहुँचाई जायेगी। ऐसे किसी दखल या आक्रमण के खिलाफ हर एक को कानून का संरक्षण पाने का अधिकार है।

१३.१ प्रत्येक व्यक्ति को राज्य की सीमाओं के भीतर निवास करने का और घूमने-फिरने की स्वतंत्रता का अधिकार है।

१३.२ प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश सहित कोई भी देश छोड़ने और अपने देश में लौटने का अधिकार है।

१४.१ प्रत्येक व्यक्ति को उत्पीड़न से बचने के लिए दूसरे देशों में शरण चाहने और उसका उपभोग करने का अधिकार है।

१४.२ यह अधिकार उन स्थितियों में लागू नहीं होगा, जिनमें वास्तविक रूप से गैरराजनीतिक अपराधों के कारण संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों और उद्देश्यों के विपरीत कार्य करने पर मुकदमा कायम किया गया हो।

१५.१ प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र का नागरिक बनने का अधिकार है।

१५.२ किसी को भी मनमाने तरीके से न तो उसकी राष्ट्रीयता से वंचित किया जायेगा और न ही अपनी राष्ट्रीयता बदलने के अधिकार से वंचित किया जायेगा।

१६.१ पूर्ण उम्र के पुरुषों और स्त्रियों को नस्ल, धर्म या राष्ट्रीयता की किसी सीमा से बाधित हुए बिना विवाह करने और परिवार बसाने का अधिकार है। विवाह से पूर्व, विवाह के दौरान और विवाह-विच्छेद के बाद उन्हें समान अधिकार होगा।

१६.२. विवाह दोनों पक्षों की पूर्ण और स्वतंत्र सहमति के आधार पर ही होगा।

१६.३ परिवार समाज की प्राकृतिक और बुनियादी समूह इकाई है और उसे समाज तथा राज्य का संरक्षण पाने का अधिकार है।

१७.१ हर एक को अकेले तथा अन्यों के साथ निजी संपत्ति रखने का अधिकार है।

१७.२ किसी को मनमाने तरीके से उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।

१८. हर एक को विचारों, अंतश्चेतना और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार है, इस अधिकार में अपना धर्म और आस्था बदलने की स्वतंत्रता शामिल है और अकेले या अन्यों के साथ सार्वजनिक रूपसे या एकांत में अपने धर्म या आस्था को शिक्षा, प्रथा, पूजा और परिपालन में अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता शामिल है।

१९. हर एक को अपना एक मत रखने और उसकी अभिव्यक्ति करने की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार में बिना दखल के अपना मत रखने या किसी भी माध्यम के जरिये और सीमाओं से परे सूचनाएं और विचार चाहने, ग्रहण करने तथा प्रदान करने का अधिकार शामिल है।

२०.१ हर एक को शांतिपूर्वक एकत्र होने और संघ बनाने का अधिकार है।

२०.२ किसी को भी किसी संघ से सम्बद्ध होने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

२१.१ प्रत्येक व्यक्ति का, प्रत्यक्ष रूप से अथवा स्वतंत्रतापूर्वक चुने गये प्रतिनिधियों के जरिये अपने देश की सरकार में हिस्सा लेने का अधिकार है।

२१.२ हर एक को अपने देश की सार्वजनिक सेवाओं से समान रूप से लाभान्वित होने का अधिकार है।

२१.३ सरकार की शक्ति का आधार जन-इच्छा होगी। यह इच्छा समय-समय पर होने वाले ईमानदार चुनावों में अभिव्यक्त की जायेगी, जो समान और बालिग मताधिकार के आधार पर होंगे तथा गुप्त मतदान या ऐसी ही किसी स्वतंत्र मतदान प्रक्रिया द्वारा कराये जायेंगे।

२२. समाज का सदस्य होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है। उसे अपने राज्य के संसाधनों और संगठनों के अनुसार तथा राष्ट्रीय प्रयास एवं अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के जरिये अपनी गरिमा तथा अपनी व्यक्ति के स्वतंत्र विकास के लिए अनिवार्य आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को साकार करने का हक है।

२३.१ प्रत्येक व्यक्ति को काम करने का, रोजगार के स्वतंत्र चुनाव का, काम की उचित और अनुकूल स्थितियों का तथा बेरोजगारी के ख़िलाफ संरक्षण प्राप्ति का अधिकार है।

२३.२ प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के समान काम के लिए समान वेतन पाने का अधिकार है।

२३.३ प्रत्येक व्यक्ति को, जो काम करता है, उचित और अनुकूल पारिश्रमिक का अधिकार है, जिससे उसका और उसके परिवार का मानवीय गरिमा के साथ

जीवन-यापन हो सके और अगर आवश्यकता पड़े तो इसकी पूर्ति सामाजिक संरक्षण के अन्य माध्यमों द्वारा हो।

२३.४ प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों के संरक्षण के लिए श्रमिक संगठन बनाने और उसमें शामिल होने का अधिकार है।

२४. हर एक को कार्य घंटों की उचित सीमा और सवेतन नियतकालीन अवकाश सहित आगम और फुरसत पाने का अधिकार है।

२५.१ प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, कपड़ा, मकान और चिकित्सा सुविधा तथा आवश्यक सामाजिक सेवाओं सहित स्वयं के और अपने परिवार के स्वास्थ्य तथा कल्याण के लिए पर्याप्त जीवन-स्तर का अधिकार है। साथ ही उसे बेरोजगारी, बीमारी, विकलांगता, वैधव्य, बुढ़ापे या उसके नियंत्रण से बाहर की किसी अन्य स्थिति में जीविका में बाधा आने पर सुरक्षा पाने का अधिकार है।

२५.२ मातृत्व और शैशवावस्था विशेष देखभाल और सहायता पाने के अधिकारी हैं। सभी बच्चों को, चाहे वे वैध हो या अवैध, एक जैसा सामाजिक संरक्षण दिया जायेगा।

२६.१ हर एक को शिक्षा का अधिकार है। कम से कम प्रारंभिक और बुनियादी चरणों में शिक्षा निःशुल्क होगी। बुनियादी शिक्षा अनिवार्य होगी। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा सामान्यतः उपलब्ध करायी जायेगी और योग्यता के आधार पर उच्च शिक्षा तक सभी की समान पहुँच होगी।

२६.२ शिक्षा का लक्ष्य मानव व्यक्तित्त्व का पूर्ण विकास और मानव-अधिकारों तथा बुनियादी स्वतंत्रताओं के सम्मान को मजबूती देना होगा। यह सभी देशों और धार्मिक समूहों के बीच समझ, सहिष्णुता और मैत्री को बढ़ावा देगी और शांति बरकरार रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की गतिविधियों को आगे बढ़ायेगा।

२६.३ माता-पिता को यह चुनने का प्राथमिक अधिकार होगा कि वे अपने बच्चों को किस तरह की शिक्षा दिलाना चाहते हैं।

२७.१ हर एक को समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में स्वतंत्रता के साथ भाग लेने, कलाओं का आनंद लेने और वैज्ञानिक प्रगति तथा उसके लाभ में हिस्सेदार करने का अधिकार होगा।

२७.२ हर एक को अपने द्वारा सृजित किसी भी वैज्ञानिक, साहित्यिक और कलात्मक उत्पादन से प्राप्त नैतिक और भौतिक हितों के संरक्षण का अधिकार है।

२८. प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकार है, जिसमें इस घोषणा में अभिव्यक्त-अधिकारों और स्वतंत्रताओं को पूरी तरह हासिल किया जा सकता है।

२९.१ प्रत्येक व्यक्ति के उस समुदाय के प्रति कर्तव्य है, जिसमें उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र और पूर्ण विकास संभव है।

२९.२ अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के इस्तेमाल में किसी भी व्यक्ति पर कानून द्वारा निर्धारित ऐसी हदें ही लगायी जायेंगी, जिनसे अन्य व्यक्तियों की स्वतंत्रताओं और अधिकारों की उचित मान्यता तथा सम्मान का उद्देश्य पूरा हो सके और एक लोकतांत्रिक समाज में नैतिकता, जन-व्यवस्था और सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताएं पूरी हों।

२९.३ इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं का इस्तेमाल किसी भी स्थिति में संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों और उद्देश्यों के विपरीत नहीं किया जा सकेगा।

३०. इस घोषणा की किसी भी बात की ऐसी व्याख्या नहीं की जा सकती, जिसका अर्थ यह निकलता हो कि किसी राज्य, समूह या व्यक्ति को इस घोषणा में निहित किसी भी अधिकार या स्वतंत्रता को नष्ट करने के उद्देश्य से किसी गतिविधि में भाग लेने या कोई काम करने का अधिकार है।

(ख)

भारतीय संविधान एवं मानवाधिकार

भारतीय संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद १२-३५ तक मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गई है। ये अधिकार मौलिक इसलिए कहे जाते हैं, क्योंकि ये मानव व्यक्तित्व के विकास के आवश्यक तत्व माने गये हैं। इस प्रकार मौलिक अधिकारों की अवधारणा प्राकृतिक अधिकारों की अवधारण के बहुत समीप है। लॉस्की के अनुसार प्राकृतिक अधिकार, ''प्रत्येक युग के मौलिक विचार हैं।'' इस दृष्टि से भारतीय संविधान में वर्णित मूल अधिकार भी भारतीय जीवन दृष्टि से प्रतिबिम्बित है। मौलिक अधिकार व्यक्ति/नागरिक को राज्य के विरुद्ध प्राप्त है। ''राज्य'' शब्द की व्याख्या अनुच्छेद १२ में दी गई है।

अनुच्छेद १३ द्वारा न्यायपालिका को यह अधिकार दिया गया है कि यदि संसद या राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा निर्मित कोई विधि संविधान के भाग-३ में उल्लिखित मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है तो वह अवैध घोषित की जा सकती है। इस प्रकार न्यायालय को ''न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार'' प्रदान किया गया है। मॉण्टेस्क्यू के अनुसार - न्यायिक पुनरावलोकन, विधि और कार्यपालिका पर शक्ति संतुलन बनाये रखने की संवैधानिक प्रक्रिया है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने भी इस सिद्धान्त का पालन करके साधारण से साधारण व्यक्ति के अधिकारों को सुरक्षित करने का प्रयास किया है। अनुच्छेद १३ (१) में यह व्यवस्था की गई है कि यदि संविधान लागू (२६ जनवरी १९५०) होने से पूर्व कोई विधि वर्तमान संविधान का उल्लंघन करती है तो अवैध मानी जाएगी।

समानता के अधिकार की व्यवस्था संविधान में अनुच्छेद १४-१८ में की गई है। अनुच्छेद १४ में समानता के दो तत्वों पर बल दिया गया है - प्रथम, सभी व्यक्तियों को विधि के समक्ष समानता तथा द्वितीय, विधि का समान संरक्षण। दोनों की अवधारणाओं का मुख्य उद्देश्य समान न्याय प्रदान करना है। विधि के समक्ष समानता का सिद्धान्त एक नकारात्मक अवधारणा है। डायसी के अनुसार इसका अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति को विशेष सुविधा प्राप्त न हो तथा सामान्य कानून के समक्ष सभी समान हों परंतु विधि के समक्ष समानता के सिद्धान्त के साथ उसके कुछ अपवाद भी जुड़े हैं, जैसे-राजदूतों व राजनयिकों को विशेष उन्मुक्तियाँ दी गई हैं, श्रमिक संघों को विधि का संरक्षण प्रदान किया गया है, इत्यादि। ऐसा उनके विशेष पद, जिम्मेदारी एवं स्थिति के कारण किया गया है, जिससे वे अपने कर्तव्यों का पालन भली-भांति कर सकें। विधियों का समान संरक्षण का सिद्धान्त एक सकारात्मक अवधारणा है, जिसका अर्थ है समान परिस्थिति वाले व्यक्तियों के लिए समान व्यवहार होगा। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत "व्यक्ति" शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि समता का व्यवहार नागरिकों तथा अनागरिकों के लिए समान होगा। इस प्रकार भारत में निवास करने वाले विदेशी व्यक्तियों को भी इस अनुच्छेद द्वारा उतना ही संरक्षण प्रदान किया गया है जितना अपने देश के लोगों को। प्रत्येक समाज में न तो प्रत्येक व्यक्ति समान होते हैं न उनकी योग्यताएँ ही समान होती है। इसी कारण उनको कानून द्वारा निर्धारित आधार पर समानता दी जाती है, परन्तु विधायिका द्वारा किया गया निर्धारण या युक्तियुक्त मानदण्ड के परीक्षण का आधार निम्न रूप से निर्धारित किया गया है-

१. कोई वर्गीकरण मनमाने ढंग से न किया जाये।

२. विभेद ऐसा किया जाये जिससे एक वर्ग में शामिल किये गये व्यक्तियों तथा वस्तुओं एवं बाहर रहने वाले व्यक्तियों तथा वस्तुओं के बीच हुए विभेदों को सरलतापूर्वक समझा जा सके।

३. यह युक्तियुक्तता इस आधार की हो कि कानून द्वारा स्थापित उद्देश्यों से सम्बन्ध रख सके। उदाहरण के लिए जैसे भारतीय संविदा अधिनियम की धारा ११ में यह उपबन्धित किया गया है कि 'अवयस्क व्यक्ति संविदा करने में अयोग्य होगा, अर्थात् यहाँ अवयस्क एवं वयस्क व्यक्तियों में जो अन्तर का आधार है वह है "आयु", न कि शारीरिक बलिष्ठता या वृद्धपन।"

विभेद का प्रतिषेध (अनु. १५) के अन्तर्गत समता के अधिकार के सामान्य नियमों को प्रतिस्थापित किया गया है तथा इस अनुच्छेद के आधार पर अवैध घोषित किया जा सकता है। इस अनुच्छेद को केवल अपने देश के नागरिकों के लिए ही व्यवस्थित किया गया है।

हमारा देश विभिन्न जाति, धर्म, भाषा-भाषियों आदि का देश है। उनको एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य संविधान के निर्माताओं ने अनुच्छेद १५ (१) के आधार पर किया है, जिसमें यह व्यवस्था की गई है कि-केवलधर्म, जाति, वर्ण, लिंग अथवा जन्म स्थान- इनमें से किसी एक अथवा एक से अधिक के आधार पर नागरिकों के विरुद्ध राज्य द्वारा कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता। भेदभाव शब्द का तात्पर्य किसी व्यक्ति के साथ दूसरे की तुलना में प्रतिकूल व्यवहार करने से हैं चाहे वह किसी भी आधार पर किया गया हो। अनुच्छेद में "केवल" शब्द पर बल दिया गया है इसका तात्पर्य है यदि अन्य बातें समानरूप से विद्यमान हों तो उपर्युक्त बातों के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता और यदि राज्य द्वारा कोई भेदभाव किसी अन्य दूसरे आधार पर किया जाये तो वह अनुच्छेद १५ (१) के आधार पर असंवैधानिक न होगा।

अनुच्छेद १२ (२) के अन्तर्गत केवल धर्म, जाति, वर्ग, लिंग एवं जन्म स्थान के आधार पर दुकानों, होटलों, सार्वजनिक मनोरंजन स्थानों, कुओं, तालाबों, घाटों, सड़कों एवं सार्वजनिक स्थलों जो या तो जनता के उपयोग हेतु समर्पित कर दिये गये हैं अथवा राज्यनिधि द्वारा पूर्ण अथवा आंशिक रूप से पोषित किये जाते हैं, उनके उपयोग के सम्बन्ध में नागरिकों पर कोई प्रतिबन्ध, अयोग्यता अथवा उत्तरदायित्व नहीं लगाया जा सकेगा। अनुच्छेद १५ (१) का क्षेत्र अधिक विस्तृत है क्योंकि इसे राज्य द्वारा ही नहीं वरन् अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध भी संरक्षित किया गया है।

अनुच्छेद १५ (३) द्वारा राज्य को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह स्त्रियों तथा बालकों की विशेष व्यवस्था के लिए प्रावधान स्थापित कर सकते हैं। नारी स्थिति के सुधार हेतु संविधान निर्माताओं ने उनके लिए संविधान में राज्य के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की है। अनुच्छेद ४२ में स्त्रियों के प्रसव सम्बन्धी सुरक्षा की व्यवस्था है। अनुच्छेद ४५ में बालकों के निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था हैं। एक मुकदमे के सम्बन्ध में स्त्रियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए अमेरिका के उच्चतम न्यायालय में यह कहा गया है कि "अस्तित्व के संघर्ष में स्त्रियों की शारीरिक बनावट तथा उनके स्त्रीजन्य कार्य उनको दुःखद स्थिति में डाल देते हैं इसी कारण उनकी शारीरिक कुशलता का संरक्षण जनहित का उद्देश्य हो जाता है।"

राज्याधीन नौकरी में समता अनुच्छेद १६ (१) के अन्तर्गत राज्याधीन नौकरियों के विषय में अवसर की समानता द्वारा यह उपबन्धित किया गया है कि राज्याधीन नौकरी की नियुक्ति में सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान किया जायेगा। इस अनुच्छेद की व्यवस्था अनुच्छेद १४ में दिये गये समता के सिद्धान्त को प्रभावशाली बनाने के लिए की गई है। केवल सरकारी नौकरियों के संबंध में ही समान अवसर की बाध्यता को अपनाया जा सकता है। यदि कोई सेवा, संविदा सम्बन्धी हो तो उसके लिए इस बाध्यता को नहीं

माना जा सकता और न ही इसके लिए न्यायालय में जाया जा सकता है।

अनुच्छेद १६ (२) द्वारा राज्य नागरिकों के बीच केवल धर्म, जाति, मूलवंश, जन्मस्थान एवं आवास के आधार पर कोई विभेद नहीं कर सकता है। यह विभेद नियुक्ति संबंधी क्षेत्र के लिए वर्जित माना गया है। इस अनुच्छेद में दो नये शब्दों "वंशक्रम" तथा "निवास स्थान" को जोड़कर और भी विस्तृत करने का प्रयास किया गया है।

अनुच्छेद १६ (३) अनुच्छेद १६ (१) तथा १६ (२) का अपवाद है। इसके अन्तर्गत यह व्यवस्था कर दी गई है कि संसद चाहे तो विधि द्वारा किसी राज्य के या स्थानीय पद को वहीं के निवासियों के लिए आरक्षित कर सकती है। यह व्यवस्था केवल "निवास स्थान" से ही संबंधित है। न कि "अन्य स्थान" से। राज्यों की नियुक्तियों सम्बन्धी यह व्यवस्था कार्य कुशलता की सुरक्षा के लिए की गई है।

अनुच्छेद १६ (४) द्वारा राज्य को यह शक्ति दी गई है कि पिछड़े वर्गों के नागरिकों के लिए राज्याधीन सेवाओं में आरक्षण करेगा। इस अनुच्छेद का पालन करते समय राज्य को दो मुख्य बातों पर ध्यान देना होगा।

१. सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से कोई वर्ग पिछड़ा हुआ होना चाहिए।

२. ऐसे वर्ग के लिए लोगों को राज्याधीन पदों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला होना चाहिए। "पिछड़ा वर्ग" शब्द को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है, अतएव राज्य इस संबंध में अपने सद्विवेक का प्रयोग कर सकता है।

अनुच्छेद १६ (५) के अन्तर्गत धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक संस्थाओं में कार्यरत् पदाधिकारी एवं सदस्यगण उस विशिष्ट धर्म के अनुयायी तथा विशिष्ट समुदाय को मानने वाले होंगे। इस प्रकार राज्य के व्यक्तियों को नियुक्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

अनुच्छेद १७ एवं १८ द्वारा अस्पृश्यता तथा खिताबों का अन्त कर दिया गया है।

अनुच्छेद १९ के अन्तर्गत भारतीय संविधान निर्माताओं ने नागरिकों को स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया है। इसके अन्तर्गत दो तत्वों का समावेश है, एक ओर अनुच्छेद १९ (१) में नागरिकों को सात प्रकार की स्वतंत्रताएं प्रदान की गई हैं और दूसरी तरफ अनुच्छेद १९ (२) से १९ (६) तक इन्हे प्रतिबंधित भी किया गया है। इसके द्वारा एक ओर तो अत्यधिक संघर्ष के पश्चात् मिली हुई स्वतंत्रता को नागरिक अधिकारों में प्रधानता दी गई है परन्तु दूसरी तरफ "सामान्यहित" को "व्यक्तिगत हित" के ऊपर रखकर इसे प्रतिबंधित भी कर दिया गया।[१]

अनुच्छेद १९ (१) (क) प्रत्येक नागरिक को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। अनुच्छेद १९ (१) में सभी अधिकार नागरिकों को ही प्रदान

किये गये है।। वाक् और व्यक्ति की स्वतंत्रता की प्रधानता को बताते हुए श्री पंतजलि शास्त्री ने कहा था : "विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अभाव में नागरिकों को राजनीतिक विचार-विमर्श तथा राजनीतिक विषय से संबंधित उपयोगी शिक्षा का आदान-प्रदान नहीं किया जा सकता है। अतएव यह अधिकार जनतांत्रिक शासन की आधारशिला है।" इसके अन्तर्गत ही प्रेस की स्वतंत्रता व समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता सम्मिलित है, यद्यपि इसका विशिष्ट नामांकन इस अनुच्छेद में नहीं किया गया है। डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में इसी बात का उल्लेख करते हुए कहा था : "प्रेस की स्वतंत्रता का पृथक रूप में उल्लेखित किया जाना आवश्यक नहीं है। परन्तु यदि समाचार-पत्रों में किसी विषय के बारे में विचार प्रकट करने से इनकार किया जाता है तो वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अतिलंघन माना जाता है। नागरिक विदेशों में भी अपने विचार अभिव्यक्त कर सकता है। नागरिकों के इन अधिकारों पर अनुच्छेद १६ (२) द्वारा निम्नलिखित आधार पर प्रतिबन्ध लगाए गये हैं :

१. राज्य की सुरक्षा। २. शिष्टाचार एवं सदाचार के हित में।
३. न्यायालय की अवमानना और ४. मानहानि।

(ग)

मानवाधिकार का वर्तमान स्वरूप

भारत के राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन सन् १६६३ में हुआ था। अतः कार्यान्वयन के लिए कुछ बिन्दुओं का निर्धारण हुआ है-

क. मानवाधिकार के अन्तर्गत मानव अधिकारों की मीमांसा।
ख. मानवाधिकार अधिनियम के अन्तर्गत आयोग के क्या कार्य हैं ?
ग. जाँच के पश्चात् आयोग कौन से कदम उठा सकता है ?
घ. क्या आयोग के पास जाँच हेतु स्वतः की सुविधा है ?
ङ. क्या यह स्वायत्तशासी आयोग है ?
च. आयोग शिकायत के बारे में किस प्रकार जाँच करता है ?
छ. जाँच हेतु आयोग के समक्ष कौन-कौन से मार्ग हैं ?
ज. इस अधिनियम के अन्तर्गत सशस्त्र बल हेतु कौन सी प्रक्रिया है ?
झ. क्या आयोग के समक्ष शिकायत किसी भी भाषा में प्रस्तुत की जा सकती है ?
ञ. कौन-कौन सी शिकायतें आयोग के क्षेत्राधिकार में नहीं आती ?
ट. केन्द्र व राज्य सरकार के कौन से दायित्व हैं, जब आयोग इस अधिनियम के अन्तर्गत सिफारिश भेजता है ?

ठ. आयोग को इस नियम के अन्तर्गत किन विषयों पर ध्यान आकर्षित करने का अधिकार है ?

ड. इसके अतिरिक्त आयोग किन प्रमुख उपकरणों पर कार्य कर सकता है?

मानवाधिकार के अन्तर्गत उपर्युक्त बिन्दुओं पर विचार के लिए राष्ट्रीय आयोग ने सिफारिश की है। यदि यह कहा जाये कि भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों की सुरक्षा एवं प्रक्रिया को आयोग देने के लिए मानवाधिकार का वर्तमान स्वरूप निर्धारित हुआ है, तो अतिशयोक्ति न होगी। [२]

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा [३]

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा कें लिये ५० वर्ष पूरे होने के अवसर पर वर्ष-भर आयोजित कार्यक्रमों के समापन समारोह में १० दिसंम्बर १९८८ को भारत के मुख्य न्यायाधीश माननीय न्यायमूर्ति डॉ. ए.एस. आनन्द ने लोगों को प्रोत्साहित करते हुए कहा कि देश के लोग मातृत्व और बच्चों की देखभाल, बाल-शिक्षा, बाल-श्रम, बाल-शोषण और अल्पसंख्यकों और समाज के कमजोर वर्गों के संरक्षण के क्षेत्रों में मानव अधिकारों को एक बहुत बड़ी चुनौती के रूप में लें। उन्होंने दण्ड न्याय प्रणाली को सुप्रवाही बनाने और हिंसा तथा जांच-पड़ताल संबंधी शोषण को अच्छे प्रशासन का महत्वपूर्ण हिस्सा न बनाया जाए तब तक प्रगति न तो सम्भव है और न ही वहनीय है क्योंकि कोई भी आर्थिक विकास मानव अधिकार के लिए सम्मान की आधार-रेखा के बिना कायम नहीं रह सकती है।" उन्होंने कहा कि कानून और न्याय, न्यायालयों और न्यायाधीशों के लिए वह गौरवपूर्ण निर्णायक समय होगा जब वे प्रत्येक हमले के विरुद्ध नागरिकों के मानव अधिकारों को संरक्षण प्रदान करेंगे।

(घ)

जब हम आधुनिक मानवाधिकार के साथ भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं की तुलना करते हैं तो पाते हैं कि दोनों का लक्ष्य एक है कि व्यक्ति एक दूसरे का शोषण न करें या न सताए। लेकिन भगवान् बुद्ध ने इसे व्यक्ति स्तर पर आध्यात्मिक ढंग से प्रभावी बनाने का प्रयास किया।

- जैसे स्वयं अपने प्रति व्यवहार चाहते हो वैसा ही दूसरों के साथ करो।
- जब दुःख मुझे प्रिय नहीं है तो मैं अपने ही दुःख क्यों दूर करू, जब संसार के समस्त प्राणी दुःखी हैं अतः जब तक संसार के सभी प्राणियों का दुःख दूर नहीं होता मुक्ति से क्या लाभ।
- राजाओं के प्रसंग में भी कहा गया कि वैर से वैर शांत नहीं होता, अवैर से ही वैर शान्त होता है।

-राजा प्रसेनजित ने कहा कि जय होने पर खुशी होती है, पराजय होने पर दुःख, इसलिए जय और पराजय को छोड़कर विहार करना चाहिए।

सुवर्णप्रभाससूत्र में कहा गया है कि जो अधर्म का पक्षपाती है वह राजा अधर्मी होता है।

अधार्मिको ह्ययं राजा ह्ययं धर्मपक्षमाश्रितः (१३/१४)

दुष्कृत्यों की उपेक्षा से अधर्म का बढ़ना बतलाया गया है।

दुष्कृतानामुपेक्षंयाधर्मो वर्तते भृशम्। (१३/१६)

जहाँ पर अधार्मिकों की पूजा तथा धार्मिक का उत्पीड़न होगा वहाँ इन तीनों तत्त्वों-नक्षत्र, जल तथा वायु का उत्पात होगा।

अधार्मिकजने मानं धार्मिकानां च निग्रहम्।
त्रयस्तत्र प्रकुप्यन्ते नक्षत्रजलवायवः। - सु. प्र. सू. १३/१४

बुद्धचरित में कहा गया है कि राजा के लिए भी एक जोड़ा वस्त्र, उसी तरह क्षुधा निवृत्ति के लिए कुछ अन्न, एवं शय्या और एक ही आसन (आवश्यक) है, राजा को शेष विशेषताए (परिग्रह) मद पैदा करने के लिए है।

राज्ञोऽपि वासो युगमेकमेव क्षुत्संनिरोगाय तथान्नमात्रा।
शय्या तथैकासनमेकमेव शेषा विशेषा नृपतेर्मदाय।।

- बु. च. ११/४८

धर्मसार समुच्चय में पाँच प्रकार के भय बताए हैं-

आजीविकाभयमशोकभयं मरणभयं दुर्गतिभयं पर्षदसाद्यभयं चेति। (७१)

जातक कथा में कहा गया है कि प्रजाओं का हित-अहित राजाओं के चरित्र पर निर्भर है।

नराधिपानां चरितेष्ठधीनं लोकस्य यस्मादहितं हितं च।

- जा. मा. १३/३८

जातकमाला में कहा गया है कि न्यायमार्ग पर चलने वाले राजा का नगर उपद्रवों से मुक्त होकर उन्नति के शिखर पर चढ़ जाता है। (१५/३)

पुरं विनिर्मुक्तमिवोपसर्गैन्यायप्रवृत्तेन नराधिपेन।

दूसरे के धन से वैसे ही डरना चाहिए, जैसे व्यक्ति सांप से डरता है।

नान्य धनमपजहार तथा भुजंगादिमान्यविभवाहिवि यथा।

- सौ. नं. ३/३१

परलन्त्रता में कोई निर्भीक नहीं होगा-

परतन्त्रतोऽपि निर्भीको भवेत् कः खलु बुद्धिमान्। -च. श. ३

परिग्रह को विग्रह के हेतु रूप क्रोध से शिर उठाए कृष्ण सर्पों के समान त्याज्य बतलाया गया है। जा. मा. २०/२

कृपण वचन बोलने का पाप कहा गया है। (बु.च. २८/४२)

कहा गया है कि वही कर्म करो जिससे लोक में कल्याण हो।

कुरू तत् कर्म येन लोके हितं भवेत्। - बु.च. १६/२०

राहुल सांकृत्यायन ने बौद्धधर्म की सफलता संघ में पूरी तरह मानी है तथा समाज में जिस गति से तुरन्त प्रभाव होना चाहिए था, नहीं माना है, लेकिन सन्तों के माध्यम से जो अलख जगती रही उसका प्रभाव आज तक देखा जा सकता है।

संघ के सन्दर्भ में विचार किया जाय तो निश्चित रूप से विनय-संघ नियमों में प्रयास किया गया है कि भिक्षु को अपराध का दण्ड भी मिले तथा निरपराधी को सजा नहीं मिले। इस प्रकार संकेत में बौद्धधर्म में मानवाधिकार की सन्दर्भों को देखा जा सकता है।

• सात अपरिहानीय धर्मों के आधार पर तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भगवान् बुद्ध स्त्रियों, वृद्धों एवं धर्मायतनों की सुरक्षा के प्रति कितने चिंतित थे तथा मानव अधिकारों के उल्लंघन के पूर्व ही ऐसा वातावरण विकसित कर देना चाहते थे कि मानव अधिकारों का उल्लंघन ही न हो।

सात अपरिहानीय धर्म

इन धर्मों के माध्यम से एक ओर भगवान् बुद्ध ने राष्ट्र की सुरक्षा के उपाय बतलाए है दूसरी ओर हम पाते हैं कि इन शिक्षाओं में मानवाधिकार छिपे हैं-

- स्त्रियों के प्रति अत्याचार न करना।
- बूढ़े लोगों की सेवा करना।
- धार्मिक स्थानों की सुरक्षा।
- प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का मत शासन में भागीदार हो।
- सम्मति के लिए बार-बार बैठक करना।
- एक साथ बैठक करना एवं करणीय कर्तव्य को करना।
- अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त नहीं करना, तथा प्रज्ञप्त का उच्छेद नहीं करना।
- जो हमारे वृद्ध हैं उनका सत्कार करना एवं उनकी मानने योग्य बात को मानना।
- जो हमारी कुलस्त्रियां या कुलकुमारियां हैं उनको छीनकर जबरदस्ती न करना।

– नगर के भीतर या बाहर जो चैत्य (देवस्थान) है। उनका सत्कार करना एवं दिए गए दान का लोप नहीं करना।

– जो हमारे अर्हत् या पूज्य धार्मिक है। उनकी रक्षा करना जिससे वह सुखपूर्वक विहार कर सकें।

– जब हम आज के कोर्ट कचहरी एवं मानवाधिकार के सन्दर्भ में विचार करते हैं तो पाते हैं कि मानवाधिकार आयोग की निश्चित ही आवश्यकता थी। सामान्य कोर्ट कचहरी से मानव अधिकारों की रक्षा संभव नहीं है क्योंकि भगवान बुद्ध के समय भी प्रसेनजित राजा कहता है कि वह कोर्ट कचहरी में जाना इसलिए छोड़ दिया है कि वहाँ लोग झूठ बोलते हैं।- संयुत्तनिकाय, पृ. ७३

सिंगालोवादसुत्त में जब बुद्ध ब्राह्मण को समझाते हैं कि विभिन्न दिशाओं को पानी देना कैसे चरितार्थ होता है।

– अर्थात् माता पिता की सेवा करके उनके किए गए उपकारों को स्मरण कर वृद्धावस्था में भरण पोषण करना।

– गुरु जो शिक्षा देता है अतः अच्छी तरह से शिक्षा ग्रहण करना।

– मित्रों को कुमार्ग से निकाल कर सुमार्ग पर लगाना।

– चाटुकारितापूर्ण बात के स्थान पर हितकारी बात कहना।

– भाईयों के प्रति

– स्त्री के प्रति भरण पोषण के साथ उनका कर्तव्य बतलाया गया है कि वे पति की सेवा करें।

स्त्री एवं पुरुष दोनों को एक दूसरे के प्रति ईमानदार रहने को भी कहा है।

– आज के संगठन महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति तो सचेष्ट करती हैं। लेकिन यह नहीं कहतीं कि वे पति की सेवा करें तथा ईमानदारी से रहे या अपने भी कर्तव्यों का निर्वहन करें।

– दास दासी के प्रति उनके किए गए परिश्रम का भुगतान तथा उनकी सुख सुविधाओं का ध्यान रखने को कहा गया है।

आज सबसे अधिक शोषण मजदूरों का होता है। कहीं कहीं मजदूर भी अति कर देते हैं लेकिन बुद्ध ने दोनों के कर्तव्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

सिंगालोवादसुत्त में प्रतिपादित छः दिशाओं को क्रमशः गुरु, माता-पिता, पत्नी, भाई बान्धव, मित्र, दास-दासी का प्रतीक बतलाते हुए इनके अधिकार एवं कर्तव्य प्रतिपादित किए गए हैं।

– विभिन्न स्थलों में राजा के कर्तव्य बतलाए गए हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि भगवान् बुद्ध इस बात के प्रति सचेष्ट थे कि मानव को समानता के अधिकार प्राप्त हो। जन्म के स्थान पर गुणों के आधार पर व्यक्ति की श्रेष्ठता मानी थी।

आज से २५०० वर्ष पूर्व इस तरह का उद्घोष सर्वप्रथम किया गया।

समानता का अधिकार– भारतीय संस्कृति में श्रमण संस्कृति का वैशिष्ट्य इसलिए माना जाता है कि यह जन्म से व्यक्ति को छोटा बड़ा नहीं, कर्म से छोटा बड़ा मानते हैं।

– वर्ण व्यवस्था के मूल में भी यही भावना रही होगी लेकिन समाज में जन्म के स्थान पर व्यक्ति को उच्च नीच माना जाता है।

बुद्ध ने अपने संघ में तो निश्चित रूप से यह भेद मिटाया था। जैसे समुद्र में सभी नदियां एक हो जाती है उसी प्रकार भिक्षुओं को कहा गया कि वे प्रव्रजित होने के बाद समान हैं।

– समाज में भी स्पष्ट घोषणा की गई कि

– व्यक्ति जन्म से नहीं, कर्म से महान होता है।

– संघ में सभी जातियों को प्रवेश दिया गया।

– कर्म के आधार पर क्षत्रिय आदि की संज्ञा को उपयुक्त कहा गया।

स्त्रियों को भी पुरुषों के समान बतलाकर दुःख न करने की बात कही।

– जनभाषा के महत्त्व में भी जनकल्याण की भावना छिपी दिखाई देती है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने मार्क्सवाद एवं बुद्धिज्म से तुलना करते हुए स्पष्ट लिखा है कि मार्क्सवाद हिंसा का सहारा लेता है, बौद्धधर्म में हिंसा का कोई स्थान नहीं है।

मार्क्सवाद मात्र किसी एक वर्ग विशेष की रक्षा पर जोर देता है, बौद्धधर्म सभी वर्गों के विकास की बात करता है।

भारत से एशिया में बौद्ध का विकास हुआ, उसमें अशोक राजा अवश्य कारण था, लेकिन साम्राज्यवाद के आधार पर नहीं पहुँचा। अशोक के पुत्र एवं पुत्री श्रीलंका बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का प्रचार करने के लिए गए पर, शासन के लिए नहीं। यह कहा गया है कि "आपके उपकार के लिए हम आए हैं।" एशिया में चीन, जापान, इण्डोनेशिया, तिब्बत, मंगोलिया आदि तथा श्रीलंका, वर्मा, थाईलैण्ड में बौद्ध धर्म फैला, लेकिन वहाँ के शासकों ने अपने कल्याण एवं प्रजा की शान्ति के लिए इसे पूर्णरूपेण अपनाया।

भारत में जब अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली तब इसे धर्म-क्रान्ति का नाम दिया। राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाय तो यह लाभ हुआ कि जो दलित दूसरे विदेशी धर्मों की दीक्षा ले रहे थे। कम से कम भारतीय धर्मों में दीक्षित हुए, जिससे उनके राष्ट्रप्रेम में

प्रश्नचिह्न तो नहीं उठता, इसलिए भले ही कुछ लोगों को अम्बेडकर का यह कदम अच्छा न लगा हो लेकिन जो लोग विकास में पीछे थे, उनका मनोबल बढ़ाने में एवं दलितों को विकास की धारा में लाने एवं उनमें निराशा के स्थान पर आशा का संचार किया गया है। यद्यपि बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने से कोई आरक्षण आदि का लाभ नहीं दिया जाता। जैसा कि सुना गया है कि लोग लालच देकर धर्म परिवर्तन कराते हैं। लेकिन अब सच यह है कि धर्म परिवर्तन करने में आरक्षण की स्थिति में भी कोई अन्तर नहीं आता। अर्थात् जो स्थिति जन्म के साथ थी वही रहती है। आज बौद्ध धर्म भारत में विभिन्न कारणों से 'आशा का दीप' बना हुआ है क्योंकि इसमें मानव-मानव में कोई भेद नहीं किया गया है। जन्म के नाम पर किसी को उच्च या नीच नहीं माना गया है, बल्कि गुणों के आधार पर व्यक्ति को ऊँच या नीच की संज्ञा मिलती है। विदेशी भी आज बौद्ध धर्म से आकर्षित हो रहे हैं, उसकी वैज्ञानिकता के कारण। यहाँ पर किसी प्रकार के अन्धविश्वास को कोई स्थान नहीं है। भगवान बुद्ध ने स्पष्ट कहा था कि उनकी बात को इसलिए नहीं मानना चाहिए कि वे शिक्षा बुद्ध के द्वारा कही गई है, बल्कि उपयोगी लगे तो पालन करना चाहिए।

बौद्धधर्म सत्य का उपदेश करता है, आदेश नहीं।

सर्वपल्ली राधाकृष्णन का विचार है कि बुद्ध चाहते थे कि नए प्रकार का स्वतंत्र मनुष्य विकसित हो जो सब पूर्व मान्यताओं से स्वतंत्र हो, जो अपना भविष्य स्वयं बनाए, जो अपना दीपक स्वयं बने (अत्त दीपो भव)।

उसके बाद मानव जाति और राष्ट्रीय सीमाओं से परे था। आज दुनिया के सभी मामलों में जो अव्यवस्था जान पड़ती है, वह मनुष्यों की आत्मा के भीतर की अव्यवस्था है।[४]

संदर्भ-विवरण

१. नरेश विरुद्ध महाराष्ट्र राज्य के प्रकरण में उच्चतम न्यायलय ने अवधारित किया है कि कोई भी मौलिक अधिकार, किसी भी अन्याय निर्णय द्वारा प्रभावित हो सकेगा। यह अवधारणा अनुच्छेद १६ (१) (अ) की मीमांसा करते समय अभिव्यक्त की गई (१६६७ ऑल इंडिया रिपोर्टर, सुप्रीम कोर्ट, पृष्ठ १)

२. मानवाधिकार संबंधी अभी जन चेतना जाग्रत नहीं हुई है। अतः अभी अधिक क्या कम प्रकरण भी नहीं हो पा रहे हैं।

३. ह्यूमन राइटस समाचार जनवरी १६६६

४. बौद्धधर्म के २५०० वर्ष

• • • •

बौद्धधर्म का धर्म-सहिष्णुता में महत्वपूर्ण योगदान

आधुनिक सन्दर्भ में यदि बौद्धधर्म की उपादेयता पर विचार किया जाय तो पता चलता है कि धर्म सहिष्णुता की वृद्धि में बौद्धधर्म का महत्वपूर्ण योगदान है। सम्प्रदायवाद आज राष्ट्र की समस्या बनी हुई है। परस्पर मे विद्वेष की भावनाएं इतनी बढ़ गई हैं कि धर्म के नाम पर व्यक्ति अन्धे होकर मानव की कीमत नहीं समझते। भगवान बुद्ध की शिक्षा में सम्प्रदाय और जाति से बढ़कर मानव कल्याण की शिक्षा मिलती है। बौद्ध सम्राट अशोक ने भी सर्वप्रथम प्रयास किया कि परस्पर में धर्म सहिष्णुता की वृद्धि हो।

त्रिपिटक में कई ऐसे सन्दर्भ मिलते हैं जिनसे जाति विद्वेष को कम करने एवं धर्म सहिष्णुता की वृद्धि में महत्वपूर्ण प्रेरणा मिलती है।

कोलियों में पानी के बटवारे को लेकर विवाद चल रहा था। वे खून बहाने को उद्यत थे, भगवान उनसे पूछते हैं कि आप पानी के लिए खून बहाने को उद्यत हैं, पानी की कीमत ज्यादा है या खून की, कोलियों को भगवान की बात समझ में आ जाती है और वे झगड़ा समाप्त कर देते हैं।

मज्झिमनिकाय का यह प्रसंग महत्वपूर्ण है जिसमें एक जैन उपासक भगवान बुद्ध से प्रभावित होकर उनका शिष्य बन जाता है। कहता है कि पहले उनका द्वार जैन भिक्षुओं के लिए खुला रहता था, अब बन्द हो गया। अब बौद्धभिक्षु संघ को भिक्षा मिला करेगी। भगवान् कहते हैं कि ऐसा ठीक नहीं है, सभी को भिक्षा मिलनी चाहिए।

भगवान बुद्ध एवं वाद या सम्प्रदायवाद-

मूलरूप से देखा जाय तो भगवान् बुद्ध की शिक्षा का उद्देश्य किसी वाद या सम्प्रदाय की स्थापना करना नहीं था। उन्होंने बोधगया में बोधि प्राप्त करने के उपरान्त जनता के कल्याण के लिए ही उपदेश करने का निश्चय किया। भगवान बुद्ध के अन्तिम समय भी जब उत्तराधिकार की बात उठी, तो भगवान बुद्ध ने धर्म विनय को ही अपना वास्तविक उत्तराधिकारी बतलाया[४] साथ ही भगवान कह चुके थे कि कोई बात हितकारी एवं कल्याणकारी हो तो मानना चाहिए, इसलिए नही कि मैंने कही है।

संयुत्तनिकाय में इस सन्दर्भ में एक प्रसंग बहुत ही महत्वपूर्ण है। एक भिक्षुणी ध्यान कर रही थी, मार आकर पूछता है कि तुमको कौन सा सम्प्रदाय नहीं (पासण्ड) अच्छा लगता है भिक्षुणी उत्तर देती है कि उसे कोई सम्प्रदाय नहीं (पासण्ड) अच्छा लगता है। पुनः पूछता है कि जब तुमको कोई सम्प्रदाय अच्छा नहीं लगता तो क्यों सिर मुड़ाये ध्यान कर रही हो, उत्तर में भिक्षुणी कहती है कि वह भगवान बुद्ध को 'शास्ता' (गुरू) मानकर धर्म का पालन कर रही है, उसका धर्म सम्प्रदाय से बाहर है।

भगवान बुद्ध वाद या दृष्टियों से बचते थे, इसके कई उदाहरण हैं। अव्याकृत सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर न देना भी मेरी दृष्टि में सभी वादों या दृष्टियों से बचना एवं हितकार मार्ग अपनाना था। संयुत्तनिकाय में कहा गया है कि इनका कहना सार्थक नहीं है, भिक्षुचर्या के लिए उपयोगी नहीं है, निर्वेद, निरोध, परमज्ञान एवं निर्वाण के लिए आवश्यक नहीं है। श्रोता चाहे जिस निर्वाण प्रकार से प्रश्न पूछे, भगवान अनुपयोगी बात को छोड़कर उपयोगी एवं सुलझी हुई बात कहते थे। भगवान स्पष्ट कह देते थे कि प्रश्न पूछने का यह ढंग ही ठीक नहीं है। सुख दुःख स्वयं किया होता है या दूसरे का भगवान दोनों प्रश्नों को दो अन्त बतलाते हुए सुख दुःख क्यों होता है इसका उत्तर देते हैं।

भगवान् बुद्ध का धर्म पार उतारने के लिए था, चिपटने के लिए नहीं भगवान् ने स्पष्ट कहा था कि जिस प्रकार नौका का सहारा पार होने के लिए लिया जाता है। उसी प्रकार धर्म का सहारा लेना चाहिए। चिपटने या ढोने के लिए नहीं।

अशोक के धर्म लेखों में धर्म सहिष्णुता-

महान् सम्राट अशोक बौद्ध-धर्म से प्रभावित था तथा बौद्ध सम्राट माना जाता था। अशोक सभी धर्मों का विकास देखना चाहता था। उसने धर्म की परिभाषा करते हुए कहा है कि धर्म यही है कि पाप से दूर रहते बहुत से अच्छे काम करें, दान, दया एवं सत्य का पालन करें अशोक ने अपने लेखों में स्पष्ट लिखवाया था कि देवताओं के प्रिय-प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से गृहस्थ व सन्यासी एवं सम्प्रदाय वालों का सम्मान करते हैं। वे दान और पूजा की इतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बात की कि सब सम्प्रदाय वालों के सार तत्व की वृद्धि हो। इसके विपरीत करने से अपने सम्प्रदाय की भी क्षति होती है। जो अपने सम्प्रदाय की वृद्धि के ख्याति से दूसरे सम्प्रदाय की निन्दा करता है, वह वास्तव में अपने सम्प्रदाय को ही हानि पहुंचाता है। समवाय (मेल-जोल) अच्छा है अर्थात् लोगों को एक दूसरे का धर्म ध्यान से सुनना और उनकी सेवा करनी चाहिए। क्योंकि अशोक की इच्छा थी कि सब सम्प्रदाय वाले कल्याण का कार्य करने वाले हों। अशोक ने इसके लिए बहुत से राज कर्मचारी एवं पण्डितों को भी नियुक्त किया था।

वास्तव हैं सभी मानव एक समान हैं। मानव के कल्याण के लिए ही विभिन्न धर्मों का आविर्भाव हुआ। विनाश के लिए नहीं। मानव जाति में तो पशुओं के सदृश भी आकार में उतनी विविधता नहीं है। कोई भी डाक्टर खून लेते देते समय भी व्यक्ति की जाति या सम्प्रदाय का नाम नही पूछता। इसलिए सभी धर्मों को एक यान, पार उतारने वाला मानकर सभी के प्रति सहिष्णुभाव रखना चाहिए।

• • • •

वर्तमान में व्याप्त आतंकवाद एवं बौद्धधर्म की प्रासंगिकता

विश्व आतंकवाद से परेशान है, मात्र भारत ही नहीं, पूरा विश्व आतंकवाद से त्रस्त है। अमेरिका में हुए हमले से समस्त विश्व दहल गया है।

नेपाल में माओवादियों ने आतंक मचा रखा है । राज्य लोलुपों ने पूरे वंश का सफाया कर दिया, इजरायल आदि देश कितने वर्षों से आतंकवाद से त्रस्त है ।

श्रीलंका कितने वर्षों से जूझ रहा है। तमिल समस्या का कोई अंत समझ में नहीं आ रहा है।

चीन की सामन्तवादी प्रवृत्ति से 'तिब्बत' हडप लिया गया है। उनकी दमनकारी प्रवृत्ति के सामने पूरा विश्व मौन है। सरेआम हजारों नौजवानों को गोली से भून डाला गया।

भारत स्वतंत्रता के बाद जहां विकास की ओर अग्रसर था वहीं विभिन्न आतंकवाद गतिविधियों के कारण विकास रुक गया है । अपनी शक्ति रक्षा के क्षेत्र में लगानी पड रही है।

पाकिस्तान जैसा पिछडा देश विकास के स्थान पर 'काश्मीर' के नाम पर आतंकवादी गतिविधि शुरु किए हुए है।

-पाकिस्तान के कब्जे वाले काश्मीर को स्वतंत्र करने की बात क्यों नहीं करता।

-पाकिस्तान में आतंकवादियों के साथ कैसा सलूक किया जाता है। इसकी उसको चिंता नहीं है, भारत में दखलंदाजी करता है।

-भारत से गए हुए मुसलमानों को नं: दो का दर्जा दिया जाता है उन्हें मुजाहिर कहा जाता है महज संयोग है कि वर्तमान राष्ट्रपति एकमात्र शासक हुए है।

-काश्मीर में हजारों पण्डितों को अपनी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी। निर्दोष परिवार उजाड दिए गए। इनकी भीख मानव अधिकार के रक्षकों को सुनाई नहीं देती। अफगानिस्तान-में तालिवानों के द्वारा हुए आतंकवाद से पूरा विश्व परिचित हो चुका है। किस तरह इन्होनें धर्म के नाम पर दूसरे देशों एवं स्वयं अफगानिस्तान को तंग किया। आम जनता के अमन चैन को छीन लिया। सरेआम खेल के मैदान में जहां बच्चों को खेल खेलना चाहिए था, फांसी देने का कैदी जैसा बना दिया। महिलाओं का पर्दा के नाम पर कैदी खाना बना दिया। आधुनिक संचार के माध्यम रेडियो, टेलीविजन आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। मनोरंजन के स्वस्थ साधनों को बन्द करके आमजीवन में आतंक के साए में जीने के लिए लोगों को मजबूर किया। भारत के विमान का अपहरण कर अफगानिस्तान ले जाया गया, जिसके बदले में पाँच आतंकवादियों की फिरौती लेकर विमान के यात्रियों को छोडा गया। अफगानिस्तान जो पहले कला एवं विद्या के क्षेत्र में अग्रणी था, आज विश्व में सबसे दयनीय स्थिति में पहुँच गया है ।

अफगानिस्तान में ' शांतिदूत' के रूप में विश्व को संदेश देने वाली मूर्तियों को इन दरिंदों ने नष्ट कर दिया। पूरा विश्व चिल्लाता रहा लेकिन अपना आन्तरिक मामला बता कर अफगानिस्तान ने किसी की एक न सुनी। पूरा विश्व एवं संयुक्त राष्ट्र देखते रहे। तालिबानों ने बुद्ध की अनुपम मूर्तियों को डायनामाइड से उडा दिया। ऐसे बुद्ध की मूर्ति को तोडा गया जो विश्व में अहिंसा के पुजारी हैं। अहिंसा को धर्म मानने वाले भगवान बुद्ध हैं। **'धर्मं समासतोऽहिंसा वर्णयन्ति तथागताः'** अर्थात् अहिंसा ही धर्म है।

भारत में आतंकवाद - आसाम, नागालैण्ड आदि पूर्वोत्तर प्रदेशों में वर्षों से भारत जूझ ही रहा था कि पंजाब में भी १० वर्षों तक हजारों निरीह नागरिकों की आतंकवादियों ने जान ले ली । इसी तरह बिहार, आन्ध्रप्रदेश, झारखंड एवं मध्यप्रदेश के कुछ इलाकों में आए दिन आतंकवाद की घटनाएं होती रहती हैं ।

मजे की बात तो यह है कि इनको इसतरह अफीम खिला दी जाती है कि वे अपने को कोई स्वतंत्रता संग्राम सेनानी की कोटि में रखता है तो कोई अपने को धर्म का पालन मानता है। अर्थात् वास्तविक रूप में मात्रभूमि के लिये प्राण न्योछावर करने एवं अपने धर्म की रक्षा के लिये बलिदान देने वाले राष्ट्रभक्तों से ये तुलना करते हैं इसलिये सामान्यजन भ्रमित हो जातें हैं। महात्मागाँधी, इंदिरागाँधी, राजीवगाँधी के हत्यारों को आप राष्ट्रभक्त कहेंगे? इसी प्रकार धर्म के नाम पर या भाषा के नाम पर कोई कौम के मुट्ठी भर लोग यदि इसप्रकार हिंसा एवं आतंकवादी गतिविधि चलाते है तो समाज इसे कैसे स्वीकार कर सकता है। अतः आतंकवाद के सन्दर्भ में बौद्धशिक्षाओं की प्रासंगिकता पर विचार किया जा रहा हैं।

१- बौद्धधर्म का अनुयायी देश श्रीलंका तमिल समस्या से जूझ रहा है। तमिल अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये हिंसा का सहारा लेते है। सिंहली भी हिंसा का जबाब हिंसा से देते है, ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आज बौद्धदेश भी वर्तमान में व्याप्त आतंकवाद से निपटनें में सक्षम नहीं है।

२- दूसरा उदाहरण हमारे सामने 'तिब्बत' का है यहॉ पर ये दोनों बौद्ध देश है अर्थात् तिब्बत भी बौद्धदेश है एवं चीन भी। यद्यपि चीन में कम्युनिस्ट शासन होने के बाद धर्म के कोई मतलब नहीं रह जाता। फिर भी यदि कोई धर्म से सम्पन्न है तो बौद्धदेश चीन जैसे विशाल देश को तिब्बत जैसे अहिंसक देश पर कब्जा करने में शर्म नहीं आई। इतना भी नहीं आज तिब्बत पूरे विश्व में अपनी संस्कृति में अनुपम है- अपनी सांस्कृतिक धरोहर में तथा प्राकृतिक विलक्षणता में। पूरे विश्व में तिब्बत में एक धर्मराज्य कायम था अर्थात् दलाईलामा धर्मगुरु तो होते ही है, राजा भी होते है, उन्हीं का राज्य चलता है। चीन जैसे सामन्तवादी दरिन्द ने जो पहले भारत को अपना धर्मगुरू मानता था, पं० जबाहरलाल नेहरू से पंचशील के नाम पर मित्रता का हाथ बढ़ाया, उधर भारत पर आक्रमण कर दिया। इसलिए भारत जो विकास की ओर अग्रसर था, वापिस अपनी सुरक्षा मे लग गया।

इसलिए यह कहने में कोई हिचक नही होना चाहिए कि आतंकवादी या साम्राज्यवादियों का न कोई ईमान होता है न धर्म। यदि कोई ईमान या धर्म होता तो-

- चीन तिब्बत पर कब्जा न करता ?
- पाकिस्तान बंगलादेश का बटवारा नहीं होता।
- स्वयं ईरान और ईराक वर्षों तक नहीं लडते आदि।
- योरोपीय देश, जिसके कारण विश्व-युद्ध हुए वे सब ईसा को मानने वाले थे।

इसलिए यह परम सत्य है कि साम्राज्यवादियों एवं आतंकवादियों की कोई जाति एवं धर्म नहीं होता, लेकिन वे अपने को नैतिक आधार देने के लिए प्रयत्न करते हैं, जिनके मूल में दो कारण हैं - एक साम्राज्यवाद, दूसरा दादागिरी ।

इसी साम्राज्यवाद के चलते अधिक से अधिक लोग शक्तिशाली होना चाहते हैं। साम्राज्यवाद को मजबूत करने के लिए ही धर्म एवं भाषाओं का सहारा लेते हैं । भारत में ईसाई एवं इस्लामधर्म साम्राज्यों के साथ विकसित हुए । आज भी जब इन धर्मों में कोई धर्म-परिवर्तन होता है तो उसमें साम्राज्यवाद की गन्ध आती है अतः दूसरे धर्म वाले लोगों की चिन्ता स्वाभाविक है। आर्यशूर कृत जातकमाला में स्पष्ट कहा गया है कि जनता के बीच जो लोग दूसरों को शरण देने वाले और सम्मानित हैं वे धर्म के नाम पर हिंसा करते हैं- **'य एव लोकेषु शरण्यसम्मतास्त एव, हिंसामपि धर्मतो गता'** १०/२ जबकि बुद्धचरित में शिक्षा दी गई है कि सभी प्राणियों की हिंसा मत करो, विशेषकर निरपराध की - **'मा हिंस्य सर्वभूतानि निर्गन्तुं तु विशेषतः'**।

बौद्धधर्म में भी धर्म-परिवर्तन हो रहा है, लेकिन इसकी तुलना इस्लाम एवं ईसाई धर्म की तरह भारत में नहीं करना चाहिए क्योंकि भारत में इस्लाम एवं ईसाई धर्म आक्रान्ता के रूपमें जाने जाते रहे हैं। इनके अनुयायी शासकों ने यहां शासन किया, शासन की आड़ में धर्म-परिवर्तन हुए। ये दोनों धर्म बाहर ही रहे ।

हिन्दू मुस्लिम समस्या सुलझाने के लिए अग्रेजों ने भारत का विभाजन करवा दिया। फिर भी क्या समाधान निकला। किसी न किसी बहाने से दोनों देश लडते आ रहे है। और न जाने कितने वर्षों तक लड़ते रहेंगे। इसलिए समाधान बाहर नहीं अन्दर खोजना होगा। जब तक आपस में भाईचारा की भावना विकसित नहीं होगी। शान्ति कायम नहीं हो सकती । बुद्धचरितम् में ठीक ही कहा गया है कि हिंसा से सात् जन्मों में भी श्रेय की प्राप्ति नहीं हो सकती। **'हिंसया नाम न श्रेयो लभते सप्तजन्मसु'**।

बौद्धधर्म भारत में प्रादुर्भूत हुआ। यद्यपि कुछ शताब्दियों के लिए मान लिया जाता है कि बौद्धधर्म का लोप हो गया, वस्तुतः लोप कभी नहीं हुआ, जबकि परिस्थितियां अनुकूल नहीं रहीं तो भारत के मुख्य क्षेत्रों में इसका नामोनिशान मिट गया लेकिन पूर्वोत्तर प्रदेशों में लहराता रहा, इतना ही नहीं, एशिया के कोने-कोने में बौद्धधर्म की ध्वजा फहरी। विद्वान तो इस्लाम के अभ्युदय में बुतपूजा (बुद्धपूजा) आदि को कारण मानते है तथा विश्व के धर्मों में भगवान बुद्ध का प्रभाव स्वीकार करते हैं ।

भारत से एशिया में बौद्धधर्म का विकास हुआ, उसमें अशोक राजा अवश्य कारण था लेकिन वह साम्राज्यवाद के आधार पर नहीं पहुंचा। अशोक के पुत्र एवं पुत्री श्रीलंका बौद्धधर्म की शिक्षाओं का प्रचार करने के लिए गए, पर शासन के लिए नहीं, यह कहा गया कि 'आपके उपकार के लिए हम आए हैं एशिया में चीन, जापान, इण्डोनेशिया, तिब्बत में मंगोलिया आदि भी तथा श्रीलंका वर्मा थाईलैण्ड में बौद्ध धर्म फैला लेकिन वहां के शासकों ने अपने कल्याण एवं प्रजा की शांति के लिए इसे अपनाया।

भारत में जब अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली तब इसे धर्म क्रांति का नाम दिया। इसे राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाय तो यह लाभ हुआ कि जो दलित दूसरे विदेशी धर्मो की दीक्षा ले रहे थे वे कम से कम भारतीय धर्मो में दीक्षित हुए जिससे उनके राष्ट्रप्रेम में कम से कम प्रश्नचिन्ह तो नहीं उठता? इसलिए भले ही कुछ लोगों को अम्बेडकर का यह कदम अच्छा न लगा हो लेकिन जो लोग विकास में पीछे थे उनका मनोबल बढाने में एवं दलितों को विकास की धारा में लाने एवं उनमें निराशा के स्थान पर आशा का संचार किया गया है। यद्यपि बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने से कोई आरक्षण आदि का लाभ नहीं दिया जाता जैसा कि सुना गया है कि लोग लालच देकर धर्म परिवर्तन कराते है। लेकिन अब यह है कि धर्मपरिवर्तन करने में आरक्षण की स्थिति में भी कोई अंतर नहीं आता। अर्थात् जो स्थिति जन्म के समय थी वही रहती है। आज बौद्ध धर्म भारत में विभिन्न कारणों से आशा का दीप बनायी है, क्योंकि इसमें मानव-मानव में कोई भेद नहीं किया गया है जन्म के नाम पर किसी को उच्च या नीच नहीं माना गया है बल्कि गुणों के आधार पर व्यक्ति को ऊंच या नीच की संज्ञा मिलती है। विदेशी भी आज बौद्धधर्म में आकर्षित हो रहे है तो उसकी वैज्ञानिकता के कारण। यहाँ पर किसी प्रकार के अन्धविश्वास को कोई स्थान नहीं हैं। भगवान ने स्पष्ट कहा था कि उनकी बात को इसलिए नहीं मानना चाहिए कि वे शिक्षाएं बुद्ध के द्वारा कही गई है बल्कि उपयोगी लगे तो पालन करना चाहिए। '**परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मदवचो न तु गौरवात्**'।

भगवान बुद्ध ने स्पष्ट कहा है कि जिस प्रकार स्वर्णकार स्वर्ण की परीक्षा अग्नि में करता है उसी प्रकार उनके वचनों की परीक्षा कर ही स्वीकार करना चाहिए इसलिए नहीं, कि बुद्ध ने इनको कहा है नौका का उदाहरण देकर समझाया गया है कि जिस प्रकार नौका का सहारा पार होने के लिए लिया जाता है उसे ढोने के लिए नहीं, उसी तरह धर्म की स्थिति है, अर्थात् नौका से पार होने के बाद यदि कोई नौका को सिर पर रख कर ढोते रहेंगे कि इस नौका ने मुझे पार उतारा है इसलिए मैं इसे नहीं छोडूंगा तो लोग उसे मूर्ख कहेंगे। उसी प्रकार लोगों को धर्म का सहारा कल्याण के लिए लेना चाहिए। स्वयं भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को जब कहा कि अलग-अलग स्थानों पर जाय एक साथ दो मत हो तो उसमें भी वही उद्देश्य था कि '**बहुजन हिताय बहुजन सुखाय**'। भगवान बुद्ध ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में स्पष्ट कहा कि उनके बाद उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं होगा , धर्म ही उसका वास्तविक उत्तराधिकारी है कभी

विवाद होने पर मिला लेना कि धर्म के अनुकूल है या नहीं। अशोक जिसे बौद्ध धर्मानुयायी कहा जाता है स्पष्ट कहा गया है कि सभी धर्मों को समान रूप से सम्मान देना चाहिए। बींसवी शताब्दी में मार्क्सवाद को बहुत बड़ी आशा के रूपमें देखा गया, लेकिन भीमराव अम्बेडकर ने मार्क्सवाद एवं बुद्धिज्म से तुलना करते हुए स्पष्ट लिखा है कि मार्क्सवाद हिंसा का सहारा लेता है, बौद्धधर्म में हिंसा का कोई स्थान नहीं। मार्क्सवाद मात्र किसी एक वर्गविशेष की रक्षापर जोर देता है। बौद्धधर्म सभी वर्गों के विकास की बात करता है, मानव-मानव में असमानता का नहीं। भीमराव अम्बेडकर इसी कारण बौद्धधर्म को उपयुक्त कहते हैं तथा बौद्धधर्म को स्वीकार करते हैं। आज यू० एस० एस० आर० के विघटन के बाद मार्क्सवादियों का मनोबल वस्तुतः टूटा है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि भीमराव अम्बेडकर का निर्णय सही था बौद्धधर्म को अपनाने का, क्योंकि बौद्धधर्म में किसी भी प्रकार के वर्गभेद की बात नहीं, सभी मानव जाति के विकास की बात कही गई है। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** वस्तुतः बौद्धधर्म की शिक्षाओं से ही पूरा होता है क्योंकि इसमें किसी जातीय, क्षेत्रीय आदि किसी प्रकार की सीमाएं नहीं ।

विश्वव्यापी धर्मों में बौद्धधर्म ही एकमात्र ऐसा धर्म है जिसमें हिंसा का कोई स्थान नहीं हैं । अहिंसा में जो शक्ति है वह हिंसा में नहीं हो सकती । अंग्रेज यदि भारत के सामने झुके तो महात्मा गांधी की अहिंसा के कारण । अतः आतंकवादियों को समझ लेना चाहिए कि किसी भी मिशन की प्राप्ति हिंसा एवं आतंक से नहीं होगी । जो शक्ति सत्याग्रह में है वह हिंसा में नहीं हो सकती । यदि संगठन की कोई मांग है तो उसे अहिंसात्मक तरीके से उठाया जा सकता है - जैसे तिब्बत वर्षों से अहिंसा के आधार पर स्वतन्त्रता की मांग कर रहा है तथा विश्व में दलाईलामा को शान्ति का नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ है और इन आतंकवादियों का क्या हाल हो रहा है यह भी विश्व देख रहा है। अतः संक्षेप में यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि किसी भी समस्या का हल आतंकवाद में नहीं है। बौद्धधर्म की अहिंसा एवं शान्ति से ही विश्व में अमन एवं चैन कायम हो सकता है । महायानी बौद्ध ग्रन्थ 'शिक्षासमुच्चय' में स्पष्ट कहा गया है कि जब हमको और दूसरों को भय और दुःख प्रिय नहीं है तब मुझमें हीं क्या विशेषता है कि हम अपनी ही रक्षा करें, दूसरे की नहीं-

यदा मम परेषां च, भयं दुखं च न प्रियम्।
तदात्मनः को विशेषो, यत्तं रक्षामि नेतरम्।।
न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो।।

"भवतु सब्ब मंगलं"

• • • •

बौद्धदर्शन में प्रतिपादित दुःख

भगवान् बुद्ध ने अपनी गृहस्थ अवस्था में ही यह अनुभव कर लिया था कि संसार दुःखी है। इसी दुःख के कारण एवं निरोध का पता लगाने के लिए उनका महानिष्क्रमण होता है तथा चार आर्यसत्यों के ज्ञान के बाद वे अपने को बुद्ध घोषित करते है। भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का सारांश चार आर्यसत्यों में हम पाते हैं। दुःख के सन्दर्भ में सभी भारतीय विचारधाराएं भी संसार को दुःख रूप में मानती है। चार आर्यसत्यों के अतिरिक्त भी भगवान विभिन्न प्रसंगों में दुःख का प्रतिपादन करते हैं। प्रस्तुत है- संयुत्तनिकाय में प्रतिपादित दुःख का विवरण-

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को दुःख कहा गया है। [१] दुःख स्वरूप रूप वेदनादि के प्रति इच्छा के प्रहाण करने को कहा गया है[२] तथा इसके प्रति इच्छा को हटाने के लिए कहा गया है। [३] उत्पादसंयुत्त में वर्णित है कि चक्षु आदि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रादुर्भाव दुःख की उत्पत्ति, रोगों की स्थिति और जरा-मरण का प्रादुर्भाव है। चक्षु आदि के निरोध, व्युपशम और अस्त हो जाना दुःख का निरोध, रोगों का व्युपशम है जरा-मरण का अस्त हो जाना है। इसी तरह रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा, चेतना, धातु, स्कन्ध को वर्णित किया गया है।

- सभी कुछ है- यह एक अन्त है, कुछ नहीं है- यह दूसरा अन्त है-इन दो अन्तों में न जाकर बुद्ध धर्म को मध्यम मार्ग का उपदेश देते हैं। अविद्या से संस्कार-विज्ञान-नामरूप-षडायतन-स्पर्श-वेदना-तृष्णादि क्रम है- इस प्रकार सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है। अविद्या के निरोध से संस्कार आदि सारा दुःख समूह रुक जाता है।[४]

चूलपण्णासकसुत्त में पांच उपादान स्कन्धों को दुःख कहा गया है। फेणसुत्त में कहा है कि सभी संयोग को छोड़ दें, अपने शरण आप बने, मानो शिर जल रहा हो, ऐसा ख्याल रखकर निर्वाणपद की प्रार्थना करते हुए विचरें। [५] सीलसुत्त में वर्णित है कि शीलवान् भिक्षु को ठीक से मनन करना चाहिए कि ये पाँच उपादानस्कन्ध अनित्य, दुःख, रोग, दुर्गन्ध, घाव, पाप, पीड़ा, पराया, झूठा, शून्य और अनात्म है। [६]

अविद्या- जब पृथक्जन समुदयधर्मा, व्ययधर्मा रूप को वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को तत्वतः नहीं जानता (इनके आस्वाद, दोष और मोक्ष को भी)।

विद्या- पाँच उपादान स्कन्ध को समुदय, व्यय धर्मा को तत्त्वतः जानता है।[७]

दुःख- जो दुःख है उसमें छन्द राग इच्छा हटा लेना चाहिए।[८] अनित्यता के आधार पर दुःख का प्रतिपादन किया गया है। भगवान पूछते हैं-रूप नित्य है या अनित्य। जो अनित्य है वह दुःख है या सुख।[९] उत्तर मिलता है अनित्य एवं दुःख।

बड़े तालाब 'प्रपात' से भी यह बड़ा है- जो दुःख को नहीं जानता, दुःख निरोधगामी मार्ग को नहीं जानता, जो इसको नहीं जानते वे जन्म देने वाले संस्कारों में पड़े रहते हैं, बुढ़ापा देने वाले, मृत्यु देने वाले, शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य उपायास संस्कारों का संचय करते हैं-जाति-प्रपात, जराप्रपात, मरण-प्रपात, शोकादि प्रपात में गिरते हैं, उससे मुक्त नहीं होते-जो दुःख है- इसे दुःख निरोधगामी मार्ग को यथार्थतः जानने से जन्म देने वाले संस्कारों में नहीं पड़ते, बुढ़ापा लेने वाले संस्कारों का संचय नहीं करते, परिणामस्वरूप जाति, जरा-प्रपात में नहीं पड़ते, जाति, जरा एवं दुःख से मुक्त हो जाते हैं।

मलपरिदाह नामक एक नरक बतलाते हुए कहा गया है कि यह एक बहुत बड़ा परिदाह है जहाँ अनिष्ट, असुन्दर, अप्रिय, अनिष्ट ही है लेकिन इससे बड़ा परिदाह है जो यह दुःख है, इसे यथार्थतः नहीं जानता।[१०]

कहा गया है कि लोक शाश्वत है, अशाश्वत है- यह चिन्तन न अर्थ सिद्ध करने वाला है, न ब्रह्मचर्य का साधक। चिन्तन करना है तो करो-यह दुःख है, यह दुःख निरोधगामी मार्ग है-यह चिन्तन अर्थसिद्ध करने वाला है।[११] कोई कहे कि दुःख आर्यसत्य, दुःख निरोध आर्यसत्य को जाने बिना दुःख का अन्त कर लूंगा-तो यह संभव नहीं है।[१२] यह उसी तरह है जैसे कोई कहे कि कूटागार का निचला कमरा बनाए बिना ऊपर का कमरा बना लूंगा।

सीखे हुए लिच्छवी दूर से ही छिद्र में बाण छेद देते हैं उससे भी कठिन है जो 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जान लेना।[१४]

ऐसा लोक जहाँ-चाँद-सूरज की रोशनी नहीं पहुँचती, महाअंधकार है उससे भी बड़ा अंधकार है जो दुःख समुदय-निरोध को नहीं जानते। जो जानते हैं वे इस अंधकार में नहीं गिरते।[१५]

भले ही एक छिद्र वाले धुर में कछुआ मुश्किल से अपना शिर उससे घुमा ले लेकिन यह कठिन है कि मूर्ख नीचगति को प्राप्तकर मनुष्यता प्राप्त कर ले। चार आर्यसत्यों के न जानने से यहाँ धर्मचर्या, कुशलचर्या, पुण्यक्रिया नहीं है जिससे एक दूसरे को खाने पर पड़ा है। सबल दुर्बल को खाता है।[१६]

सुमेरु की उपमा देते हुए वर्णित किया गया है कि जैसे कोई सुमेरु पर्वत से सात मूंग के दाने फेंक दे तो उस पर्वत के सामने से दाने बहुत थोड़े है उसी प्रकार आर्यश्रावक के उस दुःख का हिस्सा बहुत बड़ा है जो क्षीण हो गया, वह बहुत कम है जो बचा हैं।[१८]

धूल के एक कण की उपमा देते हुए कहा गया है कि **आर्यश्रावक** के बचे हुए दुःख एक कण की तरह है जो बीत गए वे धूल की तरह है।[१९]

पोक्खरणी के पानी के एक कुश का जल = बराबर बचे हुए दुःख को कहा है।[२०] गंगा, यमुना, अचिरवती सरयू आदि महानदियों का जलकण जिस प्रकार छोटा होता है उसी प्रकार आर्यश्रावक का बचा हुआ दुःख है। पृथ्वी की उपमा देते हुए एक ढ़ेले बराबर आर्यश्रावक के बचे हुए दुःख को थोड़ा कहा है। [२१]

- महासमुद्र से दो तीन कण जल
- हिमालय से सात सरसों
- हिमालय के कंकड़

चार आर्यसत्यों के अज्ञान का परिणाम बतलाया गया है कि-

ऐसे जीव कम हैं जो मनुष्य योनि में जन्म लेते है, वे जीव बहुत है जो मनुष्य योनि से दूसरी योनियों में जन्मते हैं।[२२] - वे बहुत थोड़े है, जो मध्यम जनपदों में जन्म लेते हैं, वे बहुत हैं जो अत्यन्त जनपदों में अज्ञ म्लेच्छों के बीच पैदा होते हैं।[२३]

- वे बहुत थोड़े हैं जो आर्य प्रज्ञाचक्षु से युक्त है। वे अधिक है जो अविद्या में पड़े हैं। [२४]
- वे बहुत थोड़े हैं जो सुरा, मेरय, मद्य इत्यादि नशीली चीजों से विरत रहते हैं, वे बहुत हैं जो इनसे निरत नहीं रहते।[२५]
- वे प्राणी बहुत थोड़े हैं, जो स्थल पर पैदा होते हैं, वे प्राणी बहुत है जो जल में पैदा होते है। [२६]
- वे प्राणी बहुत थोड़े हैं जो मातृभक्त है, वे अधिक है जो मातृभक्त नहीं हैं।[२७]
- वे प्राणी थोड़े हैं जो पितृभक्त हैं वे अधिक हैं जो पितृभक्त नहीं हैं।
- वे थोड़े हैं जो श्रमण है वे अधिक हैं जो श्रमण नहीं हैं (यहाँ अनुवाद में काश्यप जी एवं धर्मरक्षित जी ने श्रमण का अर्थ किया है- मुक्ति के लिए श्रम करने वाले।)
- वे कम है जो कुल के ज्येष्ठों का सम्मान करते हैं, वे अधिक है जो सम्मान नहीं करते। इसी प्रकार
- जीवहिंसा से विरत रहने वाले कम हैं.....
- चोरी से विरत रहने वाले कम हैं.....
- काम मिथ्याचार/व्यभिचार से विरत रहने वाले कम हैं.....
- मृषावाद से विरत रहने वाले कम हैं.....
- चुगली करने से विरत रहने वाले कम हैं.....
- कठोर भाषण से विरत रहने वाले कम हैं.....
- मारने से विरत रहने वाले कम हैं.....
- बीज, वनस्पति के नाश से विरत रहने वाले कम हैं.....
- विकाल भोजन से विरत रहने वाले कम हैं.....

- माला-गन्ध-विलेपन के व्यवहार से विरत रहने वाले कम हैं, सेवन करने वाले अधिक हैं।
- नाचने, गाने, बजाने एवं अश्लील भाव देखने से विरत रहने वाले कम हैं.....
- ऊंची शय्या, महार्घ शय्या के व्यवहार से विरत रहने वाले कम हैं.....
- सोना-चांदी के व्यवहार से विरत रहने वाले कम हैं.....
- कच्चा अन्न लेने से विरत रहने वाले कम हैं.....
- कच्चा मांस ग्रहण करने से विरत रहने वाले कम हैं.....
- स्त्री कुमारी के ग्रहण से विरत रहने वाले कम हैं.....
- दास-दासी के ग्रहण करने से विरत रहने वाले कम हैं.....
- भेड़-बकरी के ग्रहण करने से विरत रहने वाले कम हैं.....
- मुर्गे एवं सुअर के ग्रहण करने से विरत रहने वाले कम हैं.....
- हाथी, गाय, घोड़ा, घोड़ी के ग्रहण से विरत रहने वाले कम हैं.....
- खेत की वस्तु का ग्रहण से विरत रहने वाले कम हैं.....
- क्रय-विक्रय से विरत रहने वाले कम हैं.....
- दूत के काम से विरत रहने वाले कम हैं.....
- ठगने, धोखा देने, दगा देने से विरत रहने वाले कम हैं.....
- काटने, मारने, बांधने, चोरी, डकैती, क्रूर कार्य से विरत थोड़े होते हैं।[२७]
- नरक में पैदा होने वाले अधिक है। मनुष्य योनि में पैदा होने वाले कम हैं यह चार आर्यसत्यों के अज्ञान के कारण है।
- पशु योनि में पैदा होने वाले अधिक हैं।
- प्रेतयोनि में पैदा होने वाले हैं, गतियों में विचार किया गया है, उत्कृष्ट कम अधम गति वाले अधिक हैं, चार आर्यसत्यों के अज्ञान के कारण।

भगवान बुद्ध ने पाँच उपादान स्कन्धों को दुःख कहा है। संक्षिप्त में जन्म लेना ही दुःख है। विभिन्न स्थलों में इस आध्यात्मिक चिन्तन के अतिरिक्त सामान्य जीवन के दुःखों का भी वर्णन प्राप्त होता है यथा-

- महिलाओं के पाँच कष्टों का वर्णन किया गया जिसे मात्र वे ही सहन करती हैं।
- यह भी स्पष्ट होता है कि जिसे सामान्य जन सुख समझते हैं यथा धन-धान्य-पुत्र स्त्री आदि उसे ही भगवान बुद्ध दुःख का कारण समझते हैं।
- संसार को दुःखी मानते हुए उसके कारण एवं समाधान का भी समुचित प्रयास किया गया है। तृष्णा को कारण मानते हुए तृष्णा के निरोध से दुःख-समुदय का रुकना बतलाया गया है। मार्ग के रूप में आर्य अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया गया है।

- आर्य अष्टांगिक मार्ग के आठ अंग हैं। सम्यक्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यक्वाणी, सम्यक्कम्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि।

शून्यवाद एवं दुःख

मध्यमकशास्त्र में आर्यसत्य परीक्षा प्रकरण में कहा है 'यदि शून्यमिदम्.... अर्थात् यदि सब कुछ शून्य ही हो तो उदय और व्यय सम्भव नहीं है। अतः शून्यवादी के मत में चारों आर्यसत्यों का अभाव प्रसक्त होगा। नागार्जुन की उक्ति की व्याख्या करते हुए आचार्य चन्द्रकीर्ति दुःख के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहते हैं- पूर्व कारणों से जन्य प्रतीत्यसमुत्पन्न, रूप, वेदना संज्ञा, संस्कार और विज्ञान– ये जो पांच उपांदान स्कन्ध हैं यही दुःख हैं क्योंकि ये प्रतिकूल वेदनीय हैं तथा परिणाम संस्कार दुःख से युक्त होने के कारण पीड़ात्मक हैं।

अतः दुःख के जनक होने के कारण ये भी इस दुःखरूप पञ्चस्कन्ध को भ्रम से रहित आर्य की तरह जानते हैं। अनार्यजन भ्रमवशात् यथार्थ रूप से नही जानते क्योंकि दृष्टि के अनुसार पदार्थों में स्वभाव की व्याख्या होती है। जैसे द्विपर्यस्त इन्द्रियों के लिए मधुर गुड ज्वरादि रोग से आतुर प्राणियों के लिए कटु मालूम होता है। उनकी दृष्टि में कटुता ही सत्य है। माधुर्य सत्य नहीं। इसी तरह दुःख स्वभाव वाले इन पांच स्कन्धों में अविपर्यस्तेन्द्रिय वाले आर्यों को ही दुःखबुद्धि होती है। न कि भ्रान्त इन्द्रियवाले अनार्यों को, उन्हें दुःखरूपता का ग्रहण नहीं होता, अतः आर्यों की दृष्टि में इन पांच स्कन्धों में दुःखात्मकता ही सत्य है। इसलिए दुःख को आर्य सत्य कहा गया है। यहाँ दुःख के साधक पाँच स्कन्ध भी दुःख रूप से ग्रहण किए गए हैं। इसलिए पूर्व दुःख–यह बुद्धोपदेश युक्तिसंगत है।

जिससे दुःख का समुदय होता है, वह दुःख का हेतु दुःख समुदय कहलाता है। अविद्यादि ही दुःख के कारण है। अविद्या विविध प्रकार के अज्ञान को कहते हैं जैसे षड्धातुओं का ऐक्य संज्ञा, पिण्ड संज्ञा, नित्यसंज्ञा, ध्रुवसंज्ञा, सुखसंज्ञा, शाश्वत संज्ञा, आत्मसंज्ञा, जीव, पुद्गल, मानवसंज्ञा, अहंकार ममकार ये सब विविध अज्ञान वर्णित है। अविद्या के होने से विषयों में राग-द्वेष और मोह उत्पन्न होते हैं। ये ही संस्कार कहे जाते हैं-पुण्योपग, अपुण्योपग तथा अनेजूयोपंग। इन संस्कारों से उसी प्रकार विज्ञान भी उत्पन्न होता है। उन्हीं विज्ञानों के साथ उत्पन्न होने वाले चार विज्ञानादि स्कन्ध हैं। उनको उपादान स्कन्ध कहा जाता है। चार महाभूतों को नामरूप से जाना जाता है। उन्हीं चार भूतों को आश्रित करके नाम और रूप उत्पन्न होता है। नामरूप की इन्द्रियां षडायतन शब्द से कही जाती है। धर्मों का सान्निपाक ही स्पर्श है। स्पर्श का अनुभव ही वेदना है। वेदना का अधःप्रसार ही तृष्णा है। तृष्णा के वैपुल्य को उपादान कहते हैं। उपादान से उत्पन्न पुनर्भव का जनक कर्म भी भव शब्द से कहा जाता है। स्कन्ध के प्रादुर्भाव का नाम ही

जाति है। उत्पन्न स्कन्ध का परिपाक ही जरा है। और जीर्ण स्कन्ध का विनाश ही मरण हैं अन्तर्दाह शोक है, शोक से जायमान विलाप का नाम ही परिदेव है। पञ्चविज्ञान काय से अनुभव दुःख है, मानसदुःख का नाम दौर्मनस्य है। अन्य जो रागादिक उपक्लेश हैं उनको उपायास शब्द से कहा गया हैं इस तरह अविद्या आदि एक दूसरे की उत्पत्ति में हेतु हैं। यही दुःख समुदय है।

तत्त्व साक्षात्कार से अविद्या के नाश होने से उत्तरोत्तर का नाश होता है। निरोध का अर्थ अनुत्पत्ति अथवा विगम है। अतीत कालिक दावों का तो भोग से ही उपक्षय हो जाता है। वर्तमान अनुभूपयानदुःख तो क्षणमात्र में अतीत हो जाता है। अनागत भविष्यत कालिक दुःख ही निरोधव्य हैं दुःख के परिज्ञान होने पर, दुःख के हेतुओं के प्रहाण हो जाने पर दुःख का निरोध दृष्ट हो जाता है। यह तत्त्व साक्षात्कार से होता है। तत्त्व शून्य ही है। उसी के परिज्ञान या साक्षात्कार से दुःखनिरोध संभव है। सभी पदार्थों के अनुपलब्ध होने से आलम्बन के बिना कर्म प्रसूत नहीं होते। कर्म के अभाव में तज्जन्य संस्कार की भी संभावना नहीं रहती। तदभाव से संस्कार की प्रवृत्ति नहीं होती। अर्थात् शून्यता तत्त्व साक्षात्कार से अविद्या के तिरोहित हो जाने पर तदुत्तरवर्ति संस्कार विज्ञान, नामरूपादि का सुतरां विगम या निरोध हो जाता है।

अविद्यायां तिरोहितायां संस्काराणामसंभवः।
अविद्यायाः निरोधस्तु ज्ञानेनमास्यैव भावनात्।।

राहुल सांस्कृत्यायन ने विचार किया है कि भगवान बुद्ध तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे, वैयक्तिक तृष्णा के दुष्परिणाम को उन्होंने देखा था।

राहुल जी का मानना है उन्होंने दुःख और उसकी जड़ को समाज में न ख्यालकर व्यक्ति में देखने की कोशिश की थी। भोग की तृष्णा के लिए राजाओं, क्षत्रियों, ब्राह्मणों, वैश्यों-सारी दुनियां को झगड़ते, मारते, मरते देख भी उस तृष्णा को व्यक्ति से हटाने की कोशिश की। उनके मतानुसार मानों कांटों से बचने के लिए सारी पृथ्वी को नहीं ढाका जा सकता है हाँ, अपने पैरों को चमड़े से ढंककर कांटों से बचा जा सकता है। यह समय भी ऐसा नहीं था कि बुद्ध जैसे प्रयोगवादी दार्शनिक सामाजिक पापों को सामाजिक चिकित्सा से दूर करने की कोशिश करते, वैयक्तिक बुराइयों को वह जानते थे इसलिए जहाँ तक उन्होंने अपने भिक्षुसंघ का सम्बन्ध था, उन्होंने उसे हटाकर भोग में पूर्ण साम्यवाद स्थापित करना चाहा। [२८]

राहुल सांकृत्यायन आगे दुःख विनाश पर त्रुटियां दिखाते हुए कहते हैं कि-

बुद्ध का दर्शन घोर क्षणिकवादी है, किसी वस्तु को वह एक क्षण से अधिक ठहरने वाली नहीं मानते किन्तु इस दृष्टि को उन्होंने समाज की आर्थिक-व्यवस्था पर लागू नहीं करना चाहा। सम्पत्तिशाली शासक शोषक-समाज के साथ इस प्रकार शांति स्थापित कर

लेने पर उनके जैसे प्रतिभाशाली दार्शनिक का ऊपर के तबके में सम्मान बढ़ना लाजमी था। पुरोहित वर्ग के कूटदन्त सोणदन्त जैसे धनी, प्रभुताशाली ब्राह्मण उनके अनुयायी बनते थे। राजा उनकी आव-भगत के लिए उताबले दिखाई पड़ते थे। उस वक्त का धन-कुबेर व्यापारी वर्ग तो उससे भी ज्यादा, उनके सत्कार के लिए अपनी थैलियां खोले रहता था। जितने की आज के भारतीय महासेठ गांधी के लिए श्रावस्ती के धन-कुबेर सुदत्त ने सिक्के से ढांककर एक भारी बाग खरीदकर बुद्ध और उनके भिक्षुओं के लिए किया, उसी शहर की दूसरी सेठानी विशाखा ने भारी व्यय के साथ दूसरा विहार पूर्वाराम बनवाया था। दक्षिण और पश्चिम भारत के साथ व्यापार के महान केन्द्र कौशाम्बी के तीन भारी सेठों ने तो विहार बनवाने में होड़ सी कर ली थी। सच तो यह है कि बुद्ध के धर्म को फैलाने में राजाओं से भी अधिक व्यापारियों ने सहायता की। यदि बुद्ध तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के खिलाफ जाते तो सुभीता कहाँ से हो सकता था।

हम पाते हैं कि राहुल जी के विचार पूर्णतः सही नहीं हैं। भगवान बुद्ध के द्वारा प्रतिपादित दुःख के सन्दर्भ एवं उनके उपायों में सामाजिक सन्दर्भ भी हैं यथा दास-दासी के ग्रहण, नाप-जोख में ठगी जैसे प्रकरण निन्दित किए गए हैं। कहा जा सकता है कि भगवान बुद्ध ने अपनी करुणा से संसार के दुःख का अनुभव करके उसे दूर करने के लिए यथासंभव प्रयास किया। अन्य धर्मों की तुलना में वे अधिक व्यवहारिक दिखाई देते है।

भगवान् बुद्ध ने चार आर्यसत्यों के ज्ञान के बाद अपने को बुद्ध घोषित किया एवं चार आर्यसत्यों का उपदेश सम्यक् परीक्षा कर दिया। ये हैं दुःख आर्यरूप, दुःख समुदय आर्यसत्य, दुःख निरोध आर्य सत्य तथा दुःख निरोधगामी प्रतिपदा। ये आर्यों द्वारा ज्ञातव्य है जो विद्वान, विमल, विवेक से सम्पन्न हैं वे ही आर्य कहलाते हैं अर्यते इति आर्यः अर्थात् श्रेष्ठ और विज्ञानी होने से जो प्राप्त करने लायक हो अथवा अभिगमन लायक हो वह विद्वान् अर्थात् श्रेष्ठ कहलाता है। आर्य विद्वानों के द्वारा ये चारों दुःखादि, जो सत्य की तरह प्रतिभासमान हैं वे ज्ञातव्य हैं। यद्यपि प्रतिकूल वेदनीयरूप दुःख आदि अनार्यों के द्वारा ज्ञातव्य हैं। तथापि अनार्यों के द्वारा यथार्थ रूप से ज्ञातव्य नहीं है अतः इनको आर्यसत्य कहा जाता है।

संदर्भ-विवरण

१. संयुत्तनिकायपालि २२.२.५.६

२. संयुत्तनिकाय २२.३.५.६

३. संयुत्तनिकाय २२.४.५.६

४. संयुत्तनिकाय २१.२.४.१०१

५. संयुत्तनिकाय २२.२.५.३

६. संयुत्तनिकाय २२.३.२.१०

७. संयुत्तनिकाय २१.३.३.१
८. संयुत्तनिकाय २१.३.४.५-७
९. संयुत्तनिकाय २१.३.५.१
१०. संयुत्तनिकाय ५४.५.३
११. संयुत्तनिकाय ४५.५.१
१२. संयुत्तनिकाय ५४.५.४
१३. संयुत्तनिकाय ५४.५.३
१४. संयुत्तनिकाय ५४.५.५
१५. संयुत्तनिकाय ४५.५.६
१६. संयुत्तनिकाय ५४.५.७
१७. संयुत्तनिकाय ५४.५.८
१८. संयुत्तनिकाय ५४.५.९
१९. संयुत्तनिकाय ५४.६.१
२०. संयुत्तनिकाय ५४.६.२
२१. संयुत्तनिकाय ५४.६.५
२२. संयुत्तनिकाय ५४.७.१
२३. संयुत्तनिकाय ५४.७.२
२४. संयुत्तनिकाय ५४.७.३
२५. संयुत्तनिकाय ५४.७.४
२६. संयुत्तनिकाय ५४.७.५
२७. संयुत्तनिकाय ५४.१०.१.११
२८. दर्शन-दिग्दर्शन-राहुल सांस्कृत्यायन पृ. ३११

• • • •

भौतिक जगत् में बौद्धधर्म की उपादेयता के संदर्भ में

डा. भीमराव अम्बेडकर एवं महापंडित राहुल सांकृत्यायन का दृष्टिकोण

भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थों की बात कही जाती है-धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। लेकिन जैन एवं बौद्ध धर्म निवृत्तिमार्गी बताकर भौतिक जगत में उनकी उपादेयता या महत्व का आकलन नहीं किया जाता, इस सन्दर्भ में बाबा साहब डा. भीमराव अम्बेडकर एवं महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने बहुत विचार किया था।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन इस शताब्दी के महान् व्यक्तियों में से एक हैं जिनके बहुआयामी व्यक्तित्व ने भारतीय साहित्य एवं समाज को एक नई दिशा दी। राहुल सांकृत्यायन ने भौतिकवाद के सन्दर्भ में भगवान बुद्ध के विचारों की समीक्षा की है जिसका परिचय इस प्रकार है-

मूलरूप से राहुल जी ने बौद्धधर्म को अभौतिकवाद के अन्तर्गत रखा है, बुद्ध समझते थे कि भौतिकवाद उनके ब्रह्मचर्य की समाधि का वैसे ही विरोधी है जैसे कि आत्मवाद। आदमी ब्रह्मचर्यवास तब ग्रहण करता है जब कि इस जीवन के बाद भी उसे फल पाने या काम पूरा करने का अवसर मिलने वाला है। शरीर दूसरा है-जीव दूसरा है-ऐसा मत होने पर ब्रह्मचर्यवास नहीं हो सकता। शरीर और जीवन को भिन्न-भिन्न मानने वाले आत्मवादी के लिए ब्रह्मचर्यवास व्यर्थ है क्योंकि नित्य ध्रुव, आत्मा में ब्रह्मचर्य के द्वारा संशोधन, संवर्धन की गुंजाइश नहीं। राहुलजी ने इसकी समीक्षा करते हुए कहा है कि- वाद (उपनिषद्) आत्मवाद है। प्रतिवाद (चार्वाक) भौतिकवाद है। संवाद (बौद्धधर्म) अभौतिक, अनात्मवाद है।[1]

राहुल जी जो बौद्धधर्म को अभौतिकवादी मानते हुए भी क्रान्तिकारी मानते हैं। बुद्ध का ज्ञान अपने मौलिक रूप में प्रतीत्यसमुत्पाद (क्षणिकवाद) भारी क्रान्तिकारी था। जगत्, समाज व मनुष्य को उसने क्षण-क्षण परिवर्तनशील घोषित किया। जो अपने व्यवहार और समाज को परिवर्तन के लिए हर वक्त तैयार रहने की शिक्षा देता था। बुद्ध ने अपने बड़े दार्शनिक विचार (धर्म) को भी बेड़े के समान सिर्फ उससे फायदा उठाने को कहा था और समय के बाद ढोने की निन्दा की थी।

राहुल जी बौद्धधर्म को क्रान्तिकारी मानते हुए भी कहते हैं कि इस दर्शन ने अपने भीतर से उन तत्वों को नहीं हटाया जो समाज की प्रगति को रोकने का काम करते हैं। इसमें राहुलजी पुर्नजन्म के सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हैं। रहुल जी का विचार है कि बुद्ध ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मजबूत किया-जिससे यह धारणा पुष्ट हुई कि-आवागमन, धनी-निर्धन का भेद उसी कर्म का कारण है जिसके कर्ता कभी तुम खुद थे, इसलिए

आर्थिक विषमता हटाने में बौद्धधर्म की उपादयेता स्वीकार नहीं करते। साफ कहते हैं-कि समाज में आर्थिक विषमता को अक्षुण्ण रखते हुए ही बुद्ध ने वर्णव्यवस्था, जातीय ऊंच-नीच के भाव को हटाना चाहा था जिसमें वास्तविक विषमता तो नहीं हटी किन्तु निम्न वर्ग का सद्भाव बौद्धधर्म की ओर बढ़ गया।[3]

राहुल जी ने इस बात पर भी विचार किया है कि बुद्ध की वैयक्तिक भौतिक परिस्थिति का उनके दर्शन पर क्या प्रभाव पड़ा? बुद्ध दर्शन अनित्य, दुःख एवं अनात्मवादी है। इस दुःखवाद का कारण उस समय के समाज तथा बुद्ध की अपनी परिस्थिति में ढूढ़ें तो वृद्ध, मृत, बीमार एवं संन्यासी इनके दर्शन मात्र नहीं थे, इससे बढ़कर मानव की दासता, दरिद्रता ने उन्हें दुःख की सच्चाई को साबित करने में मदद की होगी।

राहुल जी के विचारों से पता चलता है कि वे भगवान बुद्ध को भौतिक जगत् में पूर्ण सुधारवादी भले ही नहीं मानते लेकिन प्रथम दुःख है, के अनुभवकर्ता के रूप में मानते हैं, इसलिए वे बौद्ध धर्म एवं मार्क्सवाद दोनों की आवश्यकता समझते हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर व्यक्ति का आर्थिक, सामाजिक, नैतिक एवं राजनैतिक सभी तरह का विकास करना चाहते थे, इन सभी दृष्टियों से उनको बौद्धधर्म ही श्रेष्ठ लगा। भौतिक संसार की दृष्टि से अम्बेडकर बौद्धधर्म का जिस तरह विश्लेषण करते हैं यह विचारणीय है। भौतिक जगत में इस सदी में मार्क्सवाद सबसे अधिक चर्चित रहा इसलिए अम्बेडकर मार्क्सवाद पर गम्भीरता से विचार करते हैं एवं पाते हैं कि मार्क्सवाद के विधायक पक्ष बौद्धधर्म में हैं एवं नकारात्मक पक्ष बौद्धधर्म में नहीं हैं। इसलिए उन्होंने बौद्धधर्म को चुना।

अम्बेडकर ने भौतिकवादी मार्क्सवाद एवं बौद्धधर्म के अनात्मवाद, अनीश्वरवाद आदि सिद्धान्तों में समानता देखी है, लेकिन जिन पक्षों के कारण अम्बेडकर मार्क्सवाद से सहमत नहीं हैं या बौद्धधर्म की उससे श्रेष्ठ समझते हैं वे पक्ष इस प्रकार हैं-

मार्क्सवाद परिवर्तन लाने में अहिंसा पर विश्वास करता है, जबकि बौद्धधर्म अहिंसक है।

मार्क्सवादी अधिनायकवादी है जबकि बौद्ध गणतंत्र का पोषक है तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता का पक्षधर हैं।

मार्क्सवाद मात्र आर्थिक समानता का पक्षधर है, जबकि बौद्धधर्म सभी पक्षों में समता एवं समानता पर बल देता है।

मार्क्सवाद सर्वहारा वर्ग के हितों की मात्र रक्षा करता है, इस सन्दर्भ में अम्बेडकर का विचार है कि वर्ग नैतिकताएं समाज के पतन का कारण बन सकती हैं।

मार्क्सवाद आर्थिक परिवर्तन को ही सामाजिक उत्थान के लिए मूलकारण मानता है जबकि बौद्ध धर्म में दुःख की उत्पत्ति का कारण अविद्या, तृष्णा, राग-द्वेष और लोभ

है। मार्क्सवाद में दुःख आध्यात्मिक नहीं है, तथा निर्वाण का भी स्थान नहीं है जबकि अम्बेडकर सामाजिक परिवर्तन में धर्म को महत्व देते हैं।

अम्बेडकर मार्क्सवाद के विपरीत बौद्धधर्म की ओर झुके। उनकी दृष्टि में संसार के लिए शान्ति और सहयोग की भी आवश्यकता है जो बौद्ध सिद्धान्तों के पालन करने से मिल सकती है इसलिए वे बौद्ध धर्म को मार्क्सवाद का विकल्प मानते थे।[३]

उनका विचार था कि यदि बुद्ध के सिद्धान्तों को न अपनाया गया तो यूरोप के संघर्ष का इतिहास एशिया में भी दोहराया जायेगा।

डा. अम्बेडकर समाज के सभी पक्षों में बौद्धधर्म की उपादेयता स्वीकार करते हैं। अम्बेडकर कहते हैं कि बौद्ध ग्रंथों में जो शिक्षायें संग्रहीत हैं वे मात्र भिक्षुओं के लिए नहीं, गृहस्थों के लिए भी है। गृहस्थों के लिए उपयोगी शिक्षाओं का उल्लेख करते हुए उदाहरण देते हैं-

चार सुख ऐसे हैं जिन्हें प्रयास कर गृहस्थ प्राप्त कर सकता है। सम्पत्ति का मालिक होना, सम्पत्ति को भोगना, ऋण ग्रस्त न होना और दोष रहित होना। (अंगुत्तरनिकाय, चतुक्क निपात)

पुत्री, पुत्र से भी अधिक बुद्धिमती, सुशीला और सेवापरायण होती है। (संयुत्तनिकाय)

मनुष्यों की अनवति के कारण-धर्म से घृणा, अकेले सम्पत्ति का उपभोग, फिजूल खर्ची, व्यभिचार, शराबी होना आदि है।

अम्बेडकर ने धर्म को व्यापक अर्थ में लिया है। धर्म को सदाचार एवं नैतिकता के साथ विज्ञान सम्मत होना भी आवश्यक है। अम्बेडकर धर्म का अंग्रेजी रिलीजन अर्थ सही नहीं मानते क्योंकि रिलीजन (Religion) सीमित (मज़हब) अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि भगवान बुद्ध का धर्म सामाजिकता से जुड़ा है। मज़हब से काफी आगे है। अम्बेडकर धर्म को नैतिकता से जोड़ते हुए धर्म के तीन सोपान बतलाते हैं। १. अधर्म से मुक्त होना, २. धर्म का पालन करना ३. सद्धर्म में प्रवेश करना।[४] उक्त धर्म की सभी मान्यताओं में वे बौद्ध धर्म को खरा पाते हैं।

डा. अम्बेडकर अपनी भीष्म प्रतिज्ञाओं में भी सभी मनुष्यों की समता एवं समानता के लिए प्रयत्न करने की बात कहते हैं। आर्य अष्टांगिक मार्ग की शिक्षा ग्रहण करना भी अनिवार्य है। संघ के कर्तव्यों की ओर ध्यान दिलाते हुए समाज के प्रति उसके उत्तरदायित्व की बात कहते हैं। उनकी प्रमुख शिक्षायें हैं-भाग्य मे विश्वास मत रखो, अपनी शक्ति पर विश्वास करो। दरिद्रता मानवता का सबसे बड़ा अभिशाप है। अतः वह व्यक्ति का सौभाग्य नही है। अतः पैसा कमाना चाहिए पर न्यायपूर्वक, दरिद्रता पूर्वोपार्जित कर्मों का फल नहीं है।[५]

इस प्रकार डा. अम्बेडकर के विचारों से पता चलता है कि बौद्ध धर्म मानव के सभी पक्षों के लिए कल्याणकारी है चाहे आध्यात्मिक जगत हो या भौतिक जगत। इस संदर्भ में भगवान बुद्ध का वचन उल्लेखनीय है जिसमें भगवान शिक्षा देते हैं कि **"चरथ भिक्खवे, चारिकं बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।"**

संदर्भ-विवरण

१. राहुल चयनिका पृ. १०६

२. वही पृ. १११

३. भारतरत्न डा. अम्बेडकर और बौद्धधर्म-डा. भागचंद जैन पृ. १३२-३३

४. वही पृ. ८७ ६०-६५

५. Ambedker on Buddhist Conversion and its impact- Ed. Professor Sanghsen Singh, Page-233-34 & 218

• • • •

पालि एवं बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों में आयुर्वेद-संदर्भ

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में भगवान बुद्ध का आविर्भाव हुआ था। चार आर्यसत्यों के ज्ञान के बाद भगवान बुद्ध ने अपने को बुद्ध घोषित किया, पश्चात् बहुजन हिताय बहुजन सुखाय विचरते रहे। भगवान बुद्ध द्वारा देशित साहित्य में एवं बौद्धाचार्यों द्वारा रचित साहित्य में आयुर्वेद के विविध सन्दर्भ प्राप्त होते है। भगवान बुद्ध ने जिन चार आर्यसत्यों का साक्षात्कार किया था वही पद्धति आयुर्वेद एवं चिकित्साशास्त्र अपनाता है। यथा प्रथम आर्य सत्य में दुःख आर्य सत्य है इसमें संसार के वास्तविक स्वरूप को देखा गया है कि जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त विविध प्रकार के दुःखों से लोग घिरे हुए है। दूसरे सत्य में दुःख का कारण खोजा गया है कि यह दुःख तृष्णा से उद्भूत है। तीसरे सत्य में दुःख का नाश कैसे होगा इस पर विचार किया गया है कि तृष्णा के निरोध से दुःख का निरोध हो सकता है। चौथा आर्य सत्य उपाय रूप है जिसमें आर्य अष्टांगिक मार्ग का निरूपण किया जाता है- सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि। यही पद्धति चिकित्साशास्त्र में मान्य है । यथा सर्वप्रथम रोग की पहचान, द्वितीयतः रोग का निवारण, तीसरा रोग का नाश कैसे होगा तथा रोग नाश करने की औषधि ।

भगवान बुद्ध ने भिक्षु एवं भिक्षुणियों के लिए चार प्रत्ययों का विधान किया था। चीवर, पिण्डपात, शयनाशन एवं ग्लान प्रत्यय भैषज्य परिष्कार। यह चौथा प्रत्यय औषधि से संबंधित है। अर्थात् बीमारी की अवस्था में औषधि। भिक्षुओं के लिए औषधि के रूप में गोमूत्र रूप औषधि विहित है साथ में मक्खन, घी, तेल, मधु एवं खांड का भी सेवन किया जा सकता है।[1] भगवान के समय कुमार जीवक जिनको जीवक कौमार भृत्य भी कहा जाता है, प्रसिद्ध वैद्य थे। भगवान बुद्ध का इलाज भी वे करते थे तथा शल्यक्रिया में भी उनको निपुण बतलाया गया है।[2]

आचार्य नागार्जुन भी आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य है। बौद्धदर्शन शून्यवाद के प्रतिष्ठापक आचार्य भी नागार्जुन हैं। चीनी एवं तिब्बती परम्परा मानती है कि बौद्ध दार्शनिक तांत्रिक और रसायनिक एक ही थे। कुमार जीव ने इनकी आयु ३०० वर्ष बतलाई है। तारानाथ इन्हें कनिष्क का समसामयिक मानते है। विद्वान इनका समय बुद्ध के परिनिर्वाण के ४००-७०० पीछे मानते है और नवीन विद्वान नागार्जुन का स्थितिकाल आन्ध्र महाराज गौतमी तंत्र यज्ञ श्री १६६-१९६ ई. के समसामयिक मानते है।[3]

मिलिन्दप्रश्न जो कि पहली शताब्दी की ऐतिहासिक रचना मानी जाती है। इसमें १९ विद्याओं में वैद्यक को एक विद्या के रूप में गिनाया गया है। स्वयं अनुभव करके

शास्त्र लिखने वाले आचार्यो के नाम भी गिनाए गए है, वैद्यक शास्त्र के आचार्य थे- नारद, धन्वन्तरी, अंगीरस, कपिल, कण्डाराग्नि, साम, अतुल और पूर्वकात्यायन।[४] मिलिन्दप्रश्न में शरीर के विभिन्न तत्वों का वर्णन किया गया है। यथा नख, दन्त, चमड़ा, मांस, स्नायु, हड्डी, मज्जा, वृक्क, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आंत, पेट, पखाना, पित्त, कफ, पीब, लाहु, पसीना, मेद, आंसू, चर्वी, लार, सिणक, लासीका, दिमाग एवं मूत्र।[५] रोगों की संख्या ६८ बतलाई गई है। कहा गया है कि रोग पूछकर नहीं आते, इसमें पूर्वजन्म के पापों को भी कारण माना है।[६]

अनात्मवादी बौद्ध दर्शन रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान पांच स्कन्धों से शरीर की संरचना मानता है तथा छः इन्द्रियां चक्षु , श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और इनके विषय रूप, शब्द, गन्ध, स्पर्श तथा धर्म एवं इन दोनों के मिलन को विज्ञान कहते है। भवचक्र की व्याख्या प्रतीत्यसमुत्पाद के रूप में की गई है।[७]

भगवान बुद्ध को भैषज्यराज कहा गया है।[८] भगवान बुद्ध अमृत औषधि देकर भवरोग का हरण करने वाले है।[९] सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र के द्वाविंशति पर्व भैषज्यराज की नाना पर्यायों का उल्लेख है। बोधिसत्व को भैषज्यराज कहा गया है।[१०] वातरोग से पीडित होने पर भगवान बुद्ध गरम पानी में गुड़ घोलकर पीने से ठीक हुए।[११] वातरोग एवं तृणपुष्पक रोग होने पर वक्कुस भिक्षु ने अनेक दवाइयों से भिक्षुओं के रोग को ठीक किया।[१२] शारीरिक कष्ट पित्त के कुपित होने पर बतलाए गए है।[१३] वैद्य के गुणों की चर्चा की गई है तथा कहा गया है कि कडवी औषधि को पीने के लिए मधुयुक्त न किया जाए तो कैसे पीने योग्य बनेगी।[१४] दस रोग जन्म से ही लगे रहते है -सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मल, मूत्र, थकावट, बुढ़ापा और मृत्यु।[१५] यह शरीर सोना, बैठना, खाना, पीना, इन कार्यों से बहुत दिनों तक पोषित होने पर भी एक गड़बड़ी को बर्दास्त नहीं कर सकता।[१६] इस लोक मे कोई भी ऐसा कल्याण कारी देश नहीं है जहाँ प्राणी स्वस्थ रह सके।[१७] अकाल मृत्यु के अनेक कारण बतलाए गए है।[१८] कर्मो का साधन होने से इस मानव शरीर की रक्षा करनी चाहिए, नहीं तो यह गिद्ध सियारों के भोजन के लिए है।[१९] आहार के बिना कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता।[२०] जरा, व्याधि और मृत्यु को लोक में महान भय कहे गए है।[२१] प्रबल व्याधियों के सन्दर्भ में कहा गया है कि प्रयत्नों से नष्ट होती है अथवा नहीं भी होती है।[२२] स्मृति के सन्दर्भ में विस्तार से विचार किया गया है।[२३] स्वप्न के छः कारण बतलाए गए है- वायु, पित्त, कफ, देवताओं का प्रभाव बारबार का अभ्यास कभी कभी भविष्य में होने वाली सूचना।[२४] स्वस्थ रहने के लिए भोजन में संयम की बात विभिन्न स्थलों में कही गई है। जीवनयापन करने के लिए भोजन आवश्यक है। मुक्ति चाहने वाले को भी भूख मिटाने के लिए भोजन सेवन करना चाहिए।[२५] भोजन के तीन गुण बतलाते हुए कहा गया है कि भोजन सभी जीवों का आहार है, सभी जीवों की

बल वृद्धि करता है एवं सभी लोग पसंद करते है।[२६] हमें औषधि वस्त्रादि के द्वारा भी अपनी रक्षा करनी चाहिए।[२७] ध्यान और आरोग्य के लिए भोजन की मात्रा जानो, अर्थात् सीमित भोजन ग्रहण करो।[२८] राजा प्रसेनजित बुद्ध के कहने पर एक व्यक्ति को ही नियुक्त कर देता है जो भोजन करते समय मात्रा से भोजन करने वाली गाथा दुहराता रहे।[२९] स्वस्थ रहने के लिए कहा गया है कि आलस्य मत करो तथा भोजन में संयम रखो।[३०] सभी प्राणियों के उपयोग के लिए अपने शरीर का पालन करना चाहिए।[३१] भगवान बुद्ध एवं भिक्षुसंघ विकाल (रात्रि) भोजन से विरत रहते थे, ऐसा करने से आरोग्य, उत्साह बल और सुखपूर्वक विहार करते थे।[३२] वैद्य रोगी का बलाबल विचारकर केवल औषधि प्रदाता है। संयम से तथा समय से खाना रोगी के अधिकार की बात है।[३३] जिस प्रकार भी व्याधि से निवृत्ति हो सके उसी प्रकार से विचार कर विवेकी पुरुष हितभूमि में अकार्य तथा कार्य को करते है।[३४] स्वास्थ्यवर्धक भोजन को अप्रिय होने पर भी श्रेष्ठ बतलाया गया है।[३५] अच्छी औषधि के बिना रोग ग्रस्त व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता।[३६] अस्थान में दी गई औषधि विष बन जाती है।[३७] रोगग्रस्त होने पर औषधि स्थिति को देखकर जाती है।[३८] आत्महत्या का निषेध किया गया है आत्महत्या करने वाले को विनय के अनुसार दोषी कहा है।[३९] मानव जो श्वांस लेता और छोड़ता है तथा सोया हुआ व्यक्ति जाग उठता है यह आश्चर्य बतलाया गया है।[४०] स्वास्थ्यकर एवं स्वादयुक्त औषधि दुर्लभ है।[४१] शरीर का संयम उचित है, वाणी का संयम उससे भी उचित है तथा सार्वत्रिक संयम सर्वश्रेष्ठ औषधि है।[४२] उदारता विशेषकर स्त्रियों की सर्वश्रेष्ठ औषधि है।[४३] औषधि सहित मंत्र व्याधि को दूर करता है।[४४] वैद्य के दर्शन मात्र से बिना औषधि सेवन किए रोग से मुक्ति नहीं होती।[४५] बोधिचर्यावतार में तो कहा गया है कि **'न ह्याचारं परित्यज्य सूत्रमन्त्रैः प्रलोभयेत्'** अर्थात् आचरण के बिना मात्र तंत्र से ठीक होने का प्रलोभन नहीं देना चाहिए।[४६] विपश्यना पद्धति में शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य पर बल दिया गया है। इसमें चार प्रकार के श्वांस के नियंत्रण से रक्त चाप नियंत्रित किया जा सकता है। विपश्यना पद्धति का विधिवत प्रयोग विपश्यना रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इगतपुरी में पूज्य गोयनका जी के निर्देशन में हो रहा है। पूरे देश एवं विदेशों में भी इसके शिविर लगाए जाते है। भिक्षुओं के बीमार होने पर स्वयं भगवान बुद्ध सेवा करते थे। तथा विभिन्न अनित्य आदि की भावना कर सलाह देते है। बौद्धदर्शन में समस्त दुःखों की जड तृष्णा बतलाई गई है। जिस प्रकार भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति है। भगवान बुद्ध के दर्शन एवं चरकसंहिता में भी अन्तिम लक्ष्य मोक्ष निरूपित किया है।

सन्दर्भ-विवरण

१. पुतिमुत्तभेषज्ज निस्साय पब्बज्जा,तत्थ ते यावजीवं उस्साहो ।
करणीहो, अतिरेकलाभी -सप्पि, नवनीतं, तेलं, मधुफाणितं ति।। -महावग्ग, पृ.५५

२. पालि इंगलिश डिक्शनरी
२. बौद्ध संस्कृत काव्य समीक्षा, पृ.२६०
३. मिलिन्दप्रश्न, पृ.२६०
४. वही,
५. वही पृ.२४
६. संयुत्तनिकाय
७. वही पृ.१६८
८. ललितविस्तर सूत्र ५/११३
६. सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र,
१०. संयुत्तनिकाय १/१७४
११. मिलिन्दप्रश्न पृ. १८३
१२. वही पृ.११६
१३. सौन्दरनन्द १८/६३
१४. मिलिन्दप्रश्न पृ.२१४
१५. सौन्दरनन्द ६/१४
१६. वही,१५/४६
१७. मिलिन्दप्रश्न पृ.२५२
१८. बोधिचर्यावतार ५/६६
१६. सौन्दरनन्द,१४.६
२०. वही १५/४६, वही ४/१४
२१. मिलिन्दप्रश्न
२२. वही २४६
२३. वही ३४६
२४. मिलिन्दप्रश्न
२५. शिक्षासमुच्चय १३
२६. सौन्दरनन्द ५/४६
२७. संयुत्तनिकाय
२८. मिलिन्दप्रश्न,१८०
२६. शिक्षासमुच्चय ६
३०. मज्झिमनिकाय २/२/१०
३१. बुद्धचरितम् २६/७६,
३२. मुक्तलतावदानम् २३,
३३. सौन्दरनन्द ५/४६,
३४. बुद्धचरितम् ८/७६,
३५. चतुःशतक १६३,
३६. वही १६५,
३७. मिलिन्दप्रश्न, १६६
३८. सौन्दरनन्द, १५/५७, ५८
३६. सौन्दरनन्द, ११/६
४०. मिलिन्दप्रश्न, १४४
४१. बुद्धचरितम् ४/७०
४२. जातकमाला १२५
४३. बुद्धचरितम् २५/७८
४४. बोधिचर्यावतार
४५. मिलिन्दप्रश्न
४६. कल्याण, आरोग्य विशेषांक

• • • •

मिलिन्दपञ्हपालि का दार्शनिक वैशिष्ट्य

मिलिन्दपञ्ह पालि अनुपिटक साहित्य का ग्रन्थ है। ग्रन्थ की कथावस्तु में स्पष्ट निर्दिष्ट किया गया है कि यह त्रिपिटक के आधार पर लिखा गया है-

अभिधम्मविनयोगाहा, सुत्तजाल समत्थिता।

त्रिपिटक के मूल सिद्धान्तों का अनुकरण करने वाले ग्रन्थ अनुपिटक है। त्रिपिटक में छः अञ्ञतैर्थिक आचार्यों के नाम एवं सिद्धान्त मिलते हैं तथैव ५०० वर्ष का अन्तर होने पर उन्हीं आचार्यों (तीर्थंकरों) को मिलिन्दपञ्ह में वर्णित किया गया हैं

-अत्थि, महाराज, छ सत्थारो-पूरणकस्सपो, मक्खलि गोसालो, निगण्ठो, नाटपुत्तो, सञ्जय वेलट्ठिपुत्तो, अजितो केसकम्वलो, पकुधकच्चायनो। ते सङ्घिनो गणिनो गणाचरियका जाता यसस्सिनो तित्थकरा, साधुसम्मता बहुजनस्स। गच्छ त्वं, महाराज, ते पञ्हं पुच्छस्सु, कङ्खं परिविनयस्सू" ति। (मिलिन्दपञ्हो-पुब्बयोगो).

त्रिपिटक की परम्परा को पुष्ट करने वाला सन्दर्भ है जब नागसेन भिक्षु उपाध्याय के पास जाते हैं। उपाध्याय उनको पहले अभिधम्मपिटक पढ़ाते हैं तो नागसेन सोचते हैं- **तुच्छो वत मे उपज्झायो, बालो वत में उपज्झायो। ढपेत्वा अवसेस बुद्धवचनं पठमं मं अभिधम्मे विनेसि ति।**

आयुष्मान् नागसेन महाउपासिका को धम्मदेसना देते हैं-

'आयस्मा नागसेनो तस्सा महानुपासिकाया गम्भीराय धम्मकथाय लोकुत्तराय सुञ्जाताप्पटिसंयुताय अनुमोदनं अकासि। (वहीं पृ. १२)

यहाँ पर शून्यता शब्द का प्रयोग मिलता है। यद्यपि प्रतिफल पूर्ववत ही बतलाया गया है- **'यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोध धम्मं ति** आयुपाल को त्रिपिटक एवं आगम का ज्ञाता कहा गया है **'तेपिटको बहुस्सुतो आगतागमो'** (वही पृ. १४)

नागसेन को नवांग बुद्धवचन का ज्ञाता कहा गया है ये नवांग पालित्रिपिटक परम्परा के ही हैं। (वही पृ. १७)

पुदगल के सन्दर्भ में परमार्थ शब्द का प्रयोग किया गया है कि परमार्थ के रूप में पुद्‌गल उपलब्ध नहीं होता।

परमत्थतो पनेत्थ पुग्गलो नूपलब्भति (पृ. २१)
यथा हि अंग सम्भारा, होति सद्धो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तो ति सम्मुतिं ति।। (वही पृ. २१)

धम्मसन्तति की बात कही गई है जो विज्ञानवाद के विज्ञान से मेल खाती है।

एवमेव खो, महाराज, धम्मसन्तति सन्दहति। अञ्ञो उप्पजति, निरूज्झति, अपुब्बं अचरिमं विय सन्दहति। तेन न च सो, न च अञ्ञो, पुरिमविञ्ञाणे पच्छिमविञ्ञाणं कंकहं गच्छती' ति। (पृ...)

विञ्ञाण का लक्षण बतलाया गया है– **'विजानन लक्खणं, महाराज, विञाणं' ति। यं च पुरिसो चक्खुना रूपं पस्सति तं विञ्ञाणेन विजानाति, यं च सोतेन सद्दं सुणाति तं विञ्ञाणेन विजानाति, यं च घानेन गन्धं घायति तं विञ्ञाणेन विजानाति, यं च जिव्हाय रसं सायति तं विञ्ञाणेन विजानाति, यं च कायेन फोट्ठब्बं फुसति तं विञ्ञाणेन विजानाति, यं च मनसा धम्मं विजानाति तं विञ्ञाणेन विजानाति। एवं, खो, महाराज विजाननलक्खणं विञ्ञाणं'' ति।।** (पृ. ५०)

थेरवाद की परम्परानुसार ही निरोध को निर्वाण कहा गया है। (पृ. ५५)

बुद्ध को अनुत्तर घोषित किया गया है जो प्रारम्भिक बौद्धधर्म में तो था ही लेकिन महायान में ज्यादा विकसित हुआ। (बुद्धो अनुत्तरो पृ. ५६)

भगवान् बुद्ध को सब्बञ्ञू सर्वज्ञ घोषित किया गया है

आम, महाराज, भगवा सब्बञ्ञू रूब्बदस्सावीं ति। -पृ. ६०

थेरवाद की परम्परानुसर विज्ञान, प्रज्ञा को स्वतंत्र माना है-

विजाननलक्खणं, महाराज, विञ्ञाणं। पजानन लक्खणा पञ्ञा। -पृ. ७०

अनुमान (प्रमाण) की चर्चा है कि अनुमान से ही हमें भगवान् का पता चलता है-

इमिता हेतुना इमिना नयेन इमिना अनुमानेन आतव्वं अत्थि सो भगवा' ति। - पृ. २४४

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिलिन्दपञ्ह में परवर्ती विकास के बीज विद्यमान हैं।

बुद्ध के पूर्ववर्ती विचारक कर्मवाद जैसा मानते थे वैसा बुद्ध ने नहीं माना है। मिलिन्दप्रश्न में इस कर्मवाद के बारे में मिलिन्द और भदन्त नागसेन का संवाद है। संवाद बड़ा रोचक है और वह बुद्ध के जीवन की एक घटना से संबंध रखता है। देवदत्त ने सोचा कि श्रमण गौतम को जान से मार दूँ। उसने एक शिला फेंकी, पर शिला दो बड़े पत्थर के बीच में आ जाने से बुद्ध तक न पहुँची। फिर भी पत्थरों से टक्कर खाने के कारण एक पपड़ी उछली और बुद्ध के पैर में आ गयी। बुद्ध को बड़ी चोट आयी, पैर से खून भी बह निकला। इस घटना को ध्यान में रखकर मिलिन्द ने नागसेन से पूछा- क्या किसी अकुशल कर्मों के समाप्त हो जाने पर बुद्धता मिलती है या कुछ कर्म बचे रहते हैं। नागसेन ने कहा- सभी अकुशल कर्म समाप्त हो जाने पर बुद्धता मिलती है। बुद्ध के अकुशल कर्म शेष नहीं रहते। नागसेन के ऐसा कहने पर मिलिन्द' ने कहा- बुद्ध को पैर में चोट लगने से पीड़ा हुई थी। यदि यह कहो कि सब अकुशल कर्म समाप्त हो गये थे

तो यह कहना कि बुद्ध को पैर में चोट लगने से दुःख हुआ था, यह बात मिथ्या है। और, यदि कहो कि पैर में चोट लगी थी तो यह कहना मिथ्या है कि उनके कर्मफल समाप्त हो गये थे। क्योंकि संसार में जो कुछ दुःख होता है वह कर्म के कारण है।

इस पर नागसेन ने बुद्धवचनों का तात्पर्य बताते हुए कहा कि सब दुःख पूर्व कर्म के कारण नहीं होते। प्राणियों के दुःख के आठ कारण हैं- वात, पित्त, कफ, सन्निपात, ऋतु परिणाम, विषमाहार, उपक्रम और कर्मविपाक। यदि पित्त आदि द्वारा उत्पन्न पीड़ा भी कर्मफल के कारण होती तो दुनिया में न तो इलाज हो सकता और न उनके अलग-अलग निदान होता। वात का प्रकोप दस कारणों से होता है- सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, अतिभोजन, देर तक खड़े रहना, अधिक श्रम और दौड़ना। कर्मफल से भी वात का प्रकोप होता है। पर इनमें जो नौ कारणों से वात का प्रकोप होता है, वह इसी भव में होता है, उसका पूर्वभव से संबंध नहीं है। इसी प्रकार प्रत्येक कारण की व्याख्या करके नागसेन ने कहा- **'न सव्वा वेदना कम्मविपाकजा अप्पं कम्मविपाकजं, बहुतरं अवसेसं।'**[२] अर्थात् सब वेदनाएँ कर्मविपाक के कारण नहीं होती है। कर्मविपाक से थोड़ा ही (दुःख) होता है, बहुत-सा तो दूसरे कारणों से ही होता है। इसीलिए भगवान ने कहा-

''ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो यं किं चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतुम्हि। सं सामं तं अतिधावन्ति तस्मा तेसं। समणब्राह्मणानां मिच्छति वदामि।

(ये ते श्रमणब्राह्मणा एवंवादिनो यत् किंचित् अयं पुरुषपुद्गलः। प्रतिसंवेत्ति सुखं वा दुःखं वा अदुःखमसंखु वा सर्वं तत् पूर्वकृतहेतुभिः (ते) यत् सम्यक् तद् अतिधावन्ति तस्मात् तेषां श्रमणब्राह्मणानां (मतम्) मिथ्येति वदामि।)

अर्थात् जो साधु-ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि पुरुष का सब दुःख-सुख उसके पूर्व कर्मों के कारण है, वे जो बात ठीक है, उसका अतिक्रमण करते है। उन साधु-ब्राह्मणों का वह कहना मिथ्या है।

कर्मफलवाद की यह नयी व्याख्या थी। इस व्याख्या के सहारे, कर्मवाद के आधार पर, कोई किसी को नहीं दुत्कार सकता कि वह पूर्वजन्म का पापी है। वर्ण-व्यवस्था आदि संकीर्णता, साम्प्रदायिकता भेद-भाव तथा देश-देशान्तर में प्रचलित रंगभेद आदि सब प्रकार की सामाजिक विषमताओं से दूर, कुल, जाति, राष्ट्र आदि के अभिमान से निर्लिप्त जो भी वचन विश्व-मानव की एकता और मैत्री का प्रतिपादक हैं, वह बुद्धवचन है।

संदर्भ-विवरण

१. मिलिन्दपञ्ह १३५ तथा १३६, संयुत्तनिकाय, मिलिन्दपञ्ह पृष्ठ १३७ से उद्धृत।

२. चतुःशतक

• • • •

पालि एवं प्राकृत : एक तुलनात्मक अध्ययन

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से पालि एवं प्राकृत दोनों मध्यकालीन आर्यभाषा में आती हैं। दोनों जनभाषाओं से विकसित हैं तथा वर्तमान में इनका जो स्वरूप प्राप्त हो रहा है वह उनका साहित्यिक स्वरूप है। प्राकृत भारत के विशाल क्षेत्र को समाहित करती है जैसे महाराष्ट्री, मागधी, शौरसेनी (मथुरा प्रदेश), पैंशाची (गुजरात प्रदेश) आदि। बुद्धघोष ने 'पालि' का प्रयोग बुद्धवचनों (त्रिपिटक) के लिए किया था। बाद में त्रिपिटक की भाषा एवं भावना को अनुकरण करने वाले अट्ठकथा अनुपिटक, वंस साहित्य, कथा साहित्य को भी 'पालि' कहा जाने लगा। पालि भाषा को पहले 'मागधि' का प्रयोग मिलता है, लेकिन उसकी क्षेत्रीय सीमा जब समाप्त हो गई तो उसे 'पालि' नाम दिया गया। मागधि भाषा प्राकृत की भी एक भाषा है, संभवतः इसलिए भी अलग पहचान बनाने के कारण प्रयुक्त किया जा सकता है। भगवान बुद्ध ने सकायनिरुत्तिया=अपनी-अपनी भाषा में उपदेश देने को कहा था। भिक्षुओं द्वारा बुद्ध वचनों को 'छान्दस' में कर लेने पर 'दुक्कट' (दुष्कृत) का दोषी भी बतलाया था। बुद्धवचनों का संकलन जिसे हम त्रिपिटक के रूप में जानते हैं तथा उसका उपकारी साहित्य पहले मागधी नाम से जाना जाता था। बौद्ध परम्परा में इसे मूलभाषा कहा है **'सा मागधी मूलभासा नराययादि कप्पिका'**। 'मोग्गल्लान' व्याकरण में भी 'मागधी' ही कहा गया है।

सिद्धमिद्धगुणं साधु नमस्सित्वा तथागतं।
सधम्मसंघं भासिस्सं मागधं सद्दलक्खणं।। – मंगलाचरण

कच्चायन व्याकरण में भी इसे मागधी कहा गया है-

सा मागधी मूलभासा...सम्बुद्धा चापि भासरे।
– एत्थ सकायनिरुत्ति नाम सम्मासम्बुद्धेन वुत्तप्पकारो मागधको वोहारो।

– आचार्य बुद्धघोष

पालि एवं प्राकृत दोनों जनभाषायें थीं। आज हमें जो साहित्य प्राप्त हो रहा है वह 'विशिष्ट' है। प्राकृत भाषा में सभी भाषाएं विलीन हो जाती हैं तथा इसी प्राकृत भाषा से सभी भाषाएं निकलती हैं, जिस प्रकार समस्त जल समुद्र में विलीन हो जाता है और समुद्र से ही निकलता है। वर्तमान में प्राप्त पालि एवं प्राकृत संस्कृत की अपेक्षा वैदिक संस्कृत के अधिक नजदीक हैं। यह अलग बात है कि पालि एवं प्राकृत के जो व्याकरण बने वे संस्कृत-व्याकरण से उपकृत हैं। आज प्राकृत के विभिन्न रूप मिलते हैं। पालि को पहले 'मागधी' कहा जाता था। जबकि मागधी प्राकृत भाषा की एक भाषा है। बुद्धवचनों के संग्रह की अपनी ऐतिहासिक परम्परा है। जिसे भाणक परम्परा के रूप में बुद्ध के समय

ही इसका प्रचलन हो गया था। बुद्धवचनों को पहले नौ अंगों में बांटा गया- सुत्त, गेय्य, वैयाकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुतधर्म और वेदल्ल। प्रथमसंगीति में प्रथम बार विनय एवं धर्म का संगायन बुद्ध के परिनिर्वाण के तुरन्त बाद किया गया। द्वितीय संगीति परिनिर्वाण के १०० वर्ष बाद हुई, जिसमें संघ भेद हो गया। एक परम्परा थेरवादी तथा दूसरी महासांघिक कहलायी। थेरवादी परम्परा का साहित्य पालि में तथा महासांघिक परम्परा का साहित्य संस्कृत में प्राप्त होता है जिसे **'बौद्ध मिश्र संस्कृत'** कहा जाता है। वस्तुतः यह 'मिश्र संस्कृत' भी प्राकृत के समीप है। बुद्ध वचनों का 'पालि' नामकरण भी बाद में हुआ। अट्ठकथाओं में यह नाम प्राप्त होता है। अट्ठकथाकार 'पालि' शब्द का प्रयोग पहले बुद्ध वचनों के लिए करतें हैं-

इमानि ताव पालियं, अट्ठकथायं पन'
नेव पालियं न अट्ठकथायं आगतं।'

प्राकृत में मागधी (पालि) की गणना की जाती है। भरतमुनि ने सात प्राकृत भाषाओं का उल्लेख किया है। उनमें मागधि, आवन्ति, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाहीका और दक्षिणात्या।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से तुलना-

भाषा विज्ञान की दृष्टि से पालि और प्राकृत में अनेक समानताएं हैं।

- ऋ, ॠ, ऌ, ऐ और औ का प्रयोग पालि और प्राकृत में नहीं पाया जाता। (बाद में पालि की एक परम्परा में ऐ और औ का समावेश हो गया है।)
- ऋ ध्वनि अ, इ, उ स्वरों में से किसी एक में परिवर्तित हो जाती है।
- विसर्ग का प्रयोग पालि और प्राकृत दोनों में ही नहीं मिलता।
- श, ष की जगह स हो जाता है (मागधी प्राकृत को छोड़कर)

मूर्द्धन्य ध्वनि 'ल' पालि और प्राकृत में पाई जाती है।

प्राकृत तत्त्व जो पालि में अनियमित पाए जाते हैं-

- शब्द के अन्तः स्थित अघोष स्पर्श की जगह य् या व् का आगमन।
- शब्द के अन्तः स्थित महाप्राण की जगह ह् हो जाना।
- शब्द के अन्तःस्थित अघोष स्पर्शों का घोष हो जाना।
- महाप्राणत्व (हकार) का आकस्मिक आगमन या लोप ।
- आकस्मिक वर्ण व्यत्यय।

भरतसिंह उपाध्याय का मत है कि पालि में इसका सूत्रपात है और प्राकृत में पूर्ण विकास। पालि भाषा को पहले मागधि कहा जाता था। क्योंकि भगवान बुद्ध के विचरण का प्रमुख केन्द्र मगध था। लेकिन 'मागधि' प्राकृत एवं मागधि=पालि को एक नहीं माना जाता।

आज जो मागधि प्राकृत प्राप्त होती है उसे पालि के आचार्य बाद की प्राकृत मानते हैं अर्थात् प्राकृत व्याकरणों, अभिलेखों और नाटक ग्रन्थों की मागधी का विकास। मागधी भाषा की तीन प्रधान विशेषताएं हैं-

- र और स् का क्रमशः ल् और श् में परिवर्तन।
- पुल्लिंग और नपुंसक लिंग अकारान्त शब्दों का प्रथमा विभक्ति एकवचन का रूप एकारान्त होना।

जबकि पालि में र् रहता है ल में परिवर्तन अनियमित है।

- जैसे तरुण का तरुण भी है और तलुण भी।
- अशोक के पश्चिम लेखों में राजा, पुरा, आरभित्वा जैसे प्रयोग मिलते हैं, किन्तु पूर्व के लेखों में क्रमशः लाजा, पुलुवं आलभितु रूप हो जाते हैं।

स का श में परिवर्तन तो पालि में बिल्कुल नहीं होता।

लूडर्स ने प्राचीन अर्द्धमागधी को पालि का आधार माना है। इनका मत है कि मौलिक रूप में पालि त्रिपिटक प्राचीन अर्द्धमागधी भाषा में था, बाद में उसका अनुवाद पालि में हुआ जो पश्चिमी बोली पर आश्रित थी। इनका मानना है कि त्रिपिटक में जो मागधी दृष्टिगोचर होते हैं, वे अर्धमागधी के अवशिष्ट अंश हैं।

फ्रेंन्च विद्वान् सिल्वालेवी ने प्रमाणित करने का प्रयत्न किया था कि पालि त्रिपिटक मौलिक बुद्धवचन न होकर किसी पूर्ववर्ती मागधी बोली का अनुवादित रूप है जिसमें ध्वनि परिवर्तन पाली भाषा की अपेक्षा अधिक विकसित अवस्था में था। पाली के एककोदी एवं संघादिसेस जैसे शब्दों के उनसे संस्कृत प्रतिरूप 'एकोटि' संघातिसेस जैसे शब्दों के साथ तुलना की है जिसमें शब्द के मध्य स्थित संस्कृत अघोष (क् च् त् प् आदि) स्पर्शों के स्थान पर घोष (ग् ज्, द्, ब आदि) स्पर्श होने का नियम था। लेवी ने पालि त्रिपिटक और अशोक के शिलालेखों में इस तरह की खोज की है जैसे– भ्राबू अभिलेख में 'राहुलोवाद' की जगह 'लाघुलोवाद' है।

अधिकृत्य की जगह 'अधिगिच्य' है।

'क' के स्थान पर 'ग' पालि में अल्प ही होता था,

'अधिगिच्य' में 'च्य' भी पालि की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है।

लेवी ने पालि को ऐसी भाषा से प्रभावित माना है जिसमें अघोष स्पर्शों (क् त् प्) को घोष स्पर्शों (ग् द् ब्) में परिवर्तन हो जाता है। जैसे–

माकन्दिक	- मागन्दिय
कयंगल	- कजंगल
अचिरवती	- अजिरवती
पाराचिक	- पाराजिक

ऋषिवदन	- इसिपतन

लेवी का तो कहना था कि पालि त्रिपिटक अपने मौलिक स्वरूप में ऐसी भाषा थी जिसमें शब्द के मध्य स्थित अघोष स्पर्शों के घोष स्पर्शों में परिवर्तित होने का नियम था।

- गायगर ने लेवी के इस मत को प्रमाणित इसलिए नहीं माना है कि उक्त के विपरीत अर्थात् संस्कृत घोष का पालि में अघोष होता है।

अगरु	- अकलु
परिघ	- पलिघ
कुसीद	- कुसीत
मृदंग	- मुतिंग
शावक	- चापक
प्रावरण	- पापुरण

- आचार्य बुद्धघोष ने 'सकायनिरुत्तिया' पद से 'मागधी' का अर्थ लिया है -

'एत्थ सकाय निरुत्ति नाम सम्मासम्बुद्धेन वुत्तप्पकारो मागधको वोहारो'

- पालि को मागधी न मानने से उसका तात्पर्य था कि पालि अशोक के अभिलेखों की भाषा नहीं है। - डॉ. ई जे. थामस (पृ. २८)

अर्धमागधी एवं पालि- समानताएं

-संस्कृत 'अस' और 'अर' के स्थान में 'ए' हो जाता है।

पालि में पुरे (पुरः), सुवे (श्वः), भिक्खवे (भिक्षवः)

पुरिसकारे (पुरुषकारः), दुक्खे (दुःखं)

- संस्कृत तद के स्थान पर 'से' हो जाना- जैसे- सेय्यथा (तद्यथा)

-यद् के स्थान पर 'ये' हो जाना

- र् का ल् (कहीं-कहीं)

-स्वरों और अनुनासिक स्वरों में 'एव'-येव अर्धमागधी में पालि में भी कहीं-कहीं।

- वर्ण परिवर्तन

संस्कृत- साक्षं	सक्खि (पालि)	सक्खं (अर्धमागधी)
त्सरु	थरु	थरु
वेणु	वेलु	वेलु
लांगल	नंगल	नंगल

लूडर्स इन विशेषताओं के आधार पर अर्धमागधी को पालि का आधार मानते हैं।

अर्द्धमागधी-पाठ- **सुयं मे आवुसं ! तेण भगवया एवं अक्खायं। इहं एगेसिं नो सन्ना भवति। एवं एगिसं नो नातं भवति। तं जहा-के अहं आसी ? के व इओ चुए पेच्चा भविस्सामि ?**

- चत्तारि मेहा पन्नत्ता। तं जहा-गज्जित्ता णाममेगे णो वासित्ता। वासित्ता णाममेमे णो गज्जित्ताँ एगे गज्जित्तावि वासित्तावि। एगे णो गज्जित्ता णो वासित्ता।

पालि- **सुतं मे आवुओ ! तेन भगवता एवं अक्खातं। इध एकेसं नो सो भवति। एवं एकेसं नोञातं भवति। तं यथा- को अहं आसिं ? को वा इतो चुतो पेच्च भविस्सामि?**

- चत्तारो मेघा पञ्ञत्ता। तं यथा- गज्जितो नामेको न वस्सितो! वस्सितो नामेको मो गज्जितो। एको गज्जितो च वस्सितो च। एको नो गज्जितो नो वस्सितो।

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि जैन-ग्रन्थों की भाषा मागधी होते हुए भी बुद्धकालीन मागधी के समक्ष अर्द्धमागधी ही ठहरती हैं।

शौरसेनी प्राकृत एवं पालि-

शौरसेनी प्राकृत जो व्रजमंडल या मध्यमण्डल की भाषा थी; पालि के नजदीक है। उत्तरकालीन पालि में विशेष सादृश्य है। जो विद्वान पालि का आधार पूर्वी बोली नहीं मानते वे पश्चिम बोली को पालि का आधार मानते हैं। डॉ. सुंनीतिकुमार चटर्जी मानते हैं कि पालि के ध्वनि समूह और रूपविधान की सर्वाधिक समानताएं शौरसेनी के साथ हैं। शौरसेनी में प्रथमा एकवचन का रूप ओंकारान्त, पालि में भी है जैसे बुद्धो, नरो आदि। शकार एवं षकार के स्थान पर सकार जैसे पुरिसो, सद्दं।

- मध्य में अघोष स्पर्शों का घोष स्पर्शों में परिवर्तन जैसे माकन्दिक-मागन्दिय, आदि।

- पूर्वकालिक अव्यय में शौरसेनी में दूण प्रत्यय लगता है यथा, पठिदूण। पालि में कातून; निक्खमित्तून आदि तूण प्रत्यय हैं। (पैशाची में भी यह समानता है)

इसी तरह पेक्ख, गम्मिस्सति, सक्कति रूपों में समानता है।

पैशाची प्राकृत एवं पालि-

- घोष स्पर्शों (ग्, द्, ब्) के स्थान पर अघोष स्पर्श (क्, त्, प्)

- शब्द के मध्य में व्यंजन का सुरक्षित रहना-जैसे भारिय, सिलान, कसट शब्दों में संयुक्त वर्णों का विश्लेषण।

- ज्ञ, ण्य, न्य, में परिवर्तन होना।

- य् का ज, में परिवर्तन न होकर सुरक्षित रहना।

- अकारान्त शब्दों के प्रथमा एकवचन में ओ हो जाना।

- धातु रूपों में समानताएं।

– र का परिवर्तन न होकर सुरक्षित रहना।

य का ज में परिवर्तन न होकर 'ज' बना रहना।

डॉ. नलिनाक्ष दत्त ने पालि के पैशाची आधार को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।[६] भाषा एवं भाव की दृष्टि से प्राकृत एवं पालि में समान गाथाएं भी मिलती हैं। जैसे-

प्राकृत- **अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खु दुद्धमो।**
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य।। समणसुत्तं १२७

पालि – **अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया**
अन्तना व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं।। धम्मपद १६०

– अत्तानं चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासति।
सुदन्तो वत दमेथ अत्ता हि किर दुद्धमो।। वही, १५६

प्राकृत – **मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेण तु भुंजए।**
न सो सुक्खाय धम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं।। समणसुत्तं २७३

पालि – **मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेथ भोजनं।**
न सो संखतधम्मानं कलं अग्घति सोलसिं।। – धम्मपद-७०

पालि – **निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च।**
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणे।। धम्मपद ४०५

प्राकृत- – **निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो।**
समो य सब्बभूएसु, तसेसु थवरेसु अ।। समणसुत्तं

बौद्ध मिश्र संस्कृत एवं प्राकृत –

बौद्ध मिश्र संस्कृत भाषा, संस्कृत के प्रभाव को कायम रखकर प्राकृत भाषाओं के मिश्रण से बनी है। कुछ लोग इसे गाथा संस्कृत कहते हैं जो संस्कृत एवं पालि की मध्यवर्ती होने के कारण इन दोनों के लक्षणों से आक्रान्त है। वस्तुतः बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन मात्र एडर्सन ने किया है। भारतीय विद्वानों ने इसकी भाषा पर तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया है। बौद्ध मिश्र संस्कृत में प्राकृत भाषा का प्रभाव सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। पिशेल का कहना है कि बौद्ध मिश्र संस्कृत ग्रन्थों की भाषा में अनेक शब्द संस्कृत के हैं अनेक प्राकृत के, प्राकृत के शब्दों में संस्कृत की विभक्ति लगाई गई है।

आचार्य शान्तिदेव संस्कृत में जो बात कहते हैं वह जैनाचार्य भी कहते हैं। भाषा की दृष्टि से देखिए-

यदा मम परेषां च भयं दुःखं च न प्रियम्।
तदात्मनः को विशेषो यत्तं रक्षामि नेतरम्।। – शिक्षासमुच्चय
जह ते न पिअं दुक्खं जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं।

सव्वायरमुवउत्तो, अत्तोवम्मेण कुणसु दयं।। - समणसुत्तं १५०

पालि एवं प्राकृत में गाथा का प्रयोग

'गाथा' शब्द का प्रयोग पालि में श्लोकबद्ध रचना (पद्य) के लिए किया गया हैं तथा प्राकृत में भी। पं. हरिराम आचार्य ने अपने लेख प्राकृत मुक्तक काव्य परम्परा का लोकप्रिय छंद गाहा में इस विषय पर विस्तार से विचार किया है। वैदिक परम्परा में गाथा का प्रयोग हुआ है। नाट्यशास्त्र की रचना के साथ प्राकृत गाथा अनेक रूपों में गान की विधा थी। यह एक मात्रिक छंद के सांचे में सीमित नहीं थी। पिंगलाचार्य ने इसे **'अत्रानुक्तं गाथा'** (८/१) तथा हलायुध ने **'अत्र शस्त्रे नामोद्धेशन यन्नोक्तं छन्दः, प्रयोगे च दृश्यते, तद्गाथेति मन्तव्यम्'** रत्नशेखर सूरि ने छन्दकोश में गाथा का छन्दरूप में लक्षण लिखा-

सामन्नेणं बारस अट्ठारस बार पनरमत्ताओ।
कमसो पाय-चउक्के गाहाए हुंति णियमेणं।।

संस्कृत के मात्रिक छन्द आर्या से मिलता है।

यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयोऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽर्या।।

प्राकृत गाथा का अपना वैशिष्ट्य है जो उसी के शब्दों में इस प्रकार है-

गाहारुहम्मि गामे वसामि णअरट्ठिइणं आणामि।
णाअरि आणं पइणो हरेमि जा होमि सा होमि।।

अर्थात् मैं गाँवों में जन्मी, रहती हूँ गाँवों में,
हाल नगर का क्या है, यह मैं नहीं जानती।।

मैं जो हूँ, सो हूँ, पर नागरियों के पतियों का मन हर लेती हूँ, बस मैं तो यही मानती।

वज्जालग्गं में स्वयं गाहा के सन्दर्भ में कहा गया है कि अरसिक गंवार लोगों से तुम दूर ही रहना जो तुम्हें भली-भांति गा नहीं सकते। नहीं तो वे तुम्हें अपने दांतों से चबाचबा कर पीड़ा पहुँचाते हुए उसी तरह तोड़कर लघु बना देगें जैसे गवंई लोग ईख के डंडे को कठोर दांतों से काट-काट कर छोटा कर देते हैं।

आचार्य हरिराम ने माना है कि गाथा-गायन एक विशिष्ट कला है। जो छन्द की मात्राओं के साथ उनकी यति-गति एवं स्वर-लय की पद्धति को नहीं जानता, वह प्रस्तुत करेगा तो गाहा श्रुति रमणीय नहीं होगी।

छंदं अयाण माणेहि जा किया सा न होइ रमणिज्जा। -वज्जालग्ग ३/११०

इसी प्रकार वर्णित है कि-

गाहा रुवई वराई सिक्खिज्जती गवारलोएहिं।

कीरइ लुंचपलुंचा जह गाई मंददीहेहिं।। -वज्जालग्ग ३/७

अर्थात् गंवार लोगों द्वारा ऊल-जलूल ढंग से बो जाने से गाहा बेचारी उसी तरह 'लुंच पलुंच' होकर रुदन करने लगती है जिस तरह अनाड़ी ग्वाले के हाथों से बेढंगे तरीके से थन कुचले मसले जाने पर दुधारू गाय कष्ट से रँभाती है।

श्री हरिराम आचार्य जी का मानना है कि काव्यक्षेत्र में गाथा ने जब गीति छंदों का रूप ग्रहण किया और प्राकृत भाषा में गाथा मुक्तकों की कोटिश उन्मुक्त रचनाओं के संग्रह हाल रचित 'गाहासतसई' का अनुकरण संस्कृत की आर्याओं ने किया तो वह परम्परा व्रज, अवधी, मैथिली के काव्यों में दोहा, सोरठा, वरवै आदि छंदों का रूप लेकर आगे बढ़ी, जिससे 'सतसई साहित्य' समृद्ध होता गया।

पालि में बुद्धवचनों का प्राचीन विभाजन नवांग है। सुत्त, गेय्य वैयाकरण, गाथा, उदान, इतिवुतक, जातक, अद्भुत धर्म और वेदल्य। यहाँ पर गाथा की प्रतिपादन अट्ठकथाकार इस प्रकार करते हैं- धम्मपद, थेरगाथा, थेरीगाथा और सुत्तनिपात में गाथारहित जो शुद्ध गाथाएं है, उन्हें गाथा जानना चाहिए।

सुत्तनिपात के छन्दों में प्रायः गणों का विचार नहीं है। वे वैदिक ग्रन्थों की भाँति आठ अक्षरों वाले अनुष्टुप्, ग्यारह अक्षरों वाले त्रिष्टुभ् तथा बारह अक्षरों वाले जगती छन्दों में अधिक संख्या में हैं, किन्तु साथ ही इसमें अनुष्टुप् छन्द की कितनी गाथाएँ छः आवली हैं। त्रिष्टुप् छन्द की कितनी गाथाएँ पाँच या छः पादवाली हैं। किन्हीं-किन्हीं त्रिष्टुप छन्द की गाथाओं में तो सात-सात, आठ-आठ पाठ तक हैं। डा० बापट ने इन्हीं कारणों को दिखला कर लिखा है कि सुत्तनिपात अत्यन्त प्राचीन है, क्योंकि वेद को छोड़ पीछे कहीं भी छन्द की यह स्वतंत्रता देखने को नहीं मिलती।

श्री फाँसबाल ने सुत्तनिपात की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए बतलाया है कि इसकी भाषा वैदिक (छान्दस्) भाषा से मिलती-जुलती है। उन्होंने उदाहरण में समूहतासे, पच्चयासे, चरामसे, आतुमान, सुवाभिं, सुवाना, अवीवदाता, तद, जनेत्व, कुप्पटिच्चसन्ति आदि शब्दों को लिखा है। आज भी गाथा प्राचीन आख्यान के लिए प्रसिद्ध हैं जैसे अमुक व्यक्ति की गौरव गाथा आदि।

प्राकृतों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में पिशेल का कहना है कि प्राकृत की उत्पत्ति वैदिक अथवा लौकिक संस्कृत से नहीं, किन्तु वैदिक संस्कृत की उत्पत्ति जिस प्रथम स्तर की प्रादेशिक प्राकृत भाषा से पूर्व में कही गई है, उसी से हुई है। यही बात पालि के सन्दर्भ में कही जा सकती है। जबकि पालि भाषा के स्थान पर जब विचार किया जाता है तो उसे मगध, कलिंग, उज्जैन की भाषा पैशाची या पल्लि भाग की भाषा के रूप में विचार किया जाता है। समय की दृष्टि से भी भगवान बुद्ध के समय की **'सकायनिरुत्तिया'** कहा

जाता है। पालि, प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं का सौभाग्य यह रहा है कि एक-एक सम्प्रदाय विशेष के ग्रन्थों के कारण इन्हें धार्मिक संरक्षण प्राप्त हुआ वहीं यह दुर्भाग्य भी कहा जाएगा कि धार्मिक छाप लग जाने से इनको जो सम्मान एवं व्यापक स्वीकृति मिलनी चाहिए थी, नहीं मिली। यद्यपि प्राकृत भाषा का प्रयोग संस्कृत नाटकों में मिलने से एक अद्भुत एकता की मिशाल भी मिलती है। प्रो. रथ साहब तो संस्कृत की इसी उदारता के कारण संस्कृत को सभी भाषाओं की जननी भी मानते हैं। पालि एवं प्राकृत दोनों भाषाओं के व्याकरण संस्कृत के व्याकरणों से प्रभावित माने जाते हैं प्राकृत के व्याकरण तो संस्कृत भाषा में ही लिखे भी गए जबकि पालि भाषा के व्याकरण पालिभाषा में हैं। आज आवश्यक है कि यदि हम भारत के प्राचीन गौरव को जानना चाहते हैं तो इनके साहित्य को सुरक्षित रखें।

संदर्भ-विवरण

१. पालि मोग्गल्लान व्याकरण।
२. कच्चायन व्याकरण।
३. "बौद्धमिश्रसंस्कृतस्य वैशिष्ट्यम्" लेख-अत्त दीपो भव, डॉ. विजयकुमार जैन
४. पालि एवं प्राकृत विद्या-एक तुलनात्मक अध्ययन -डॉ. विजय कुमार जैन का लेख, प्राकृत विद्या वर्ष ११, अंक-३, अक्टू.-दिसम्बर, १९९९
५. पिशेल का प्राकृत व्याकरण, पाइअ सद्द महण्णवो की भूमिका।
६. पालि साहित्य का इतिहास-भरत सिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
७. लोकायतं कुतर्कं च प्राकृतं म्लेच्छभाषितम्।
न श्रोतव्यं द्विजेनैतदधो नयति तद् द्विजम्।। गरुड़पुराण, पूर्वखण्ड ७८
८ चुल्लवग्गपालि।
९. अर्ली हिस्टी आंव स्प्रेड आफ बुद्धिज्म एण्ड द बुद्धिस्ट स्कूल', लन्दन, १९२५ पृ. २५६)
१०. प्राकृत मुक्तक काव्य परम्परा का लोकप्रिय छंद 'गाहा' लेख श्री हरिराम आचार्य का।
११. पालि साहित्य का इतिहास पृ. ७६-७८

• • • •

बौद्धधर्म के विभिन्न सम्प्रदाय

वैदिक परम्परा की भांति बौद्ध धर्म की विभिन्न शाखाए उपशाखाएं है। अशोक के समय जब तीसरी संगीति हुई थी एवं बौद्धधर्म का विदेशों में प्रचार हुआ उस समय तक बौद्धों के १८ सम्प्रदाय हो चुके थे। यह निर्णय करने के लिए कि कौन इनमें सच्चा धर्म है ? अशोक ने तीसरी संगीति बुलाई थी। इसके पहले प्रथम संगीति में ही संघ भेद हो गया था। जब उदायि नाम का एक भिक्षु यह कहते सुना गया कि भगवान निर्वाण को प्राप्त हो गए, अब वह जो चाहेगा करेगा जो चाहेगा नहीं करेंगा, भगवान कहते रहते थे कि यह करना विहित है यह करना विहित नहीं है। वरिष्ठ भिक्षुओं को चिन्ता हुई। अतः एक बैठक बुलाने का निश्चय किया गया जिसे प्रथम संगीति के नाम से जानते है। यह संगीति राजगृह में बुलाई गई थी प्रमुख रूप से इसमें त्रिपिटक का संग्रह किया गया था।

पुनश्च भगवान के परिनिर्वाण के १०० वर्ष बाद १० वस्तुओं के सेवन को लेकर विवाद हुआ। जो वृद्ध भिक्षु थे, वे चाहते थे कि इन वस्तुओं का सेवन न किया जाय तथा अधिक संख्या ऐसे लोगों की थी जो इन वस्तुओं के सेवन के पक्ष में थे। क्यों कि भगवान बुद्ध ने कहा था कि भिक्षु छोटे-छोटे नियमों को छोड सकते है। मतभेद होने पर वैशाली में बुलाई गई दूसरी संगीति में संघ भेद हुआ। दोनों पक्षों ने अपनी अलग अलग संगीति बुलाई। एकपक्ष जिसमें वृद्ध भिक्षु थे, वे स्थविर वादी तथा दूसरे अधिक संख्या वाले महासांघिक कहलाए। थेरवादी भिक्षुओं ने पालि में एवं महासांघिक भिक्षुओं ने संस्कृत में अपना त्रिपिटक संगृहीत किया। इसके बाद संघभेद की जब शुरुआत हो गई तो होती ही गई और अशोक के समय तक अर्थात् बुद्ध के परिनिर्वाण के २३५ वर्ष बाद एवं द्वितीय संगीति के १३५ वर्ष बाद तीसरी संगीति इसलिए बुलाई गई जिससे यह पता चल सके कि वास्तविक बौद्धधर्म क्या है। क्योंकि उस समय तक १८ सम्प्रदाय हो चुके थे ।

दस वस्तुएं जिनके कारण द्वितीय संगीति में संघभेद हुआ

१ सिंगिलोणकप्प श्रंगिलवण- कल्प - सींग में नमक भर कर ले जाना

२ द्ववंगलकप्प (द्वयंगुल-कल्प) दो अंगुल छाया बिताकर दोपहर के बाद भी भोजन कर लेना

३ गामन्तकप्प (ग्रामन्तरकल्प) किसी दूसरे गॉव में जा कर उसी दिन पुनः भोजन कर लेना

४ आवासकप्प (आवास कल्प)एक ही सीमा के अन्दर बहुत से आवासों में उपोसथ करना।

५ अनुमतिकप्प (अनुमतिकल्प) कर्म करने के उपरान्त स्वीकृति लेना।

६ अचिण्णकप्प (अचीर्णकल्प) अपने आचार्य या उपाध्याय के किसी भी आचरण को अपने लिए उदाहरण बना लेना।

७ अमथितकप्प (अकथित कल्प) भोजन के बाद ऐसे दूध को पीना जो अभी दही नहीं बना है, परन्तु जो दूध भी नहीं रहा है।

८ जलोगो पान - ताडी पीना।

९ अदसक निसिदिन (अदसक निषीदन) बिना मर्जी से आसन प्रयोग करना।

१०. जातरूप-रजत - चॉदी सोना ग्रहण करना

कथावत्थु की अट्ठकथा में अष्टादश निकायों का विवरण-

बुद्धसंघ

१ महासांघिक	२ स्थविरवाद	३ गोकुलकी
४ एक व्यावहारिकी गोकुलकी	५ प्रज्ञप्तिवादी	६ बाहुलिक -चैत्यवादी
७ महीशासक	८ वृज्जिपुत्रक	९ सर्वास्तिवादी
१० धर्मगुप्तिक	११ काश्यपीय	१२ साक्रान्तिक
१३ सूत्रवादी	१४ धर्मोत्तरीय	१५ भद्रयानिक
१६ षाण्णागरिक	१७ सम्मितिय	१८ सौत्रांतिक

ईसा की पहली शताब्दी में राजा कनिष्क की उपस्थिति में एक संगीति हुई थी जिसे दो वर्गों में विभक्त किया- हीनयान और महायान। डा० ब्रेडेल के अनुसार पांचवी शताब्दी में महायान का उग्र रहस्यवाद आत्मा सम्बन्धी सर्वास्तिवादी विचारधारा तथा योग अथवा व्यक्ति का विश्वात्मा के साथ संयोग का स्थान जो पतंजलि द्वारा हिन्दु धर्म में प्रविष्ट हुआ था, बौद्ध धर्म में समाविष्ट होने का कारण बना। डा० कर्न के अनुसार आठवीं शताब्दी में पालवंश के धर्मपाल प्रथम ने बौद्ध धर्म के उत्कर्ष और वैभव को पुनः लाने के लिए परवर्ती राजमुकुट धारियों द्वारा व्यवस्थित तथा उत्साहपूर्ण यत्न किए। इसमें धर्मपाल द्वितीय-महीपाल प्रथम नयपाल १०१५ई १०६० ईसा दीपंकर श्री ज्ञान १०३५ ई. से १०६८ आदि जो विक्रम शिला मठ के कर्णधार थे, उल्लेखनीय है।

विक्रम पूर्व षष्ठ शतक से विक्रम पूर्व तृतीय शतक तक सर्वास्तिवाद की प्रधानता थी। अशोक ने थेरवाद को अपना कर बौद्ध धर्म को विश्वव्यापी बनाया। विक्रम के द्वितीय शतक में कुषाण नरेश कनिष्क के समय वैभाषिक मत या सर्वास्तिवाद देशव्यापी हुआ। पंचम शतक में चन्द्रगुप्त के समय भी सर्वास्तिवादियों का जोर था। वसुबन्धु तथा स्थूलभद्र जैसे दार्शनिक थे। विक्रम के तृतीय शतक में कुमारलात ने सौत्रांतिक मत को और नागार्जुन ने माध्यमिक मत शून्यवाद को प्रतिष्ठित किया। विक्रम के पंचम शतक में विज्ञानवाद का उदय हुआ। इस सिद्धान्त की उद्भावना आचार्य मैत्रेयनाथ ने की। इस

समय के प्रमुख आचार्य असंग वसुबंधु के शिष्य आचार्य दिङ्नाग, धर्मकीर्ति आदि थे। धर्मपाल शून्यवाद और विज्ञानवाद दोनों के प्रचारक थे तथा नालंदा विहार के अध्यक्ष थे। विक्रम के अष्टम शतक मे नालंदा बौद्ध केन्द्र था। ८०० से १२०० ई. का समय बौद्ध धर्म तंत्र-मंत्र का युग था। इन चार सौ वर्षों में महायान का तांत्रिक वज्रयानके रूप में विकास हुआ तथा वज्रयान के प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों का आर्विभाव हुआ। तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रवेश भी इसी काल में हुआ। बलदेव उपाध्याय ने इसका समय निर्धारण इस प्रकार किया है।-

हीनयान- विक्रमपूर्ण ५००- २०० वि०सं०

महायान- विक्रम संवत् २००- ८०० वि० सं०

वज्रयान- विक्रम संवत् ८००- १२०० वि० सं०

महायान का एक अन्य विभाजन इस प्रकार है- **बीजकाल**- तथागत की सम्बोधित से वैतुल्यकों तक। **सूत्रकाल**- ईसा पूर्व पहली शताब्दी से तीसरी शताब्दी तक। शास्त्रकाल नागार्जुन से परवर्ती। महायान सूत्रों में 'अष्ट सहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता' प्राचीनतम रचना मानी जाती है। लोकरक्ष ने चीन में १४८ ई. इसका अनुवाद किया था। लंकावतार सूत्र' विज्ञानवादियों का नागार्जुन के बाद का ग्रंथ है। नागार्जुन के समान ही असंग और वसुबंधु ने योगाचारविज्ञानवाद की स्थापना की। नागार्जुन के पहले का बौद्ध दर्शन अनित्यवाद का सिद्धान्त था। नागार्जुन के पहले तत्ववाद का पता नहीं चलता। पहली सदी के चतुर्थवाद में त्रिपिटक पर विभाषा टीका बनी। इस भाषा के अनुयायी वैभाषिक तथा मूल सूत्रों को मानने वाले सौत्रान्तिक कहलाए। अंगविद्या का उद्‌गम और प्रारम्भिक विकास ईसा पूर्व पॉचवीं शताब्दी से तीसरी शताब्दी तक सम्पन्न हुआ। चक्रवर्ती के ३२ लक्षण,८० अनुव्यंजन परिगणित किए गये। चक्रवर्ती के लक्षणों के अनुसार भगवान बुद्ध की रूपकाय अथवा देह की भी कल्पना की गई। जातक कथाओं में बोधिसत्व की कल्पना लोकोत्तरवाद में बुद्ध विषयक अनुस्मृति एवं भक्ति को बढ़ावा मिला।

महायान परम्परा से जहां स्पष्ट होता है कि भगवान के परिनिर्वाण के १०० वर्ष बाद द्वितीय संगीति में संघभेद हुआ जिसमें महासांघिक का विकसित महायान है। लेकिन महायान परम्परा मानती है कि भगवान बुद्ध ने सूत्रों की देशना तीन कालों में की । महायान सूत्रों में वर्णित है कि महायान सूत्रों की देशना तीन कालों में हुई। प्रथम सम्बोधि के तीन सप्ताह के अनंतर जिसमें तथागत ने अवतंसक सूत्रों का उपदेश दिया। दूसरे काल में सद्धर्मपुण्डरीक, प्रज्ञापारमिता के महापरिनिर्वाण सुत्त एवं महावैपुल्य सूत्रों का विकास हुआ। भगवान बुद्ध ने प्रथम उपदेश ऋषिपतन मृगदाव में दिया जिसको श्रावकयान या हीनयान कहते है। द्वितीय बार भ० बुद्ध ने गृद्धकूट पर्वत पर बोधिसत्व

परिवारों को सम्बोधित कर आगमों की देशना षट्पारिमिताओं का उपदेश दिया जो सर्वसत्वों के दुःखनिवृत्ति का मार्ग है। जिसे बुद्धयान, बोधियान या महायान कहते हैं। तीसरा उपदेश दिया जिसे तन्त्रयान कहते हैं। तीनों यानों की प्रज्ञापना प्रवृत्ति के अनुसार बतलाई गई है और तीनों को एकयान या बुद्धयान कहा गया है।

महायान-सूत्रालंकार एवं बोधिचर्यावतार में महायान के प्रमाण के लिए अनेक युक्तियाँ प्रस्तुत की गई है। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि यदि महायान पीछे उद्भाषित किया गया होता तो इस आशंका का निराकरण तथागत पहले ही कर जाते। महायानियों ने एक ओर अपनी प्रामाणिकता के लिए युक्तियां दी हैं, दूसरी ओर थेरवाादियों को हीनयानी कहते हुए उनकी संकीर्णता बतलाई है।

महायान की विशेषताएं

असंग ने महायान की सात विशेषताएं बताई हैं जो इस प्रकार है-

सर्वभूत हितवाद में विश्वास रखना और समस्त जगत् के प्राणियों के कल्याणार्थ प्रयत्न करना, स्वयं कष्ट सहकर अन्य जीवों के उद्धार के लिए प्रयत्न करना।

बोधिसत्वों में विश्वास तथा अपने सत्कर्मों और भक्ति द्वारा बोधिसत्व अवस्था प्राप्त करना।

बुद्धों के लोकोत्तर तत्व में विश्वास तथा यह भी विश्वास करना कि बुद्धगण काल और देश की सीमा में परिव्याप्त हैं।

जगत् को शून्य और नश्वर मानना।

कर्मकाण्ड की बहुलता और मंत्र-तत्र में विश्वास।

संस्कृत के ग्रन्थों में विश्वास, पालि में नहीं।

अमिताभ बुद्ध में विश्वास और उनके नाम-जप से निर्वाण-प्राप्ति मे विश्वास।

अन्य विशेषताएं

बोधिसत्वयान :-

बोधिसत्वयान को महायान कहते हैं। बोधिसत्व की कल्पना इतनी उदात्त, उदार, तथा उपादेय है कि केवल इसी कल्पना के कारण महायान धर्म जगत् में प्रसिद्ध हुआ। थेरवादी साहित्य में भी बोधिसत्व का उल्लेख है। किंतु महायान में इसका विकास हुआ। भरत सिंह उपाध्याय ने बोधिसत्व के विकास की छः अवस्थायें मानती है-

जब बोधिसत्व का निर्माण हो रहा था, उस समय बोधिसत्व बुद्ध से नीचा था।

सर्वप्रथम अवलोकितेश्वर बोधिसत्व का आर्विभाव हुआ। मंजुश्री बोधिसत्व इसके बाद में हुए। अवलोकितेश्वर बुद्ध को करुणा एवं मंजुश्री को प्रज्ञा का प्रतीक कहा गया है।

पहले प्रज्ञा का करुणा से अधिक महत्वपूर्ण स्थान था।

योगाचार तथा विज्ञानवाद संप्रदाय के परिणामस्वरूप बोधिसत्व महायोगी कहे गये।

दुःखी पुरुषों की सेवा को श्रेष्ठ बतलाया गया।

मंजुश्री अवलोकितेश्वर समन्तभद्र बज्रपाणि वज्रगर्भ, क्षितिगर्भ रत्नगर्भ, मैत्रेय-प्रमुख बोधिसत्त्व उत्पन्न हुए। इनमें से अवलोकितेश्वर का स्थान सर्वोच्च था। मंजुघोष, मंजुश्री बोधिसत्त्व के प्रतीक हो गये। पश्चात् बोधिसत्व बुद्ध के जीवन और व्यक्तित्व के प्रतीक हो गये। इस प्रकार महायान में बोधिसत्वों और बुद्धों की संख्या बढ़ती गयी। बुद्धों को गंगा की रेत से भी अधिक बताया गया है। महावस्तु हीनयान और महायान के बीच का मध्यवर्ती ग्रन्थ है। इसमें बोधसत्व की चार पर्यायों और दस भूमियों का उल्लेख मिलता है। चार भूमियों में महायान की धर्म-नैरात्म्य तथा बोधिसत्व की ओर विशिष्ट साधना अग्रसर होती है।

बुद्ध की महाकरुणा साधारण करुणा से भिन्न है। महाकरुणा से प्रज्ञा बताई गई है और करुणा अद्वेष। पुण्य और ज्ञान से महाकरुणा का समुदागम होता है करुणा केवल दुःखता को ही अकारित करती है। महाकरुणा तीन दुःखताओं को लक्षित करती है। यह सब सत्वों के हितसुख में व्याप्त है। प्रज्ञा स्वभाव होने के कारण महाकरुणा संस्कार दुःखता, कार्य एवं तीक्ष्णवर है करुणा अद्वेष, महाकरुणा अमोद है। करुणा दुःख को एकाकार ग्रहण करती है, महाकरुणा तीन को। करुणा कुछ लोगो को आलोडन करती है, महाकरुणा सबको करुणा की भूमि ध्यान चतुष्टय, महाकरुणा की चतुर्थ ध्यान करुणा पृथक जनः श्रावक एवं प्रत्येक बुद्धों में आश्रय पाती है, महाकरुणा बुद्ध में। करुणा कामधातु विषयक वैराग्य से उत्पन्न होती है, महाकरुणा भवाग्र विषयक वैराग्य से। करुणा परिमित है, महाकरुणा परिमाण नहीं करती है। करुणा केवल दुखितो की ओर अभिमुख है, महाकरुणा सबकी ओर।

धर्मकीर्ति ने करुणा को बुद्धत्व का साधन माना है अद्वयवज्र ने कहा है कि करुणावान् कभी किसी सत्व को निराश नही करता। अद्वयवज्र ने 'तत्वरत्नावली' में कहा है कि श्रावक तथा प्रत्येक बुद्ध की कल्पना करुणा सत्तावलम्बी है।

दो सत्य-

व्यवहार जगत् अनुभव के स्तर पर सत्य प्रतीत होता है किन्तु यह सत्य नहीं है। क्योंकि हम उसकी पुनरावृत्ति कर सकते है। परमार्थ रूप में ऐसा नहीं है जो कुछ भी स्थूल सूक्ष्म, भावमय, प्रमाता, रूप है, उसका खंडन हो जाने पर शून्यता की स्थिति आ जाती है। नागार्जुन ने बुद्ध वचनों को दो वर्गों में बॉटा है। नेयार्थ-लोकसंवृत्ति या व्यवहारिक संवृत्ति तथा नीतार्थ-परमार्थ संवृत्ति।

माध्यमिकों के सर्वधर्मशून्यता को स्वीकार कर लेंने पर लोकव्यवहार संभव नहीं था। माध्यमिकों ने शून्यता की व्यावहारिकता और उपयोगिता पर विचार करते हुए दो सत्यों की कल्पना की है। वर्णित है कि जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है वह संवृत्ति है। परमार्थ दशा में भावों का स्वकृतत्व, परकृतत्व या उभयकृतत्व कुछ भी नहीं बनता। संवृत्ति का अर्थ आवरण अर्थात् अविद्या का आवरण अथवा अज्ञान का आवरण है। अविद्या से ही स्वभाव का आवरण होता है और सांवृत्तिक सत्य का उद्भावन होता है। असत् सत् के समान दिखाई देता है जबकि उसकी स्थिति नहीं है और हम उसे ग्रहण करते है यहीं संवृत्ति है। जब तक परमार्थ सत्य का अधिगमन नहीं होता तब तक संवृत्ति सत्य लोकावितथ रूप है। धर्मकीर्ति ने व्यावहारिक जगत् को मिथ्या मानने के तीन कारण बताये हैं १. अज्ञान का स्वरूप ही ऐसा है कि वह वास्तविक सत्य को आवृत्त कर लेता है। उसकी प्रतीति नहीं होती। चित्त में अहंभाव भी भ्रांति से आत्मा जैसा प्रतीत होता है। २. जगत् आभास मात्र है। क्योंकि उसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। हर वस्तु अन्योन्याश्रित स्वआत्मव्याघाती है। ३. संसार के सभी भाव स्वभाव रहित है। वे मन बुद्धि से प्रतीत तो होते है किंतु उनका अस्तित्व नही है। संवृत्ति में भेद और श्रेणियां है। जागृत अवस्था की व्यावहारिक अवस्था से खर विषाण तक अनेक स्तर है। आचार्य भाव-विवेक ने संवृत्ति सत्य को दो भागों में बांटा है। तथ्य संवृत्ति तथा मिथ्या संवृत्ति। मिथ्या संवृत्ति पुनः दो प्रकार की है- एक भ्रांति के कारण जैसे रज्जु सर्प और दूसरा दृष्टिदोष के कारण जैसे दो चन्द्रमा। संवृत्ति में अनेकता भासित होती है। परमार्थ सत्य में नानात्व नहीं है।

नागार्जुन के अनुसार देशना द्विविध है-गुह्य एवं व्यक्त। पहली बोधिसत्व के लिए दी गयी और दूसरी अर्हत विषयक थी। हीनयान में अनित्य, दुःख एवं अनात्म का महत्व है। महायान में शून्यता का महत्व है। असंग ने आशय, उपदेश प्रयोग और समय आदि की दृष्टि से महायान एवं हीनयान में भेद बतलाया है। इन चारों बातों में महायान से विरुद्ध होने के कारण हीनयान वास्तव में हीन ही है।

हीनयान में पुद्गल नैरात्म्य के बोध के द्वारा क्लेशावरण का क्षय होता है एवं अर्हत् की प्राप्ति होती है। श्रावक दूसरों से उपदेश ग्रहण करते हैं एवं दूसरों को उपदेश देते है। प्रत्येक बुद्ध न किसी के गुरू होते हैं न शिष्य। महायान में धर्म नैरात्म्य अथवा शून्यता के बोंध से ज्ञेयावरण का क्षय होने पर बुद्ध पदवी एवं सर्वज्ञता प्राप्त होती है। इचिंग का कहना है कि जो बोधिसत्वों की पूजा करते हैं तथा महायान सूत्रों को पढते है वे महायानी है और जो ऐसा नही करते, वे हीनयानी है।

रूप अगणित भौतिक शरीरों को धारण कर सकते थे। महायानियों की शिक्षा परमार्थ सत्य के विषय में है, व्यावहारिक नहीं। त्रिपिटक की शिक्षा व्यावहारिक थी, पारमार्थिक नहीं। अर्हत् को शुष्क ज्ञानी कहा गया जबकि बुद्धत्व प्राप्ति में प्रज्ञा और करुणा

की भावना निहित है। मंजुश्री चर्या के प्रारम्भ में महाकरुणा का उल्लेख है। आर्य धर्म संगीति में कहा गया है कि महाकरुणा एक धर्म है।

अष्टसहस्रिका में महायान के सम्बन्ध में कहा गया है कि महायान अप्रमेयता का अधिवचन है । पारमिताओं द्वारा मार्ग पर चलाया जाता है। आकाश के समान अत्यंत महान होने के कारण वह महायान है जैसे आकाश में अप्रमेय प्राणियों के लिए अवकाश, उसी प्रकार महायान में भी प्राणियों के लिए अवकाश है। महायान में बुद्ध की संख्या गंगा की रेत के समान असंख्य मानी गयी है। हीनयान में श्रावकयान की साधना,चार आर्यसत्यों के साक्षात्कार, प्रत्येक बुद्ध की साधना, प्रतीत्यसमुत्पाद,सम्यक् सम्बुद्ध की साधना, विहार भावना और पारमिताओं के अभ्यास से बतलाई गई है। हीनयान के सिद्धान्तों का विकास ही महायान में हुआ है। दीघनिकाय में मात्रा छः बुद्धों का उल्लेख है। बाद में बुद्धों की संख्या २५ मिलती है। सर्वास्तिवाद में शून्यता अनात्मवाद का पर्याय है। हीनयान में साधक निर्वाण प्राप्ति से संतुष्ट है। महायान का उच्चतम लक्ष्य बुद्ध ज्ञान सर्वज्ञता तथा अनुत्तर ज्ञान या सम्बोधि की प्राप्ति है जिसे तथता भी कहते हैं। महायान में केवल एकयान बुद्धयान माना गया है जबकि सर्वास्तिवाद में बोधिपक्षीय धर्मो की स्वीकृति है। अष्टसहस्रिका-प्रज्ञा पारमिता में कहा गया है कि हीनयानी अनुयायी एकात्मा का दमन, शमन तथा निर्वाण की कामना करते हैं परन्तु बोधिसत्व परमार्थ मे अपने को तथा सब प्राणियों को समाहित करना चाहते हैं, अपने साथ अप्रमेय प्राणियों के परिनिर्वाण के लिए उद्योग करते हैं।

हीनयान का उपदेश पंचवर्गीय भिक्षुओं को दिया गया, महायान का उपदेश बोधिसत्त्वों के समक्ष दिया गया। महायानी परावृत्ति भोग को मानते हैं।

इनमें दो सत्यों-परामार्थ सत्य तथा संवृत्ति सत्य पर अत्यधिक जोर दिया गया है। महायानियों ने त्रिकाय धर्मकाय, निर्माणकाय तथा संभोगकाय की कल्पना पर बल दिया है। महायानियों ने अष्टांगिक मार्ग के स्थान पर बोधिसत्त्वचर्या का विकास किया है।

महासांघिकों ने बुद्ध को लोकोत्तर माना है। उनका शरीर अनास्रव विशुद्ध और दोषरहित बतलाया है। वे अपरिमित जीवनी एक अनिवार्य धर्मता का अंग बन गयी। भावी बुद्ध मैत्रेय का भी इसमें उल्लेख है। महायान की प्रधान प्रेरणा बुद्ध की जीवनी थी। हीनयान में धर्मतथ्यता का संकेत मात्र है। प्रज्ञापारमिता में इसका विस्तृत विवरण है।

आयुष्मान मोग्गलिपुत्ततिस्स स्थविर ने विभिन्न निकायों के सिद्धान्तों का खंडन कर 'कथावस्तु' की देशना की थी जिसमें २१६ शंकाओं का समाधान किया गया है। कथावस्तु की अट्ठकथा में आठ ही निकायों के सिद्धान्त को गिनाया गया है। कथावत्थु में महासांघिकों एवं उसके उपनिकायों के रूप में महायान के बीज और अंकुर मिलते हैं। भिक्षुओं के कुछ सिद्धान्त महासांघिकों से मिलते थे किन्तु उनमें अंतर था। वैतुल्यवादी भिक्षुओं के सिद्धान्त को राहुल जी ने महायान के समान माना है।

महायानियों के अनुसार महायान तथागत की वास्तविक देशना है जो उन्होंने अपने जीवन काल में विशिष्ट अधिकारियों को गुह्य रूप में दी जिसका समय आने पर प्रचार व्याख्या हुई।

इस प्रकार अपेक्षाकृत कम बुद्धि रखने वालों श्रावकों और प्रत्येक बुद्धों के प्रति दिये गये उपदेशों को मानने वाले सर्वास्तिवाद हीनयानी' है। 'महायानी' गहन और गुहय उपदेशों के उत्तराधिकार है जिनकों भगवान् ने उत्कृष्ट बुद्धि और साधना वाले बोधिसत्त्व समझा था।

महायानी आचार्यों ने वैपुल्य सूत्रों– महायानी सूत्रों द्वारा भगवान् बुद्ध के ऐसे उपदेशों का संग्रह है जो उन्होंने महायानी बोधिसत्वों को दिये थे।

यह एक मान्यता है कि भगवान् ने गुह्य उपदेश बोधिसत्वों को दिया था और महायान में वही निहित है। जापानी विद्वान सुजुकी और किमूरा बुद्ध द्वारा प्रकट और गुह्य दो सत्यों के उपदेश दिये जाने में विश्वास करते हैं।

डा० हरदयाल ने बोधिसत्व सिद्धान्त का सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन किया है परन्तु बुद्ध के उपदेश में गुह्यता जैसी बात थी इस बात पर सहमति नही दिखलाई है।

बुद्ध की गंभीर प्रज्ञा पर विद्वानों ने आश्चर्य किया है, महायान, सूत्रों में असंग, वसुबन्धु नागार्जुन जैसे आचार्यो ने बुद्ध के गुह्य उपदेश की विद्यमानता को स्वीकार किया है लेकिन दूसरी ओर पालि-त्रिपिटक में भी मूल बुद्ध वचन है।

'उपाय-कौशल्य' की मध्यस्थता के विना 'हीनयान' और 'महायान' दोनों एक है। 'उपाय कौशल्य उत्तरकालीन बौद्ध धार्मिक में एक महान् शब्द है वह तथागत की करुणा का ही परिचायक है।

महायान ने भगवान् बुद्ध को एक उपास्य देव के रूप में स्वीकार किया है और उसे अपनी साधना का एक विशिष्ट अंग बनाया।

मूल बुद्ध-धर्म विशेषता आत्मविमुक्ति का धर्म था। मार्ग को बता देना, सु-आरख्यता कर देना, यही तथागत की करुणा है। कर्म के नियम में कोई अपवाद नहीं है। बुद्ध की संघाटी को पकड़कर हम भव से पार नहीं हो सकते, हमें धर्म का अभ्यास करना चाहिए। पालि धर्म की आधारभूत परिस्थिति यही है।

अन्य भारतीय दर्शनों में बौद्ध दर्शन के चार सम्प्रदाय गिनाए गए है- वैभाषिक, सौत्रान्त्रिक, माध्यमिक, योगाचार। अद्वयवज्र ने महायान के तीन सम्प्रदाय माने है- सौत्रान्त्रिक, योगाचार, माध्यमिक। अशोक के समय २७६ ई. तक बौद्धधर्म विभिन्न सम्प्रदायों में बट चुका था। एक व्यावहरिक, स्थविरवाद, महिशासक एवं वज्जिपुत्तक । अगले सौ वर्षो में महासांघिक और स्थविरवाद १८ निकायों में बट गया। कथावत्थु की

अट्ठकथा में महासांघिकों के सात और स्थविरवादियों के ग्यारह उपसम्प्रदाय बताए गए है- चार सम्प्रदाय के रूप में बौद्ध है तथा महायान के दार्शनिक सम्प्रदाय विज्ञानवाद एवं शून्यवाद है ।

सौत्रान्त्रिक - इनका दर्शन सूत्र साहित्य पर आधारित है । ये बाहरी संसार में विश्वास नहीं करते। मात्र व्यावहारिक सत्य के रूप में विश्वास करते है। गोविन्दचन्द्र पाण्डेय ने माना है कि सौत्रान्त्रिकों ने अपनी तार्किक आलोचना से बौद्ध दर्शन को पुनः अपनी मूल प्रवृत्ति की ओर खींचा।

वैभाषिक - वैभाषिक शब्द की उत्पत्ति ' विभाषा' शब्द से हुई। 'विभाषा' शब्द के रचयिता वसुमित्र थे और इनके ग्रन्थ का नाम 'महाविभाषा शास्त्र' है। वैभाषिकों के दो भेद हैं- काश्मीर वैभाषिक एवं पाश्चात्य वैभाषिक। पाश्चात्यों के अनुसार बोधिसत्त्व पहले शैक्ष्य अवस्था में निरोध - समापत्ति का लाभ करते हैं , तथा काश्मीरिक पहले बोधि की प्राप्ति करते हैं। तारानाथ के अनुसार धर्मत्रात, घोषक, वसुमित्र, बुद्धदेव वैभाषिकों के महान आचार्य थे।

माध्यमिक - माध्यमिक सम्प्रदाय के लोग शून्यवादी कहलाते हैं। ये भाव और अभाव को न मानते हुए प्रतीत्यसमुत्पाद को मानतें है इसलिए इन्हें माध्यमिक कहा जाता है। ये भाव और अभाव दोनों अन्तों से रहित होने के कारण सब स्वभावों की अनुत्पत्ति लक्षण वाले शून्यता नामक बीच वाले रास्तें को मध्यम मार्ग कहते हैं। शून्यता की विशेषता कार्य-कारण से उत्पन्न होने के कारण है। सभी धर्मों को कार्य-कारण से उत्पन्न हुआ बताया गया है। ये आलयविज्ञान में भी विश्वास नहीं करते पूर्णतया शून्यवादी हैं। शून्य के अलावा कोई शब्द नहीं मानते।

योगाचार- विज्ञानवाद का ही दूसरा नाम योगाचार है। इसके नामकरण का आधार असंग का योगाचार भूमि शास्त्र है। योग का अभ्यास करंने के कारण इन्हें योगाचारी कहतें है। योग और आचार का अभ्यास करने के कारण भी योगाचार कहा जाता है बल्देव उपाध्याय ने आध्यात्मिक सिद्धांतों के कारण विज्ञानवाद तथा साधनात्मक और धार्मिक दृष्टि से योगाचार कहा है। बाह्यार्थ की शून्यता का अंगीकार तथा आंतरिक शून्यता का परिनियोग करने से योगाचार नाम बताया गया है।

गोविन्दचंन्द्र पाण्डेय ने योगाचार को विज्ञानवाद का अंकुरोदगम माना है तथा इसका समय ई० पू० पहली से तीसरी शताब्दी तक माना है। पांचवी शताब्दी तक मैत्रेय, असंग एवं वसुबन्धु के कार्य से 'विज्ञानवाद की परिणति योगाचार में हुई' की सम्यक अवधारणा महायान सूत्रों में पाई जाती है। योगाचार के प्रमुख तीन सूत्र है- संधिनिर्मोचन, लंकावतार एवं घनव्यूह। योगाचारी दोनों सत्ताओं में विश्वास नहीं करते।

एक भी सत्य भूत, भविष्य, वर्तमान को नहीं मानते हैं। ये कार्य-कारण की शृंखला को मानते हैं। इसी को आलयविज्ञान कहा गया है।

योगाचार का मूल आधार प्रतीत्यसमुत्पाद है। अविद्या के कारण मनुष्य कर्म और उसके अनुभव के संसार प्राप्त होते है। अतीत जीवन के संस्कार पंच स्कन्धों के रूप में मातृ गर्भ में उत्पन्न होते है तब उन्हें विज्ञान या चैतन्य कहा जाता है। पंचेन्द्रियों एवं मन की व्यक्त अवस्था का ही नाम रूप है। विज्ञानवादी विज्ञान या चित्त को सत् मानता है बाकी सबको असत् क्योंकि चित्त के द्वारा जगत के समस्त पदार्थों का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। चित्त से जगत का प्रवर्त्तन और जगत का निरोध होता है। ये वस्तुओं का प्रतिक्षण परिवर्तनशील मानते है क्योंकि जब वस्तु की उत्पत्ति के बाद कार्य और कारण स्थिर नहीं रह सकते तब ज्ञान कैसे संभव है। अतः किसी को सर्वकालिक मानना होगा। चित्त को सत् माना है। चित्त को मन, विज्ञप्ति ,निर्वाण, धर्मधातु आदि नामों से पुकारा गया है। मनन क्रिया से मन, चेतन क्रिया से सम्पन्न होने के कारण चित्त, वस्तुओं तथा पदार्थों के कारण विज्ञप्ति या विज्ञान कहते है। विज्ञान की अवस्था के कारण प्राणी का सांसारिक जीवन प्रारम्भ होता है। विज्ञानवाद की दृष्टि से आलयविज्ञान ग्राह्य और ग्राहक दोनों है।

विज्ञान अवस्था के अनुसार आठ प्रकार का है- पंचेन्द्रियों का विज्ञान, मनोविज्ञान, संक्लिष्ट मनोविज्ञान, तथा आलयविज्ञान। विज्ञान में अहंकार की मात्रा होने के कारण निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती। आलय को विषयों का पवन तथा सत्विद् विज्ञानों का तरंग माना गया है।' विज्ञानवादियों ने पदार्थों को दो प्रकार से विभाजित किया है- संस्कृत और असंस्कृत हेतु प्रत्यय जन्य पदार्थ। संस्कृत और हेतु प्रत्यय से परे सस्वभाव असंस्कृत कहलाते हैं। असंस्कृत पदार्थो में विकार नहीं होता। इसे भूत कोटि भी माना गया है। भूत कोटि का अर्थ सत्य वस्तु का पर्यावसान है। विज्ञानवादी माध्यमिकों के समान दो प्रकार की सत्ता मानते हैं- पारमार्थिक एवं व्यावहारिक। लंकावतार सूत्र में बौद्धयोग तथा योगाचार को माध्यमिक तुलना में अधिक अर्वाचीन बताया है। आलय, मन और प्रवृत्ति -भेद से विज्ञान तीन प्रकार का है। इस तरह बौद्धधर्म के विभिन्न सम्प्रदायां का प्रतिपादन है।

आधार-ग्रन्थ

बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास - डा. गोविन्द चन्द्रपाण्डेय

बौद्ध दर्शन मीमांसा - श्रीबलदेव उपाध्याय

प्रारम्भिक बौद्धधर्म दर्शन - डा. विजय कुमार जैन

बौद्धधर्मदर्शन - आचार्य नरेन्द्रदेव

• • • •

परिशिष्ट-१

पालि गाथा एवं उद्धरण-अनुक्रमणिका

• • • •

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनम्।। धम्मपद

अनूपवादो अनूपघातो, पातिमोक्खे च संवरो।
मतञ्ञुता च भत्तस्मिं, पन्तं च सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो, एतं बुद्धान सासनं।। – धम्मपद

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

प्रारम्भिक बौद्ध दर्शन	- डॉ. विजयकुमार जैन
पालि सद्दधातु-रूप-संगहो	- डॉ. विजयकुमार जैन
संस्कृत सूक्ति समुच्चय	- डॉ. विजयकुमार जैन
(बौद्धदर्शन एवं चार्वाक खण्ड), दिल्ली संस्कृत अकादमी, प्रकाशन	
पद्मपुराण अनुशीलन	- डॉ. विजयकुमार जैन
श्रावकाचार सौरभ	- डॉ. विजयकुमार जैन
संयुत्तनिकायपालि-एक अध्ययन	- डॉ. विजयकुमार जैन
अत्त दीपो भव	- डॉ. विजय कुमार जैन
(पालि-बौद्धविद्यायाः गवेषणात्मक-परिचयः)	
पालि प्राकृत विद्या	- डॉ. विजय कुमार जैन
(एक तुलनात्मक अध्ययन)	
संस्कृतसूक्ति समुच्चय	- डॉ. राका जैन
(जैन दर्शन खण्ड)	
दिल्ली संस्कृत अकादमी, प्रकाशन	
सत्त्रयैकम्	- डॉ. राका.जैन
जीवन्धर चम्पू सौरभ	- डॉ. राका जैन
काव्य कमलांजलि	- डॉ. राका जैन
मांसाहार परिवर्त	- डॉ. विजयकुमार एवं डॉ० राका जैन
Sraman-Culture	- डॉ. राका एवं डॉ० विजयकुमार जैन
तत्त्वार्थसूत्र सौरभ	- डॉ. राका एवं डॉ० विजयकुमार जैन
विग्रहव्यावर्तनी	- अनुवादिका डा. राका जैन
शिक्षासमुच्चयकारिका	- अनुवादिका डा. राका जैन

सम्पर्क सूत्र -3/65, विकास खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ – 226010

फोन : 0522–2300243

Email:vijayjain.sampadak@gmail.com, dr.rakajain@gmail.com